द्वितीय पुष्प

कविवर बूचराज

एवं

उनके समकालीन कवि

[संवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले पाँच प्रतिनिधि कवि बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं ठक्कुरसी का जीवन परिचय, मूल्यांकन तथा उनकी ४४ कृतियों का मूल पाठ]

लेखक एवं सम्पादक

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर, एक परिचय

जैन कवियों द्वारा हिन्दी भाषा में निबद्ध कृतियों के प्रकाशन एवं उनके मूल्यांकन की आज अतीव आवश्यकता है। देश के विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थानों में जैन हिन्दी साहित्य को लेकर जो शोध कार्य हो रहा है तथा शोधार्थियों में उस पर शोध कार्य की ओर जो रुचि जाग्रत हुई है वह यद्यपि उत्साहवर्धक है लेकिन अभी तक हिन्दी साहित्य के इतिहास में जैन कवियों को नाम मात्र का भी स्थान प्राप्त नहीं हो सका है और हमारे अधिकांश कवि अज्ञात एवं अपरिचित ही बने हुए हैं। अभी तक जैन कवियों की कृतियां ग्रन्थागारों में बन्द हैं तथा राजस्थान के शास्त्र भण्डारों को छोड़कर अन्य प्रदेशों के भण्डारों के तो सूची पत्र भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। देश की किसी भी प्रकाशन संस्था का इस ओर ध्यान नहीं गया और न कभी ऐसी किसी योजना को मूर्त्त रूप दिये जाने का संकल्प ही व्यक्त किया गया। क्योंकि अधिकांश विद्वानों एवं साहित्यकारों को हिन्दी जैन साहित्य की विशालता की ही जानकारी प्राप्त नहीं है।

स्थापना—इसलिए सन् १९७९ वर्ष के अन्तिम महिनों में जयपुर के विद्वान् मित्रों के सहयोग से 'श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी' संस्था की स्थापना की गयी जिसका प्रमुख उद्देश्य पञ्चवर्षीय योजना बनाकर समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। इन भागों में ९० से अधिक प्रमुख जैन कवियों का विस्तृत जीवन परिचय, उनकी कृतियों का मूल्यांकन एवं प्रकाशन का निर्णय लिया गया। हिन्दी जैन साहित्य प्रकाशन योजना के अन्तर्गत निम्न प्रकार २० भाग प्रकाशित किये जावेंगे—

प्रकाशन योजना :

१. महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति (प्रकाशित)
२. कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि (प्रकाशित)
३. महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं भ० प्रतापकीर्ति (प्रकाशनाधीन)
४. कविवर वीरचन्द्र एवं महिचन्द्र
५. विद्याभूषण, ज्ञानसागर एवं जिनदास पाण्डे
६. ब्रह्म यशोधर एवं भट्टारक ज्ञानभूषण
७. भट्टारक रत्नकीर्त्ति, कुमुदचन्द्र एवं समयसुन्दर
८. कविवर रूपचन्द, जगजीवन एवं ब्रह्म कपूरचन्द

९. महाकवि भूधरदास एवं बुलाकीदास
१०. जोधराज गोदीका एवं हेमराज
११. महाकवि द्यानतराय एवं आनन्दघन
१२. पं० भगवतीदास एवं भाउ कवि
१३. कविवर खुशालचन्द काला एवं अजयराज पाटनी
१४. कविवर किशनसिंह, नथमल बिलाला एवं पाण्डे लालचन्द
१५. कविवर बुधजन एवं उनके समकालीन कवि
१६. कविवर नेमिचन्द्र एवं हर्षकीर्त्ति
१७. भैय्या भगवतीदास एवं उनके समकालीन कवि
१८. कविवर दौलतराम एवं छत्रदास
१९. मनराम, मन्ना साह एवं लोहट कवि
२०. २० वीं शताब्दी के जैन कवि

उक्त २० भागों को प्रकाशित करने के लिए निम्न प्रकार एक पञ्चवर्षीय योजना बनाई गयी है—

वर्ष	पुस्तक संख्या
१९७८	३
१९७९	४
१९८०	४
१९८१	४
१९८२	५
	२०

उक्त योजना के अन्तर्गत अब तक पांच भाग प्रकाशित हो जाने चाहिए थे लेकिन प्रारम्भिक एक वर्ष योजना के क्रियान्वय के लिए आर्थिक साधन जुटाने में लग गया और सन् १९७८ में तीन पुस्तकों के स्थान पर केवल एक पुस्तक महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" का प्रकाशन किया जा सका। प्रस्तुत पुस्तक "कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि" उसका दूसरा पुष्प है। इस वर्ष कम से कम दो भाग और प्रकाशित हो सकेंगे।

आर्थिक पक्ष—अकादमी का प्रत्येक भाग कम से कम ३०० पृष्ठों का होगा। इस प्रकार अकादमी करीब ६ हजार पृष्ठों का साहित्य प्रथम पांच वर्षों में अपने सदस्यों को उपलब्ध करावेगी। पूरे २० भागों के प्रकाशन में करीब दो लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है। योजना का प्रमुख आर्थिक पक्ष उसके सदस्यों द्वारा प्राप्त शुल्क होगा।

सदस्यता—अकादमी के दो प्रकार के सदस्य होंगे जो संचालन समिति के सदस्य एवं विशिष्ट सदस्य कहलायेंगे। संचालन समिति के सदस्यों की संख्या १०१ होगी जिसमें संरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं निदेशक के अतिरिक्त शेष सम्माननीय सदस्य होंगे। संचालन समिति का संरक्षक के लिए ५००१) रु०, अध्यक्ष एवं कार्यकारी अध्यक्ष के लिए २५०१) रु०, उपाध्यक्ष के लिए १५०१) रु० तथा निदेशक एवं सम्माननीय सदस्यों के लिए ५०१) रु० अकादमी को सहायतार्थ देना रखा गया है। विशिष्ट सदस्यों से २०१) रु० लिये जावेंगे। सभी सदस्यों को अकादमी द्वारा प्रकाशित होने वाले २० भाग भेंट स्वरूप दिये जावेंगे। अब तक अकादमी की संचालन समिति के पदाधिकारियों सहित ४५ सदस्यों तथा १२५ विशिष्ट सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। मुझे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि समाज में साहित्य प्रकाशन की इस योजना का अच्छा स्वागत हुआ है।

पदाधिकारी—अकादमी के प्रथम संरक्षक समाज के युवक नेता साहू अशोक कुमार जैन हैं जिनसे समाज भली भांति परिचित है। इसी तरह अकादमी के अध्यक्ष श्री सेठ कन्हैयालाल जी पहाड़िया मद्रास वाले हैं जो अपनी सेवा के लिए उत्तर भारत से भी अधिक दक्षिण भारत में अधिक लोकप्रिय हैं। उपाध्यक्ष के रूप में हमें अभी तक सात महानुभावों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। सभी समाज के जाने माने व्यक्ति हैं और अपनी उदार मनोवृत्ति तथा साहित्यिक प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं। उपाध्यक्षों के नाम हैं: सर्व श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल, रेनवाल (जयपुर) श्री अजितप्रसाद जी जैन ठेकेदार (देहली), श्री कमलचन्द जी कासलीवाल जयपुर, श्री कन्हैयालाल जी सेठी जयपुर, श्री पदमचन्द जी तोतूका जयपुर, श्री फूलचन्द जी बिनायक्या डीमापुर, एवं श्री त्रिलोकचन्द जी कोठारी कोटा। इन सभी महानुभावों के हम आभारी हैं।

सहयोग—अकादमी के सदस्य बनाने के कार्य में सभी महानुभावों का सहयोग मिलता रहता है। इनमें सर्व श्री सुरेश जैन डिप्टी कलेक्टर इन्दौर, श्री मूलचन्द जी पाटनी बम्बई, डा० भागचन्द जैन दमोह, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री जयपुर, श्रीमती कोकिला सेठी जयपुर, श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल रेनवाल, प्रो० नरेन्द्र प्रकाश जैन फिरोजाबाद, वैद्य प्रभुदयाल कासलीवाल एवं पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ आदि के नाम विशेषत: उल्लेखनीय हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि जैसे-जैसे इसके भाग छपते जायेंगे इसकी सदस्य संख्या में वृद्धि होती रहेगी। इस वर्ष के अन्त तक इसके कम से कम ३०० सदस्य बन जावें ऐसा सभी से सहयोग अपेक्षित है। सबके सहयोग के आधार पर ही अकादमी अपनी प्रथम पञ्चवर्षीय योजना में सफल हो सकेगी ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रथम प्रकाशन पर अभिमत—साहित्य प्रकाशन के इस यज्ञ में कितने ही विद्वानों ने सम्पादक के रूप में और कितने ही विद्वानों ने लेखक के रूप में अपना सहयोग देना स्वीकार किया है। अब तक ३० से भी अधिक विद्वानों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। अकादमी के प्रथम भाग पर राष्ट्रीय एवं सामाजिक सभी पत्रों में जो समालोचना प्रकाशित हुई है उससे हमें प्रोत्साहन मिला है। यही नहीं साहित्य प्रकाशन की इस योजना को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, एलाचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज एवं आचार्य कल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज जैसे तपस्वियों का आशीर्वाद मिला है तथा भट्टारक जी महाराज श्री चारुकीर्ति जी मूडबिद्री, एवं श्रवणबेलगोला, भट्टारक जी महाराज कोल्हापुर, डा० सत्येन्द्र जी जयपुर, पंडित प्रवर कैलाशचन्द जी शास्त्री, डा० दरबारीलाल जी कोठिया, डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री एवं डा० हुकमचन्द जी भारिल्ल जैसे विद्वानों ने इसके प्रकाशन की प्रशंसा की है।

भावी प्रकाशन—सन् १९७९ में ही प्रकाशित होने वाला तीसरा पुष्प "महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं प्रतापकीर्ति" की पाण्डुलिपि तैयार है और उसे शीघ्र ही प्रेस में दे दिया जावेगा। इसके लेखक डा० प्रेमचन्द रावका हैं। इसी तरह चतुर्थ पुष्प "महाकवि वीरचन्द एवं महिचन्द" वर्ष के अन्त तक प्रकाशित हो जाने की पूरी आशा है।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी को पंजीकृत कराने की कार्यवाही चल रही है। जो इस वर्ष के अन्त तक पूर्ण हो जाने की आशा है।

अन्त में समाज के सभी साहित्य प्रेमियों से सादर अनुरोध है कि वे श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के अधिक से अधिक सदस्य बन कर जैन साहित्य के प्रचार प्रसार में अपना योगदान देने का कष्ट करें। हमें यह प्रयास करना चाहिए कि ये पुस्तकें देश के प्रत्येक विश्वविद्यालय में पहुँचें जिससे वहां और भी विद्यार्थी जैन साहित्य पर शोध कार्य कर सकें। यही नहीं हिन्दी जैन कवियों को हिन्दी साहित्य के इतिहास में उचित स्थान भी प्राप्त हो सके।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एवं प्रधान सम्पादक

अध्यक्ष की कलम से

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का द्वितीय पुष्प "कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि" को पाठकों के हाथ में देते हुए अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसके पूर्व गत वर्ष इसका प्रथम पुष्प "महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति" प्रकाशित किया जा चुका है। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि अकादमी के इस प्रथम प्रकाशन का सभी क्षेत्रों में जोरदार स्वागत हुआ है और सभी ने अकादमी की प्रकाशन योजना को अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।

इस दूसरे पुष्प में संवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले ५ प्रमुख जैन कवियों का प्रथम बार मूल्यांकन एवं उनकी कृतियों का प्रकाशन किया गया है। इस प्रकार श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी समूचे हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के जिस उद्देश्य को लेकर स्थापित की गयी थी उसमें वह निरन्तर आगे बढ़ रही है। प्रथम पुष्प के समान इस पुष्प के भी लेखक एवं सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल हैं जो अकादमी के निदेशक भी हैं। डा० साहब ने बड़े परिश्रम पूर्वक राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों में संग्रहीत कृतियों की खोज एवं अध्ययन करके उन्हें प्रथम बार प्रकाशित किया है। ४० वर्षों की अवधि में होने वाले ५ प्रमुख कवियों—ब्रह्म बूचराज, कविवर छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं ठक्कुरसी जैसे जैन कवियों का विस्तृत परिचय, मूल्यांकन एवं उनकी कृतियों का प्रकाशन आज अकादमी के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। ये ऐसे कवि हैं जिनके बारे में हमें बहुत कम जानकारी थी तथा चतुरुमल एवं गारवदास तो एकदम अज्ञात से थे। प्रस्तुत भाग में डा० कासलीवाल ने पांच कवियों का तो विस्तृत परिचय दिया ही है साथ में १३ अन्य हिन्दी जैन कवियों का भी संक्षिप्त परिचय उपस्थित करके अज्ञात कवियों को प्रकाश में लाने का प्रशंसनीय कार्य किया है। वैसे तो श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना ही डा० कासलीवाल की सूझबूझ एवं सतत् साहित्य साधना का प्रतिफल है। डा० साहब ने अब तो अपना समस्त जीवन साहित्य सेवा में ही समर्पित कर रखा है यह हमारे लिए कम गौरव की बात नहीं है।

मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी को समाज द्वारा धीरे-धीरे सहयोग मिल रहा है लेकिन अभी हमें जितने सहयोग की अपेक्षा थी

उसे हम अभी तक प्राप्त नहीं कर सके हैं। अब तक संचालन समिति की सदस्यता के लिए ४५ महानुभावों की एवं विशिष्ट सदस्यता के लिए १२५ महानुभावों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। हम चाहते हैं कि सन् १९७९ में इसके कम से कम १०० सदस्य और बन जावें तो हमें आगे के ग्रन्थों का प्रकाशन में सुविधा मिलेगी। अकादमी श्री साहू अशोककुमार जी जैन को संरक्षक के रूप में पाकर तथा श्री गुलाबचन्द गंगवाल रेनवाल, श्री अजितप्रसाद जैन ठेकेदार देहली, श्री सेठ कमलचन्द जी कासलीवाल जयपुर, श्री कन्हैयालाल जी सेठी जयपुर, श्रीमान् सेठ पदमचन्द जी तोतूका जौहरी जयपुर, सेठ फूलचन्द जी साहब विनायक्या डीमापुर एवं त्रिलोकचन्द जी साहब कोठ्यारी कोटा, को उपाध्यक्ष के रूप में सहयोग पाकर अकादमी गौरव का अनुभव करती है। इसलिए मेरा समाज के सभी साहित्य प्रेमियों से प्रार्थना है कि वे इस संस्था के संचालन समिति के सदस्य अथवा अधिक से अधिक संख्या में विशिष्ट सदस्यता स्वीकार कर साहित्य प्रकाशन की इस अकादमी की असाधारण योजना के क्रियान्विति में सहयोग देकर अपूर्व पुण्य का लाभ प्राप्त करें।

इसी वर्ष हम कम से कम तृतीय एवं चतुर्थ पुष्प और प्रकाशित कर सकेंगे। तीसरा पुष्प "महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं भट्टारक प्रतापकीर्ति" की पाण्डुलिपि तैयार है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसे हम अक्टूबर ७९ तक अवश्य प्रकाशित कर सकेंगे।

प्रस्तुत पुष्प के सम्पादक मण्डल के अन्य तीन सम्पादकों— डा० ज्योतिप्रसाद जैन लखनऊ, डा० दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य, वाराणसी, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री जयपुर का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने डा० कासलीवाल जी की पुस्तक के सम्पादन में सहयोग दिया है। आशा है भविष्य में भी उनका अकादमी को इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

कन्हैयालाल जैन पहाड़िया

मद्रास

विषय-सूची

क्र० सं०	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का परिचय	iii–vi
२.	अध्यक्ष की कलम से	vii–viii
३.	लेखक की ओर से	ix–xii
४.	सम्पादकीय	xiii–xv
५.	संवत् १५६० से १६०० तक का इतिहास	६–१०
६.	कविवर बूचराज	
	जीवन परिचय एवं कृतियों का मूल्यांकन	१०–४४
७.	मूलपाठ	
	(१) मयणजुज्झ	४५–६६
	(२) संतोषजयतिलकु	७०–८६
	(३) नेमीश्वर का बारहमासा	८७–८६
	(४) चेतन पुद्गल धमाल	६०–१०१
	(५) नेमिनाथ बसंतु	१०२–१०३
	(६) टंडाणा गीत	१०४–१०५
	(७) भुवनकीर्ति गीत	१०६–१०७
	(८) पार्श्वनाथ गीत	१०८
	६ से १६ तक विभिन्न रागों में ११ गीत	१०६–१२०
८.	छीहल कवि।	
	जीवन परिचय एवं कृतियों का मूल्यांकन	१२१–१३४
६.	मूल पाठ :	
	(२०) पञ्च सहेली गीत	१३५–१४०
	(२१) बावनी	१४१–१५२
	(२२) पंथी गीत	१५३–१५४
	(२३) वेलि गीत	१५५
	(२४) वैराग्य गीत	१५६
	(२५) गीत	१५७

१०. चतुरुमल कवि :
जीवन परिचय एवं कृतियों का मूल्यांकन ... १५८-१६५

११. मूल पाठ :
(२६) नेमीश्वर को उरगानो १६६-१७५
(२७-२९) गीत १७५-१७६
(३०) कोध गीत १७७

१२. कवि गारवदास :
जीवन परिचय एवं कृतियों का मूल्यांकन १७८-१९४

१३. मूल पाठ :
(३१) यशोधर चौपई १९५-२३६

१४. कविवर ठक्कुरसी :
जीवन परिचय एवं कृतियों का मूल्यांकन २३७-२६२

१५. मूल पाठ :
(३२) सीमंधर स्तवन २६३
(३३) नेमीराजमति वेलि २६४-२६७
(३४) पञ्चेन्द्रिय वेलि २६८-२७१
(३५) चिन्तामणि जयमाल २७२
(३६) कृपण छन्द २७३-२८०
(३७) शील गीत २८१
(३८) पार्श्वनाथ स्तवन २८२-२८४
(३९) सप्त व्यसन षट्पद २८५-२८७
(४०) व्यसन प्रबन्ध २८८
(४१) पार्श्वनाथ जयमाला २८९
(४२) ऋषभदेव स्तवन २९०
(४३) कवित्त २९१
(४४) पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी २९२-२९५

१६. प्रथम भाग पर मंगल आशीर्वाद २९६
१७. अनुक्रमणिका २९७-३००

सम्पादकीय

भाषा निबद्ध पूजा-पाठों, स्तवन-विनती-पद-भजनों, छहढाला, समाधिमरण, जोगीरासा प्रभृति पाठों, पुराणों की तथा कई एक सैद्धान्तिक एवं चारणानुयोगिक ग्रन्थों की भाषा वचानिकाओं के नित्यपाठ, स्वाध्याय अथवा शास्त्र प्रवचनों में बहुत उपयोग के कारण वर्तमान शताब्दी ई० के प्राथमिक दशकों में, कम से कम उत्तर भारत के जैनी जन मध्योत्तर कालीन अनेक हिन्दी जैन कवियों एवं साहित्यकारों के नाम और कृतियों से परिचित रहते आये थे। किन्तु उस समय हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास की कोई रूपरेखा नहीं थी। कतिपय नाम आदि के अतिरिक्त पुरातन कवियों एवं लेखकों के विषय में विशेष कुछ ज्ञात नहीं था। उनका पूर्वापर भी ज्ञात नहीं था। लोकप्रियता के बल पर ही उनकी रचनाओं का प्रचलन था। मुद्रणकला के प्रयोग ने भी वैसी रचनाओं के व्यापक प्रचार-प्रसार में योग दिया। किन्तु उक्त रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन नहीं हो पाया था। जैनेतर हिन्दी जगत् तो हिन्दी जैन साहित्य से प्राय: अपरिचित ही था, अत: समग्र हिन्दी साहित्य में उसका क्या कुछ स्थान है, यह प्रश्न ही नहीं उठा था। केवल 'मिश्रबन्धु विनोद' में कुछएक जैन कवियों का नामोल्लेख मात्र हुआ था।

जबलपुर में हुए सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन में स्व० पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने निबन्ध पाठ द्वारा हिन्दी जगत का ध्यान हिन्दी जैन साहित्य की ओर सर्वप्रथम आकर्षित किया। सन् १९१७ में वह निबन्ध "हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास" नाम से पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो गया। शनैः शनैः हिन्दी साहित्य के इतिहासों एवं आलोचनात्मक ग्रन्थों में जैन साहित्य की ओर भी क्वचित संकेत किये जाने लगे। शास्त्र भण्डारों की खोज चालू हुई। हस्तलिखित प्रतियों के मुद्रण-प्रकाशन का क्रम भी चलता रहा। सन् १९४७ में स्व० बा० कामता प्रसाद जैन का 'हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' और सन् १९५६ में पं० नेमिचन्द्र शास्त्री का 'हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन' (२ भाग) प्रकाशित हुए। विभिन्न शास्त्र भण्डारों की छानबीन और ग्रन्थ सूचियाँ प्रकाशित होने लगीं। अनेकान्त, जैन सिद्धान्त भास्कर आदि पत्रिकाओं में हिन्दी के पुरातन जैन लेखकों और उनकी कृतियों पर लेख प्रकाशित होने लगे। परिणाम स्वरूप हिन्दी जैन साहित्य ने अपना स्वरूप और इतिहास प्राप्त कर लिया और अनेक विश्वविद्यालयों ने पी० एच० डी० आदि के

लिए की जाने वाली शोध-खोज के लिए इस क्षेत्र की क्षमताओं एवं सम्भावनाओं को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। गत दो दशकों में लगभग आधी दर्जन स्वीकृत शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं, तथा वर्तमान में पचीसों शोध छात्र छात्राएँ हिन्दी जैन साहित्य के विविध अंगों या पक्षों पर शोध कार्य में रत हैं।

इस सब के बावजूद इस क्षेत्र में कई खटकने वाली कमियां अभी भी हैं, यथा—(१) हिन्दी के जैन साहित्यकारों की सूची अभी पूर्ण नहीं है—शोध खोज के फलस्वरूप उसमें कई नवीन नाम जोड़े जाने की सम्भावना है। (२) ज्ञात साहित्यकारों की भी सभी रचनाएँ ज्ञात नहीं हैं—उनमें वृद्धि होते रहने की सम्भावना है। (३) ज्ञात रचनाओं में से भी सब उपलब्ध नहीं हैं और उपलब्ध रचनाओं में से अनेक अभी भी अप्रकाशित हैं। (४) जो कृतियां प्रकाशित भी हैं उनमें से बहुभाग के सुसम्पादित स्तरीय संस्करण नहीं हैं। (५) सभी साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रमाणिक, विशद आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक प्रकाश डाला जाना अपेक्षित है। (६) रचनाओं का भी विस्तृत साहित्यिक एवं समीक्षात्मक अध्ययन अपेक्षित है, और (७) महत्वपूर्ण जैन साहित्यकारों तथा उनकी प्रमुख कृतियों का उनके समसामयिक जैनेतर हिन्दी साहित्यकारों तथा उनकी कृतियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करके उनका उचित मूल्यांकन करने और समग्र हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका समुचित स्थान निर्धारित करने की आवश्यकता है।

प्रसन्नता का विषय है कि जयपुर के साहित्य प्रेमियों ने श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना की है, जिसके प्राण सुप्रसिद्ध अनुसंधित्सु मनीषी डा० कस्तूरचंद जी कासलीवाल हैं। उन्हीं के उत्साहपूर्ण अध्यवसाय और श्लाघनीय सद्प्रयास से श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी उपरोक्त अभावों की बहुत कुछ पूर्ति में संलग्न हो गई प्रतीत होती है। उसका प्रथम पुष्प 'महाकवि ब्रह्म रायमल्ल और भट्टारक त्रिभुवन कीर्त्ति" था, जिसमें उक्त दोनों साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रभूत प्रकाश डालते हुए उनकी रचनाओं को भी सुसम्पादित रूप में प्रकाशित कर दिया है। प्रस्तुत द्वितीय पुष्प में १६ वीं शती ई० के पूर्वार्ध के पांच प्रतिनिधि कवियों—ब्रह्म बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास और ठक्कुरसी के व्यक्तित्व एवं कृतीत्व पर यथासम्भव विस्तृत प्रकाश डालते हुए और सम्यक् मूल्यांकन करते हुए उनकी सभी उपलब्ध ४४ रचनाएँ भी प्रकाशित कर दी हैं। डा० कासलीवाल जी की इस अभूतपूर्व सेवा के लिए साहित्य जगत् चिरऋणी रहेगा। संवत् १५६१ से १६०० तक की अर्द्ध शती एक सन्धिकाल था। राजस्थान को छोड़कर प्रायः सम्पूर्ण उत्तर भारत में मुस्लिम शासन था। उक्त अवधि में राजधानी दिल्ली से सिकन्दर और इब्राहीम लोदी, बाबर और हुमायुँ, मुगल तथा शेरशाह एवं सलीमशाह सूर ने क्रमशः शासन

किया। अपभ्रंश में साहित्य सृजन का युग समाप्त हो रहा था, और पिछले लगभग दोसौ वर्षों से जो हिन्दी शनैः-शनैः उसका स्थान लेती आ रही थी, उसने अपने स्वरूप को स्थैर्य बहुत कुछ प्राप्त कर लिया था। मुगल सम्राट अकबर का शासन अभी प्रारम्भ नहीं हुआ था—उसके शासनकाल में ही हिन्दी जैन साहित्य का स्वर्णयुग प्रारम्भ हुआ जो अगले लगभग तीन सौ वर्ष तक चलता रहा।

अस्तु इस ग्रन्थ में चर्चित अपने युग के उक्त प्रतिनिधि कवियों का, न केवल हिन्दी जैन साहित्य के वरन् समग्र हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना एक महत्व है, जिसे समझने में अकादमी का यह प्रकाशन सहायक होगा। खोज निरन्तर चलती रहती है, और भावी लेखक अपने पूर्ववर्ती लेखकों की उपलब्धियों के सहारे ही आगे बढ़ते हैं। आशा है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की यह पुष्प शृंखला चालू रहेगी और हिन्दी जैन साहित्य के अध्ययन एवं समुचित मूल्यांकन की प्रगति में अतीव सहायक होगी। योजना की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामना है।

ज्योतिप्रसाद जैन
दरबारीलाल कोठिया
मिलापचन्द शास्त्री

लेखक की ओर से

हिन्दी साहित्य कितना विशाल एवं विविध परक है इसका अनुमान लगाना ही कठिन है। इस हिन्दी साहित्य को अंकुरित, पल्लवित एवं विकसित करने में जैन कवियों ने जो योगदान दिया है उसके शतांश का भी प्रकाशन एवं मूल्यांकन नहीं हो सका है। साहित्य के विविध क्षेत्रों में उन्होंने जो अपनी लेखनी चलायी वह अद्भुत है। जैसे-जैसे ये अज्ञात कवि हमारे सामने आते जाते हैं हम उनके महत्व से परिचित होते जाते हैं तथा दांतों तले अंगुली दबाने लगते हैं।

प्रस्तुत पुष्प मेंसंवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले ४० वर्षों के पांच प्रमुख कवियों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। ये कवि हैं—ब्रह्म बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं ठक्कुरसी। वैसे इन वर्षों में और भी कवि हुए जिनकी संख्या १३ हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय प्रारम्भ में दिया गया है। लेकिन इन पांच कवियों को हम इन ४० वर्षों का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। इन कवियों में से गारवदास को छोड़कर किसी ने भी यद्यपि प्रबन्ध काव्य नहीं लिखे किन्तु उस समय की मांग के अनुसार छोटे-छोटे काव्यों की रचना कर जन साधारण को हिन्दी की ओर आकर्षित किया। अभी तक इन कवियों के सामान्य परिचय के अतिरिक्त न उनका विस्तृत मूल्यांकन ही हो सका तथा न उनकी मूल रचनाओं को पढ़ने का पाठकों को अवसर प्राप्त हो सका। इसलिए इन कवियों द्वारा रचित सभी रचनाएँ जिनकी संख्या ४४ है प्रथम बार पाठकों के सम्मुख आ रही है। इनके अतिरिक्त इनमें से कम से कम १५ रचनाएँ तो ऐसी हैं जिनका नामोल्लेख भी प्रथम बार ही प्राप्त होगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् १५६१ से १६०० तक के काल को भक्ति काल माना है किन्तु जैन कवि किसी काल अथवा सीमा विशेष में नहीं बंधे। उन्होंने जन सामान्य को अच्छा से अच्छा साहित्य देने का प्रयास किया। ब्रह्म बूचराज रूपक काव्यों के निर्माता थे। उनका 'मयणजुज्झ' एवं 'संतोषजयतिलकु' दोनों ही सुन्दर एवं महत्वपूर्ण रूपक काव्य हैं। जिनका पाठक प्रस्तुत पुस्तक में रसास्वादन कर सकेंगे। इसी तरह बूचराज की "चेतन पुद्गल धमाल" उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में लिखी हुई बहुत ही उत्तम रचना है। चेतन एव पुद्गल के मध्य

जो रोचक वाद-विवाद होता है और दोनों एक-दूसरे को दोषी ठहराने का प्रयास करते हैं। कवि ने एक से एक सुन्दर युक्ति द्वारा चेतन एवं पुद्गल के पक्ष को प्रस्तुत किया है वह उसकी अगाध विद्वत्ता का परिचायक है साथ ही कवि के आध्यात्मिक होने का संकेत है। सारे जैन साहित्य में इस प्रकार की यह प्रथम रचना है। इन तीन कृतियों के अतिरिक्त 'नेमीश्वर का बारहमासा' लिख कर कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जैन कवि जब वियोग शृंगार काव्य लिखने बैठते हैं तो उसमें भी वे पीछे नहीं रहते। इसी तरह 'नेमिनाथ वसन्तु', 'टंडाणा गीत' एवं अन्य गीत हैं। अब तक कवि की ११ कृतियों का मैंने 'राजस्थान के जैन सन्त' में उल्लेख किया था किन्तु बड़ी प्रसन्नता है कि कवि की आठ और कृतियों को खोज निकाला गया है और सभी के पाठ इसमें दिये गये हैं।

इस पुष्प के द्वितीय कवि हैं छीहल, जिनके सम्बन्ध में रामचन्द्र शुक्ल से लेकर सभी आधुनिक विद्वानों ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में चर्चा की है। छीहल कवि एक ओर "पंच सहेली गीत" जैसी लौकिक रचना करते हैं तो दूसरी ओर 'बावनी' जैसी विविध विषय परक रचना लिखने में सिद्धहस्त हैं। छीहल की 'पंच सहेली गीत' रचना बहुत ही मार्मिक रचना है। प्रस्तुत पुष्प में हम छीहल की सभी छह रचनाओं को प्रकाशित कर सके हैं।

चतुरुमल तीसरे कवि हैं। कवि के अभी तक चार गीत एवं एक "नेमीश्वर को उरगानो" कृति मिल सकी है। ये ग्वालियर के निवासी थे। संवत् १५७१ में निबद्ध 'नेमीश्वर का उरगानो' कवि की सुन्दर कृति है। अब तक चतुरु की केवल एकमात्र रचना का ही उल्लेख हुआ था लेकिन अब उसके चार गीत और प्राप्त हो गये हैं जो हमारे इस पुष्प की शोभा बढ़ा रहे हैं।

गारवदास हमारे चतुर्थ कवि हैं जिनकी एकमात्र रचना "यशोधर चौपई" अभी तक प्राप्त हो सकी है। लेकिन यह एक रचना ही उनकी अमर यशोगाथा के लिए पर्याप्त है। महाकवि तुलसी के रामचरित मानस के पूरे १०० वर्ष पूर्व चौपई छन्द में निबद्ध यशोधर चौपई हिन्दी की बेजोड़ रचना है। अभी तक गारवदास हिन्दी जगत् के लिये ही नहीं, जैन जगत् के लिए भी अज्ञात से ही थे। चौपई में ५४० पद्य हैं जिनमें कुछ संस्कृत एवं प्राकृत गाथाएँ भी हैं।

ठक्कुरसी इस पुष्प के पांचवें एवं अन्तिम कवि हैं। ठक्कुरसी ढूंढाहड़ प्रदेश के प्रमुख नगर चम्पावती के निवासी थे। इनके पिता घेल्ह भी कवि थे। इसलिए ठक्कुरसी को काव्य रचना की रुचि जन्म से ही मिली थी। ठक्कुरसी की अभी तक १५ रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें "मेघमाला कहा" अपभ्रंश की कृति है बाकी सब

राजस्थानी भाषा की कृतियां हैं। कवि की ७ रचनाओं के नाम तो प्रथम बार सुनने को मिलेंगे। कवि की पञ्चेन्द्रिय वेलि, नेमिराजमति वेलि एवं कृपण छन्द, पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी, सप्त व्यसन वेलि बहुत ही लोकप्रिय रचनाएँ हैं।

उक्त पांच प्रतिनिधि कवियों के अतिरिक्त संवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले कविवर विमलमूर्ति, मेलिग, पं० धर्मदास, भ० शुभचन्द्र, ब्रह्म यशोधर, ईश्वर सूरि, बालचन्द, राजहंस उपाध्याय, धर्मसमुद्र, सहजसुन्दर, पार्श्वचन्द्र सूरि, मल्लिनाथ एवं विनय समुद्र का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस प्रकार ४० वर्षों में देश में करीब १८ जैन कवि हुए जिन्होंने जैन साहित्य की महत्त्वपूर्ण सेवा की।

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक में पांच कवियों का जीवन परिचय, उनकी कृतियों का मूल्यांकन एवं उनकी कृतियों के पूरे पाठ दिये गये हैं जिनकी संख्या ४४ है। ये सभी रचनाएँ भाषा एवं शैली की दृष्टि से अपने समय की प्रमुख रचनाएँ हैं जिनमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सभी पक्षों के दर्शन होते हैं। सामाजिक कृतियों में 'पञ्च सहेली गीत', 'मयणजुज्झ', 'सन्तोष जयतिलकु', 'सप्त व्यसन वेलि' के नाम उल्लेखनीय हैं जिनमें तत्कालीन समाज की दशा का सजीव वर्णन किया गया है। 'कृपण छन्द' सुन्दर सामाजिक रचना है जिसमें एक कृपण व्यक्ति का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त उस समय की प्रचलित सामाजिक रीति रिवाज, जैसे सामूहिक ज्योनार, यात्रा संघ निकालना आदि का वर्णन उपलब्ध होता है। राजनैतिक दृष्टि से 'पारसनाथ सकुन सत्तावीसी' का नाम लिया जा सकता है जिसमें मुस्लिम आक्रमण के समय होने वाली भगदड़, अशान्ति का वर्णन है। साथ ही ऐसे समय में भी जिनेन्द्र भक्ति से ही अशान्ति निवारण की कल्पना ही नहीं अपितु इसी का सहारा लिया जाता था इसका भी उल्लेख मिलता है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का विशेषतः उसके संरक्षक, अध्यक्ष, उपाध्यक्षों तथा सभी माननीय सदस्यों का मैं पूर्ण आभारी हूँ जिनके सहयोग के कारण ही हम प्रकाशन योजना में आगे बढ़ सके हैं। हिन्दी जैन कवियों के मूल्यांकन एवं उनकी मूल रचनाओं के प्रकाशन का यह प्रथम योजनाबद्ध प्रयास है। आशा है समाज के सभी महानुभावों की शुभकामनाओं एवं आशीर्वाद से इसमें हम सफल होंगे।

मैं सम्पादक मण्डल के सभी तीनों विद्वान सम्पादकों—आदरणीय डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन लखनऊ, डा० दरबारीलाल जी सा० कोठिया वाराणसी एवं पं० मिलापचन्द जी सा० शास्त्री जयपुर का, उनके पूर्ण सहयोग के लिए आभारी हूँ। डा० कोठिया सा० तो अकादमी की संचालन समिति के भी माननीय सदस्य हैं।

तीनों ही सम्पादकों का अकादमी की योजना को आशीर्वाद प्राप्त है तथा समय-समय पर उनसे सम्पादन के अतिरिक्त व्यवस्था संचालन में सहयोग मिलता रहा है।

सम्पादन के लिए पाण्डुलिपियां उपलब्ध कराने में श्रीमान् केशरीलाल जी गंगवाल बूंदी का मैं पूर्ण आभारी हूं। जिन्होंने नागदी मन्दिर बूंदी का गुटका उपलब्ध कराकर ब्रह्म बूचराज की अधिकांश रचनाओं के सम्पादन में पूर्ण सहयोग दिया। इसी तरह श्री लूणकरण जी पाण्ड्या के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्द जी बागायत वाले, शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर तेरहपन्थी के व्यवस्थापक श्री प्रेमचन्द जी सोगानी, शास्त्र भण्डार मन्दिर गोधान के व्यवस्थापक श्री राजमल जी संघी तथा शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर पाटोदियान के व्यवस्थापक श्री भंवरलाल जी बज तथा शास्त्र भण्डार पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर के व्यवस्थापक श्री अनूपचन्द जी दीवान का मैं पूर्ण आभारी हूं जिन्होंने पाण्डुलिपियां उपलब्ध करवाकर उसके सम्पादन एवं प्रकाशन में योग दिया है। अजमेर के भट्टारकीय मन्दिर के श्री माणकचन्द जी सोगानी एडवोकेट का भी मैं पूर्ण रूप से आभारी हूं जिन्होंने अजमेर के भट्टारकीय भण्डार से ग्रन्थ उपलब्ध कराये।

मैं श्रीमती कोकिला सेठी एम० ए० रिसर्च स्कालर का, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक की 'शब्दानुक्रमणिका तैयार की, आभारी हूं। अन्त में मनोज प्रिंटर्स के व्यवस्थापक श्री रमेशचन्द जी जैन का आभारी हूं जिन्होंने पुस्तक की अत्यन्त सुन्दर ढंग से छपाई की है।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि

इतिहास

हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् १५६० से संवत् १६०० तक के काल को किसी विशिष्ट नाम से सम्बोधित नहीं करके उसे भक्ति काल में ही समाहित किया गया है। इस भक्तिकाल में निर्गुण भक्ति एवं सगुण भक्ति इन दोनों की ही प्रधानता रही और दोनों ही धाराओं के कवि होते रहे। इस समय देश में एक ओर अष्ट छाप के कवियों की सगुण भक्ति धारा की गंगा बह रही थी तो दूसरी ओर महाकवि कबीर की निर्गुण भक्ति का प्रभाव भी जन समाज पर व्याप्त हुआ था। संवत् १५६० से १६०० तक के ४० वर्ष के काल में १५ से भी अधिक वैष्णव कवि हुए जिन्होंने अष्ट छाप की कविता के ढंग पर कृष्ण भक्ति से ओतप्रोत कृतियों को निबद्ध किया। भक्ति धारा को प्रवाहित करने वाले ऐसे कवियों में नरवाहन (सं० १५६५), हितकृष्ण गोस्वामी (सं० १५६७), गोपीनाथ (सं० १५६८), विट्ठलदास (सं १५६८), अजबेग भट्ट (सं० १५६६), महाराजा केशव (सं० १५६६), मलिक मुहम्मद जायसी (सं० १५९३), मंझन (सं० १५९७), लालदास (सं० १५८५–८८), स्वामी निपट निरंजन (सं० १५९५), गोस्वामी विट्ठलनाथ (सं० १५९५), कृपाराम (सं० १५९८) के नाम उल्लेखनीय हैं।[1]

लेकिन इन ४० वर्षों में जैन हिन्दी कवियों की संख्या जैनेतर कवियों से भी अधिक रही। मिश्र बन्धु विनोद ने ऐसे कवियों में ईश्वरसूरि, छीहल, गारवदास जैन, ठक्कुरसी एवं बालचन्द ये पांच नाम गिनाये हैं।

"हिन्दी रासो काव्य परम्परा" में जिन जैन कवियों की रासा कृतियों का उल्लेख किया गया है उनमें उदयभानु, विमल मूर्ति, मेलिग, मुनि चन्द्रलाभ, सिवसुख सहजसुन्दर एवं पार्श्वचन्द्र सूरि के नाम उल्लेखनीय हैं। लेकिन उक्त जैन कवियों के अतिरिक्त भ० ज्ञानभूषण, ब्रह्म बूचराज, ब्रह्म यशोधर, भ० शुभचन्द्र, चतुरुमल,

---

१. विस्तृत परिचय के लिए देखिये मिश्रबन्धु विनोद पृष्ठ १३० से १५०।

धर्मदास, पूनो जैसे और भी प्रसिद्ध जैन कवि हुए, जिन्होंने हिन्दी भाषा में कितनी ही रचनाएँ निबद्ध की और उसके प्रचार प्रसार में अपना पूर्ण योग दिया। जैन कवि किसी काल विशेष की धारा में नहीं बहे। वे जनरुचि के अनुसार हिन्दी में काव्य रचना करते रहे। प्रारम्भ में उन्होंने रास काव्य लिखे। रास काव्य लिखने की यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से १७ वीं शताब्दी तक चलती रही। १६ वीं शताब्दी के प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध तक महाकवि ब्रह्म जिनदास अकेले ने पचास से भी अधिक रासकाव्यों की रचना करके एक नया कीर्त्तिमान स्थापित किया। जैन कवि रास काव्यों के अतिरिक्त फागु, वेलि एवं चरित काव्य भी लिखते रहे। संवत् १३५४ में लिखित जिणदत्त चरित तथा संवत् १४११ में निबद्ध प्रद्युम्न चरित जैसे काव्य इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है।

संवत् १५६० से १६०० तक का ४० वर्षों का काल लघु काव्यों की रचनाओं का काल रहा। इन वर्षों में होने वाले बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु एवं गारवदास सभी ने छोटे-छोटे काव्य लिखकर जन सामान्य में हिन्दी भाषा के प्रति रुचि जाग्रत की। इन वर्षों के जैन कवि दोनों ही वर्ग के रहे। यदि भट्टारक ज्ञानभूषण शुभचन्द्र, बूचराज: यशोधर एवं सहजसुन्दर सन्त थे तो छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु जैसे कवि श्रावक थे। सभी कवि एक ही धारा में बहे। उन्होंने रास तो उपदेशात्मक काव्य लिखे, नेमिराजुल से सम्बन्धित विरहात्मक बारहमासा लिखे या फिर रूपक काव्य एवं संवादात्मक काव्य लिखे। उन्होंने मानव की बुराइयों की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया। बावनियों के माध्यम से विविध विषयों की उनमें चर्चा की। यद्यपि इन ४० वर्षों में सगुण भक्ति धारा का अधिक जोर था और उत्तर भारत में उसने घर-घर में अपने पांव जमा लिए थे। लेकिन अभी जैन कवि उससे अछूते ही थे। उन्होंने पद लिखना तो प्रारम्भ कर दिया था, लेकिन तीर्थंकर भक्ति में वे इतने अधिक प्रवेश नहीं कर पाये थे। इसलिए इन वर्षों में भक्ति साहित्य अधिक नहीं लिखा जा सका।

फिर भी चालीस वर्षों में बूचराज, ठक्कुरसी, छीहल जैसे श्रेष्ठ कवि हुए। जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य में अपना स्थान बनाये रखा तथा आगे आने वाले कवियों के लिए मार्ग दर्शन का कार्य किया। प्रस्तुत भाग में ब्रह्म बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु एवं गारवदास का जीवन परिचय, मूल्यांकन एवं उनके काव्य पाठ दिये जा रहे हैं। इसलिए उक्त कवियों के अतिरिक्त अवशिष्ट जैन कवियों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है।

१. विमल मूर्ति

विमल मूर्ति कृत पुण्यसार रास संवत् १५७१ की रचना है।[1] इसे कवि ने धूंधक नगर में समाप्त किया था। विमलमूर्ति आगमगच्छ के हेमरत्न सूरि के शिष्य थे।[2] रास का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि—

केवल ज्ञान अलंकारी सेवइ अमर नरेस
सयल जनु हितकारी जिणवाणी पमसोस
हेमसूरि गुरु बुझिविउ कुमारपाल भूपाल
जेह समु जगि को नहीं जीव दया प्रतिपाल

अन्त—

तसु सानिध्यइ ए अवकास
सांभलता हुइ पुण्य प्रकास ।।८३।।

२. मेलिग

मेलिग कवि १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे। वे तपागच्छ के मुनि सुन्दरसूरि के शिष्य थे। उन्ही की आज्ञा से उन्होंने प्रस्तुत रास की रचना की थी।[3] संवत् १५७१ में इन्होंने 'सुदर्शन रास' की रचना अपने गुरु की आज्ञा से समाप्त की थी। सुदर्शन रास की एक प्रति पाटण के जैन भण्डार में तथा एक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में सुरक्षित है।[3]

---

१. संवत् पनर एकोतरइ पोस बदि इग्यारसि अंतरइ।
धूंधकइ पुरि पास समथ्य, सोमवार रचिउ प्रबन्ध ।।८०।।
हिन्दी रासो काव्य परम्परा, पृष्ठ सं० १६१।

२. आगम गछ प्रकास दिणंद
श्री हेमरत्न गुरु सूरि गुणचन्द ।।८१।।
हिन्दी रासो काव्य परम्परा पृष्ठ सं० १६१

२. संवत पनर एकोतरइ एम्हा, जेठह चउथि विशुद्ध-सुणिए।
पुण्य लक्षण गुरु वारिसें ए म्हा चरित्र ए पुहवि प्रसिद्ध सुणि ।।२२२।।

३. आदि भाग—पहिलउं प्रणमिसु अनुक्रमिइए जिणवर चुवीस।
पछइ शासीन देवताए सहि नामु सीस।

क्रमशः

३. पं० धर्मदास

पं० धर्मदास उन कवियों में से हैं जिनके साहित्य और जीवन से हिन्दी जगत अपरिचित सा है। हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास में भी इनका केवल नामोल्लेख ही हुआ है। धर्मदास का जन्म कब और कहां हुआ था इसका उल्लेख न तो स्वयं कवि ने ही अपनी रचना में किया है और न अन्यत्र ही मिलता है। लेकिन संवत् १५७८ वैशाख सुदि ३ बुधवार के दिन इन्होंने 'धर्मोपदेशश्रावकाचार' को समाप्त किया था।[1] इस आधार पर इनके जन्म काल का अनुमान किया जा सकता है। कवि की अभी तक एक ही रचना मिल सकी है। अतः यह सम्भव है कि उन्होंने यही एक रचना लिखी हो।

धर्मदास ने सम्पन्न घराने में जन्म लिया था। इनके वंशज दानी परोपकारी तथा दयावान थे। वे 'साहु' कहलाते थे। साहु शब्द प्राचीन काल में प्रतिष्ठित और धनाढ्य पुरुषों के लिए प्रयोग हुआ है तथा जो साहूकारी का कार्य करते थे वे भी साहु कहलाते थे। कवि के पिता का नाम रामदास और माता का नाम शिवी था। इनके पितामह का नाम 'पदम' था। ये विद्वान् तथा चतुर पुरुष समझे जाते थे। सज्जनता इसमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। स्वयं विधाता ने ही मानों इनको परोपकारी बनाया था। देश-देश के बहुत से मित्र इनसे सभी प्रकारके कार्यों के लिए सलाह लिया करते थे। ये कवियों और विद्वानों को खूब सम्मान देते थे। कवि की वंशावली इस प्रकार है[2]—

समरीअ सामिणि सारदा सामिणि संभाइ।
अगगइ पालउ प्रतिपय कवितए काय ॥

अन्त भाग—शील प्रबन्ध जे सांभलिए ए म्हाः ते नर नारि धनधरव सु।
सुदर्शन रिषि कवलोए म्हाः चउविह संघ सुमसस ॥२५॥

१. पन्द्रहसै अट्ठहत्तरि वरिसु संवच्छरु कुसलह कंन सरसु।
निर्मल वैशाखी अष्टमीज बुधवार गुनियहु जानीज ॥

२. जिन पथ भत्तउ हौरिल साहू. सो जु दान पूज को पवाहू।
तासु सु मनु सत्य जस गेहू. धर्मशील संत जानेहू।
तासु पुत्र जेठो करमसी, जिनमति सुमति जासु मन बसी।
दया आदि दे धर्म हि लीन. परम विवेकी पाप विहीन।

क्रमशः

होरिल साहू
↓
करमसी
↓
पदम
↓
रामदास
↓
धर्मदास

धर्मदास को जैन धर्म पर दृढ़ श्रद्धान था। वह शुद्ध श्रावक था तथा श्रावक धर्म को जीवन में उतार लिया था। यद्यपि कवि गृहस्थ था। व्यापार करके आजीविकोपार्जन करता था फिर भी उसका अधिक समय शास्त्रों के पठन-पाठन में व्यतीत होता था।

जैनधर्म सेवै नित्त, अरु दह लक्षण भाव पवित्त।
नित निर्ग्रन्थ गुरनि मानउ, जिन आगम कहु पढ़ तु सुनहु।

धर्मोपदेशश्रावकाचार में दैनिक जीवन में जन साधारण के मन में उतारने योग्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण के अतिरिक्त आठ मद, दस धर्म, बारह भावना और सप्त व्यसन पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

कवि ने रचना में अपना कोई पांडित्य का प्रदर्शन नहीं करके साधारण भाषा में विषय का वर्णन किया है। शब्दों को तोड़ मरोड़ कर प्रयोग करने की आदत कवि में नहीं पायी जाती और न आलंकारिक भाषा से पाठकों के चित्त को उलझन में डालने की चेष्टा की गयी है।

पदम नाम ताकै भो पूत, कवियनु वेदकु कला संजूत।
अवर बहुत गुन गहिर सभाउ, महा सुमति अति चतुर सुभाउ।
अरु सो सज्जनता गुण लीन, पर उपगारी विधना कीन।
बहु मित्री लख मनधि कोइ, सलह ही देस देस को लोइ।
राम-सिरी तसु तनिय कलत्त, परम सील वे परम पवित्र।
तासु उदर सुत उपनी वेढि, जिनु तिजि अवस्त धार्वाहि ते वि।
जै को धर्म चितुह सिरमती, जिहि पर राम अर्धांगनी।
वयालीन जिनवर पय धुनी, पर पायो धनु धूलि सम गिनै।

संसारी जीव का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है जो युवावस्था में विलासिता में फंसा रहता है, इन्द्रियों ने जिस पर विजय प्राप्त करली है जिसका जीवन इन्द्रियों की लालसा तथा वासना को पूर्ण करने में ही व्यतीत होता है। ऐसा मनुष्य संसारी कहलाने योग्य है उस मनुष्य को लौकिक जीवन के सुधारने में कभी सफलता नहीं मिलती।

राग लीन जौवन महि रहे इन्द्री जिते परीसा सहै।
ता कहु सिद्धि कदाचित होइ संसारी तिन जानहु सोइ ।।

पण्डित अथवा विवेकी मनुष्य वही है जो पुत्र, मित्र, स्त्री, धन आदि पर अनुचित मोह नहीं करता है तथा उनके उपयोग के अनुसार ही उन पर मोह करता है—

पुत्र, मित्र नारी धन धानु, बंधु सरीर जु कुल असमान।
अवरु प्रीय वस्तु अनुसरैं ता पर राग न पण्डित करैं।

वेश्यागमन मनुष्य के लिए अति भयंकर है। वह उसे कर्त्तव्य मार्ग से विमुख कर देता है। इस जीवन को तो दुखमय बना ही देता है किन्तु पारलौकिक जीवन को भी दुख में डाल देता है। सच्चरित्र पुरुष वेश्या के पास जाते हुए डरते हैं। क्योंकि व्यसनों में फंसाना ही उसका काम होता है—

वेश्या संग धर्म को हरैं, वेश्या संग नर्क को करैं।
जाते होइ सुगति को भंगु, नहि ते तज नौ वेश्या संगु ।।

मनुष्य जीवन बार-बार नहीं मिलता। जो इस जीवन का सदुपयोग नहीं करता उसको अन्त में पश्चाताप के सिवा कुछ नहीं मिलता। जैसे समुद्र में फेंके गये माणक को फिर से प्राप्त करना मुश्किल है उसी प्रकार मनुष्य जीवन दुर्लभ है। लेकिन प्राप्त हुए मानव जीवन को व्यर्थ खोना सबसे बड़ी मूर्खता है। वह मनुष्य उस मूर्ख के समान है जो हाथ में आये हुए माणक को कौए को उड़ाने में फेंक देता है—

समुद माह माणिक गिरि जाइ, बूडत उछरत हाथ चढाइ।
पुनु सो काग उडावन काज, राख्यो रतन मूढ वे काज।
तेम जीव भव सागर माहि, पायो मानुस जन्म अनाहि।

श्रेष्ठ मनुष्यों की संगति ही जीवन को उन्नत करती है। कुसंगति से मनुष्य व्यसनी बन जाता है। कुसंगति से गुणी-निर्गुणी, साधु असाधु तथा धर्मात्मा पापी बन जाता है। यह उस दावानल के समान है जो हरे-भरे वन को जला कर राख कर देती है।

ज्वरी मांसाहारी जीव अवगनु, जिन्हि चोरी की भीख ।
पर तिय लीन करहि मद पान, तिन सौं सगुन दूजो आन ।
करें कुमित्र संगु जो कोइ, गुनवन्तौ जो निर्गुण होइ ।
सूखें दाद संग ज्यौं हर्‍यौ दावानल महि पुनु सौ पर्‍यो ।

इस प्रकार कवि समाज के शिक्षक के रूप में हमारे समक्ष आता है । उसने यह दर्शाया है कि गृहस्थी रहकर भी मानव अपने जीवन को उन्नत बना सकता है । उसे साधु सन्यासी बनने की आवश्यकता नहीं है ।

कवि की रचना में ब्रजभाषा तथा अवधी भाषा के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है । इससे तत्कालीन हिन्दी साहित्य पर उक्त दोनों भाषाओं का प्रभाव झलकता है । अलंकारिक भाषा न होते हुए भी उदाहरणों के प्रयोग से रचना सुन्दर बन गयी है ।

४. भट्टारक शुभचन्द्र

शुभचन्द्र भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे । वे अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक, साहित्य प्रेमी, धर्म प्रचारक एवं शास्त्रों के प्रबल विद्वान थे । इनका जन्म संवत् १५३०–४० के मध्य हुआ था । जब वे बालक थे तभी इनका भट्टारकों से सम्पर्क हो गया । पहले इन्होंने संस्कृत एवं प्राकृत के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। तत्पश्चात् व्याकरण एवं छन्द शास्त्र में निपुणता प्राप्त की ।

संवत् १५७३ में ये भट्टारक के सम्माननीय पद पर आसीन हो गये । इनकी कीर्ति धीरे-धीरे देश में फैल गयी । ये राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब एवं उत्तर प्रदेश सभी प्रदेशों में लोकप्रिय बन गये । ये वक्तृत्व कला में पटु तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले सन्त थे । इन्होंने जो साहित्य-सेवा की थी वह अभूतपूर्व एवं अद्वितीय है । भट्टारक के उत्तरदायित्व एवं सम्माननीय पद पर होते हुए भी इनका विशाल साहित्य सर्जन अनुकरणीय है ।

शुभचन्द्र ४० वर्षों तक भट्टारक पद पर रहे । चालीस वर्षों में इन्होंने संस्कृत की ४० रचनाएं एवं हिन्दी की ७ रचनाओं का सर्जन किया । हिन्दी रचनाओं में "तत्वसार दूहा", "दान छन्द", "गुरु छन्द", "महावीर छन्द", नेमिनाथ छन्द, विजयकीर्ति छन्द एवं अष्टाह्निका गीत के नाम उल्लेखनीय हैं । तत्वसार दूहा के अतिरिक्त सभी लघु कृतियां हैं । तत्वसार दूहा सैद्धान्तिक रचना है, जो जैन सिद्धान्त पर आधारित है । इसमें ९१ दूहे हैं । इसे श्रावक दुलहा के अनुरोध से लिखा था । महावीर छन्द में २७ पद्य हैं, इसी तरह विजयकीर्ति छन्द में २६ पद्य हैं । गुरु छन्द

में ११ तथा नेमिनाथ छन्द में २५ पद्य हैं।[1]

५. ब्रह्म यशोधर

ब्रह्म यशोधर का जन्म कब और कहाँ हुआ इस विषय में कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं होती। लेकिन एक तो ये भट्टारक सोमकीर्ति (संवत् १५२६ से १५४०) के शिष्य थे तथा दूसरी इनकी रचनाओं में संवत् १५८१ एवं १५८५ ये दो रचना-काल दिये हुए हैं इसलिए इनका समय भी संवत् १५४० से १६०० तक के मध्य तक निश्चित किया जा सकता है। इनकी रचनाओं वाला एक गुटका नैणवां (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध हुआ है। उसमें इनकी बहुत सी रचनाएं दी हुई हैं तथा वह इनके स्वयं के हाथ का लिखा हुआ है।

अब तक कवि के नेमिनाथ गीत (तीन) मल्लिनाथ गीत, बलिभद्र चौपई के अतिरिक्त अन्य कितने ही गीत उपलब्ध हुए हैं, जो विभिन्न शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत हैं। बलिभद्र चौपई इनकी सबसे बड़ी कृति है जो १८९ पद्यों में समाप्त होती है। कवि ने इसे संवत् १५८५ में स्कन्ध नगर के अजितनाथ के मन्दिर में पूर्ण की थी। कवि की सभी रचनाएं भाव भाषा एवं शैली की दृष्टि से उच्चस्तरीय रचनाएं हैं।[2]

६. ईश्वर सूरि

ये शान्ति सूरि के शिष्य थे। इनकी एकमात्र कृति 'ललिताङ्ग चरित्र' का उल्लेख मिश्रबन्धु ने किया है।[3] ललिताङ्ग चरित्र का रचना काल संवत् १५६१ है।

सालंकार समत्थं सच्छन्दं सरस सुगुण संजुत्तं।
ललियंग कुमर चरियं ललणा ललियव्व निसुणेह।
महि महति मालव देस धण कणय लच्छि निवेस।
तिह नयर मांडव दुग्ग अहि नवउ जाणकि सग्ग।
नव रस विलास उल्लोल नवगाह गेह कलोल।
निज बुद्धि बहुअ विनाणि, गुरु धम्म फल बहु जाणि।

---

१. कवि का विस्तृत परिचय के लिए देखिये लेखक की कृति "वीर शासन के प्रभावक आचार्य"—पृष्ठ संख्या १७८ से १८८ तक।

२. विशेष परिचय के लिए लेखक की कृति—'राजस्थान के जैन सन्त—व्यक्तित्व एवं कृतित्व' पृष्ठ संख्या ८३ से ९२।

३. मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ संख्या १३४।

इय पुण्य चरिय संबन्ध ललिअंग नृप संबंध ।
पहु पास चरियहु चित्त उद्धरिय एहु चरित्त ॥

७. बालचन्द

इन्होंने संवत् १५८० में राम-सीता चरित्र की रचना की थी ।[1]

८. राजशील उपाध्याय

खतरगच्छ के साधु हर्ष के शिष्य थे । इन्होंने संवत् १५६३ में चित्तौड़ नगर में 'विक्रम चरित्र चौपई' की रचना की थी । रचना काल एवं रचना स्थान का वर्णन निम्न प्रकार दिया हुआ है ।[2]

पनरसइ त्रिसठी सुविचारी जेठ मासि उज्जल पाखि सारी ।
चित्रकूट गढ तास मझाई भणता भवियण जय जयकारी ।

९. वाचक धर्मसमुद्र

धर्मसमुद्र वाचक विवेकसिंह के शिष्य थे । अब तक इनकी निम्न रचनाएं प्राप्त हो चुकी हैं[3]—

सुमित्रकुमार रास	—	संवत् १५६७
गुणाकर चौपई	—	संवत् १५७३
कुलध्वज कुमार	—	संवत् १५८४
सुदर्शन रास		—
सज्झाय		—

१०. सहजसुन्दर

ये उपाध्याय रत्नसमुद्र के शिष्य थे । संवत् १५७० से १५९६ तक लिखी हुई इनकी २० रचनायें प्राप्त होती हैं । इनमें इलातीपुत्र सज्झाय, गुणरत्नाकर छन्द (सं० १५७२), ऋषिदत्ता रास, आत्मराग रास के नाम उल्लेखनीय हैं ।

११. पार्श्वचन्द्र सूरि

पार्श्वचन्द्र सूरि का राजस्थानी जैन कवियों में उल्लेखनीय स्थान है । इन्हीं के नाम से पार्श्वचन्द्र गच्छ प्रसिद्ध हुआ था । ९ वर्ष की आयु में ये मुनि बन गए ।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ संख्या १४४ ।
२. राजस्थान का जैन साहित्य, पृष्ठ संख्या १३२ ।
३. राजस्थान का जैन साहित्य, पृष्ठ संख्या १७३ ।

गहन अध्ययन के पश्चात् १७ वर्ष की आयु में ये उपाध्याय बन गये। जब २८ वर्ष के थे तो ये आचार्य पद से सम्मानित किये गये। साहित्य निर्माण में इन्होंने गहन रुचि ली और पर्याप्त संख्या में ग्रन्थ निर्माण करके एक कीर्तिमान स्थापित किया। इनकी भाषा टीकायें प्रसिद्ध हैं जिनमें राजस्थानी गद्य के दर्शन होते हैं।[1] संवत् १५९७ में इन्होंने वस्तुपाल तेजपाल रास की रचना समाप्त की थी।[2]

१२. भक्तिलाभ एवं चारुचन्द्र

भक्तिलाभ एवं चारुचन्द्र दोनों गुरु शिष्य थे। राजस्थानी भाषा में इन्होंने कितने ही स्तवन लिखे थे। ये संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। चारुचन्द्र ने संवत् १५७२ में बीकानेर में उत्तमकुमार चरित्र की रचना की थी।[3]

१३. वाचक विनयसमुद्र

ये उपकेशीय गच्छ वाचक हर्षसमुद्र के शिष्य थे। अब तक इनकी ३० रचनाएं उपलब्ध हो चुकी है जिनका रचना काल संवत् १५८३ से १६१४ तक का है। इनकी विक्रम पंचदंड चौपई (सं० १५८३) आराम शोभा चौपई (सं० १५८३) अम्बड चौपई (सं० १५९९) मृगावती चौपई (सं० १६०२) पद्मावती रास (सं० १६०४) पद्म चरित्र (सं० १६०४) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[4]

उक्त कवियों के अतिरिक्त इन ४० वर्षों में और भी जैन कवि हुये हैं जिन्होंने हिन्दी में विपुल साहित्य का निर्माण किया था। देश के विभिन्न शास्त्र भण्डारों में ऐसे कवियों की खोज जारी है।

ब्रह्म बूचराज

कविवर ब्रह्म बूचराज विक्रम की १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे। वे भट्टारकीय परम्परा के साधु थे तथा ब्रह्मचारी पद को सुशोभित करते थे। कवि ने अपना सबसे अधिक जीवन राजस्थान में ही व्यतीत किया था और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बराबर विहार करके यहाँ की साहित्यिक जाग्रति में अपना योग दिया था। रूपक काव्यों के निर्माण में उन्होंने सबसे अधिक रुचि ली साथ ही जन सामान्य में अपने काव्यों के माध्यम से आध्यात्मिकता का प्रचार प्रसार किया।

---

१. राजस्थान का जैन साहित्य पृष्ठ १७३।
२. हिन्दी रासो काव्य परम्परा-पृष्ठ १६६—६७।
३. राजस्थान का जैन साहित्य पृष्ठ १७३।
४. विस्तृत परिचय के लिए—राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल —पृष्ठ ६६-७६.

ब्रह्म बूचराज भट्टारक भुवनकीर्ति के शिष्य थे।[1] जो अपने समय के सम्माननीय भट्टारक थे। वे सकलकीर्ति जैसे भट्टारक के पश्चात् भट्टारक पद पर विराजमान हुए थे। बूचराज ने भुवनकीर्ति गीत में भट्टारक रत्नकीर्ति का भी उल्लेख किया है जिससे ज्ञान पड़ता है कि कवि को अपने अन्तिम समय में कभी-कभी भट्टारक रत्नकीर्ति के पास रहने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। इसीलिए उन्होंने भुवनकीर्ति गीत में 'बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति सहित संघु कलिया सुरतरो" रत्नकीर्ति के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है।

कवि राजस्थानी विद्वान थे। लेकिन इनका पर्याप्त समय पंजाब के नगरों में व्यतीत हुआ था। इन्होंने स्वयं अपने जन्म-स्थान, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा, आयु आदि के बारे में कुछ भी परिचय नहीं दिया। इनकी अधिकांश रचनाएँ राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में ही उपलब्ध हुई है। इसलिए इन्हें राजस्थानी विद्वान् कहा जा सकता है। इन्होंने अपनी दो रचनाओं में रचना संवत् का उल्लेख किया है। जो संवत् १५८६ एवं संवत् १५९१ है। संवत् १५८६ में रचित मयणजुज्झ में इन्होंने न किसी स्थान विशेष का उल्लेख किया है और न किसी व्यक्ति विशेष का परिचय दिया। इसी तरह संवत् १५९१ में रचित 'संतोष जय तिलकु' में केवल हिसार नगर में काव्य रचना समाप्त करने का उल्लेख किया है। अतः वंश एवं माता-पिता का परिचय प्रस्तुत करना कठिन है।

बूचराज का प्रथम नामोल्लेख संवत् १५८२ की एक प्रशस्ति में मिलता है। यह प्रशस्ति 'सम्यकत्व कौमुदी' के लिपि कर्त्ता द्वारा लिखी हुई है। उसमें भट्टारक प्रभाचन्द्र देव के आम्नाय का, चम्पावती (चाकसू, जयपुर) नगर का, वहाँ के शासक महाराजा रामचन्द्र का उल्लेख किया गया है। चम्पावती के श्रावक खण्डेलवाल वंशीय साह गोत्र वाले साह काथिल एवं उनके परिवार के सदस्यों ने सम्यक्त्व कौमुदी की प्रति लिखवाकर ब्रह्म बूचराज को प्रदान की थी। इससे ज्ञात होता है कि संवत् १५८२ में कवि चम्पावती में थे। वहाँ मूल संघ के भट्टारकों का जोर था और ये भी उन्हीं के संघ में रहते थे।[2] चम्पावती उस समय भट्टारक प्रभाचन्द्र

---

१. श्री भुवनकीर्ति चरण प्रणमोहुं सखी आज बधावहो। भुवनकीर्ति गीत

२. संवत् १५८२ वर्षे फाल्गुन सुदी १४ शुभदिने श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नंद्याम्नाये श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि-देवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्र देवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे क्रमशः

एवं ब्रह्मचारी शिष्यों का केन्द्र थी। इसी संवत् में राजवार्तिक जैसे ग्रन्थ की प्रति करवाकर ब्रह्म लाल को दी गयी थी।[1] संवत् १५७५ से १५८५ तक जितनी प्रशस्तियाँ हमारे संग्रह में उपलब्ध होती है उन सभी के ग्रन्थ किसी न किसी भट्टारक अथवा उनके शिष्य, ब्रह्मचारी या साधु को भेंट किये गये थे। उस समय बूचराज की भट्टारक प्रभाचन्द्र के प्रिय शिष्यों में गिनती थी। इनकी सम्भवतः यह साधु बनने की प्रारम्भिक अवस्था थी। भट्टारक संघ में संस्कृत एवं प्राकृत के ग्रन्थों का अध्ययन चलता था। इसीलिए भट्टारक प्रभाचन्द्र अपने शिष्यों के पठनार्थ ग्रन्थों की प्रतियाँ भेंट स्वरूप प्राप्त करते रहते थे।

चाटसू (चम्पावती) से इनका विहार किधर हुआ इसका स्पष्ट निर्देश तो नहीं किया जा सकता लेकिन संवत् १५८९ में ये राजस्थान के किसी नगर में थे। वहीं रहते हुए इन्होंने अपनी प्रथम कृति 'मयणजुज्झ' को समाप्त की थी। यह अपभ्रंश प्रभावित कृति है।

संवत् १५९१ में वे हिसार पहुँच गये और वहाँ हिन्दी में इन्होंने 'संतोषजय-तिलकु' की रचना समाप्त की। उस दिन भादवा सुदी पंचमी थी। पर्यूषण पर्व का प्रथम दिन था। बूचराज ने अपनी कृति दशलक्षण पर्व में स्वाध्याय के लिए समाज को समर्पित की। संवतोल्लेख वाली कवि की यह दूसरी व अन्तिम कृति है। इस कृति के पश्चात् कवि की जितनी भी शेष कृतियाँ प्राप्त हुई है उनमें किसी में संवत् दिया हुआ नहीं है।

हस्तिनापुर गमन

कवि ने अपने एक गीत में हस्तिनापुर के मन्दिर एवं शान्तिनाथ स्वामी के मन्दिर का वर्णन किया है तथा वहाँ पर होने वाले कथा पाठ का उल्लेख किया है। इससे मालूम पड़ता है कि कवि हस्तिनापुर दर्शनार्थ गये थे।

भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेवास्तदाम्नाये चंपावती नामनगरे महाराय श्री रामचन्द्रराज्ये खंडेलवालान्वये साह गोत्रे संघभार धुरंधर सा० काथिल भार्या कावलदे तस्य पुत्र जिनपूजापुरन्दर सा० गूजर भार्या प्रथम लाछी तृतीया सरो.........एतान् इदं शास्त्रं कौमुदी लिखाप्य कर्मक्षय निमित्तं ब्रह्म बूचाय दत्तं।

(प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डा० कासलीवाल पृष्ठ, ६३)

1. देखिये प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, पृ० ५४।

कृतियां

उक्त दोनों कृतियों सहित बूचराज की अब तक निम्न रचनाएं प्राप्त हो चुकी हैं—

१. मयणजुज्झ
२. सन्तोष जयतिलकु
३. बारहमासा नेमीस्वर का
४ चेतनपुद्गल धमाल
५. नेमिनाथ वसंतु
६ टंडाणा गीत
७. भुवनकीति गीत
८. नेमि गीत
९. विभिन्न रागों में निबद्ध ११ गीत एवं पद

इस प्रकार कवि की अब तक १९ कृतियां प्राप्त हो चुकी हैं जो भाषा, शैली एवं भावों की दृष्टि से हिन्दी की अच्छी रचनाएं हैं। कवि के पदों पर पंजाबी भाषा का स्पष्ट प्रभाव है जिससे मालूम पड़ता है कि कवि पंजाबी भाषा भाषी भी थे।

विभिन्न नाम

कविवर बूचराज के और भी नाम मिलते हैं। बूचराज के अतिरिक्त ये नाम हैं बूचा, वल्ह, वोल्ह, वल्हव। कहीं-कहीं एक ही कृति में दोनों प्रकार के नामों का प्रयोग हुआ है। इससे लगता है कि बूचराज अपने समय के लोकप्रिय कवि थे और विभिन्न नामों से जन सामान्य को अपनी कविताओं का रसास्वादन कराया करते थे। वैसे उनका बूचा अथवा बूचराज सबसे अधिक लोकप्रिय नाम रहा था।

समय

कवि के समय के बारे में निश्चित तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन यदि उनकी आयु ७० वर्ष की भी मान ली जावे तो हम उनका समय संवत् १५३०–१६०० तक का निश्चित कर सकते हैं। आखिर संवत् १५९१ के बाद उन्होंने जितनी कृतियों को छन्दोबद्ध किया था उसमें कुछ वर्ष तो लगे ही होंगे। इसके अतिरिक्त ऐसा लगता है उन्होंने साहित्य लेखन का कार्य जीवन के अन्तिम १५–२० वर्षों में ब्रह्मचारी की दीक्षा लेने और संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश का गहरा अध्ययन करने के पश्चात् ही किया था।

कवि ने अपनी किसी भी कृति में तत्कालीन शासक का उल्लेख नहीं किया और न उनके अच्छे बुरे शासन के बारे में लिखा। जान पड़ता है कि उस समय देश में कोई भी शासक कवि को प्रभावित नहीं कर सका था इसलिए कवि ने उनका नामोल्लेख करने की आवश्यकता ही नहीं समझी।

मयणजुज्झ (मदन युद्ध)

मयणजुज्झ कवि की संवतोल्लेख वाली प्रथम रचना है। यह अपभ्रंश भाषा प्रभावित हिन्दी कृति है। हिन्दी अपभ्रंश का किस प्रकार स्थान ले रही थी यह कृति इसका स्पष्ट उदाहरण है। मदनयुद्ध एक रूपक काव्य है जिसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एवं कामदेव के मध्य युद्ध होने पर भगवान ऋषभदेव की उस पर विजय बतलाई गयी है।

मदनयुद्ध कवि की प्रथम रचना है यह तो स्पष्ट नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनकी अधिकांश रचनाओं में रचना काल दिया हुआ नहीं है। फिर भी ऐसा लगता है कि यह उनकी प्रारम्भिक रचना है जिसमें उन्होंने अपभ्रंश भाषा का प्रयोग किया है और इसके पश्चात् जब केवल हिन्दी की ही रचनाओं की मांग हुई तो कवि ने अन्य रचनाओं में केवल हिन्दी का ही प्रयोग किया। इस काव्य का रचना काल संवत् १५८९ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा शनिवार है।[1] कृति में रचना स्थान का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

इस रूपक काव्य में १५९ पद्य हैं। जो विभिन्न छन्दों में निबद्ध है। इन छन्दों में गाथा, रड, मडिल्ल, दोहा, रंगिका, षट्पद कवित्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भाषा की दृष्टि से हम इसे डिंगल की रचना कह सकते हैं। शब्दों पर जोर देने की दृष्टि से उन्हें युगलात्मक बनाया गया है। जैसे निर्वाण के लिए णिव्वाणि, पैदा होने के लिए उपज्जइ, एक के लिए इक्कु (१७) अधर्म के लिए अधम्म आदि इसके उदाहरण है। काव्य की कथा बड़ी रोचक एवं शिक्षाप्रद है। कथा भाग का सारांश निम्न प्रकार है।

कथा

प्रारम्भिक मंगलाचरण के पश्चात् कवि ने कहा है कि काया रूपी दुर्ग में चेतन राजा निवास करते हैं। मन उनका मंत्री है। प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो उसकी स्त्रियां हैं। दोनों के ही एक-एक पुत्र उत्पन्न होता है जिनके नाम मोह एवं

---

१. राइ विक्कम तणउ संवतु नवासिय पनरहसै सरद रुति आसवज वखाणिउ।
तिथि पडवा सुकलु पखु, सनि सुवार कछ नखितु जाणिउ ॥
मयण जुज्झ

विवेक हैं। चेतन राजा से दोनों को ही बराबर स्नेह मिलता है। मोह के घर में माया रानी होती है जो जगत को सहज ही में फुसला लेती है। निवृत्ति विवेक को साथ लेकर नगर छोड़ देती है। वे दोनों आगे चलकर पुण्य नगर पहुँचते हैं जहाँ चेतन राजा राज्य करते थे। वहाँ उन दोनों को बहुत आदर दिया गया। सुमति का विवाह विवेक के साथ हो जाता है। विवेक का वहाँ राज्य हो जाता है।

इससे मोह को बहुत निराशा होती है। उसने पुण्य नगर में अपने चार दूत भेजे। उनमें से तीन तो वापिस चले आये केवल वहाँ कपट बचा जो सरोवर पर पानी भरने वाली महिलाओं के पास जाकर बैठ गया। नगर में ज्ञान जल सरोवर भरा हुआ था। वहाँ जो वृक्ष थे वे मानो व्रत रूप ही थे। उस पर जो पक्षी बैठते थे वे मानों रिद्धि रूप में ही थे। कपट ने साधु का वेष धारण करके नगर में प्रवेश किया। वहाँ उसने न्याय नीति का मार्ग देखा तथा इन्द्र लोक के समान सुख देखे। वहाँ से वह अधर्मपुरी पहुँचा तथा मोह से सब वृतान्त कह सुनाया।

अपने दूत द्वारा सब वृतान्त सुनकर उसे बड़ा विषाद हुआ और उसने शीघ्र ही रोष, झूठ, शोक संताप, संकल्प विकल्प, चिंता, दुराव, क्लेश आदि सभी को अपने दरबार में बुलाया और निम्न वाक्य कहे—

करिवि सभा तब मोह मद्द, इव चितइ मन मांहि।
जब लग जीवइ विवेक इहु, तब लगु सुख हम नाहि ।।२३।।

मोह की बात सुनकर उसका पुत्र कामदेव उठा और उसने निवृत्ति के पुत्र विवेक को बांध कर लाने का वचन दिया। इससे सभी ओर प्रसन्नता छा गयी। साथ में उसने कुमति, कुसील एवं कुबुद्धि को साथ लिया।

कामदेव को अपनी विजय पर पूर्ण भरोसा था। सर्वप्रथम उसने बसन्त को भेजा। बसन्त के आगमन से चारों ओर वृक्ष एवं लताएं नवपल्लव एवं पुष्पों से लद गयी। कोयल कुहु कुहु की मधुर तान छेड़ने लगी तथा भ्रमर गुंजार करने लगे। सुरभित मलयानिल, सुन्दर मधुर गीत एवं वीणा आदि वाद्यों के मधुर गीत सुनायी देने लगे। चारों ओर अजीब मादकता दिखाई देने लगी। मदनराज आ गये हैं यह चर्चा होने लगी। कामदेव ने बहुत से ऋषि मुनियों को तप से गिरा दिया। बड़े-बड़े योद्धा जिन्हें अब तक मदोन्मत्त हाथी एवं सिंह भी डरा नहीं सके थे वे सब कामदेव के वशीभूत होकर चारों खाने चित्त पड़ गये। इस प्रकार कामदेव सब पर विजय प्राप्त करता हुआ उस वन में पहुँचा जहाँ भगवान ऋषभदेव ध्यानस्थ थे।

वह धर्मपुरी थी। विवेक ने संयमश्री का विवाह आदिनाथ से कर दिया था। लेकिन जब उसने कामदेव का आगमन सुना तो शत्रु को पीठ दिखा कर भागने

की अपेक्षा लड़ना उचित समझा। मदन सब देशों पर विजय प्राप्त करके स्वच्छन्द विचरने लगा। नट व भाट उसकी जय जयकार कर रहे थे। पिशाच एवं गंधर्व गीत गा रहे थे। कामदेव जब विजय प्राप्त करके लौटा तो उसका अच्छा स्वागत हुआ। रति ने भी कामदेव का खूब स्वागत किया और उसको विजय पर बधाई दी। लेकिन साथ में यह भी प्रश्न किया कि उसने कौन-कौन से देश पर विजय प्राप्त की है। इस पर कामदेव ने निम्न प्रकार उत्तर दिया—

जिणि संकरु इंदु हरि बंभु, वासिग्ग पयालि जिसु।
इंदु चंदु गहगण तारायण विद्याधर यक्ष सु गंधव्व सहि देव गण दण।
जोगी जंगम कापडी सन्यासी रस छंदि
ले लें तपु वण महि दुढिय ते मइं घाले बंदि ॥६२॥

रति ने अपने पति कामदेव की प्रशंसा करते हुए कहा कि धर्मपुरी को अभी और जीतना है जहाँ भगवान का ऋषभदेव का साम्राज्य है। रति की बात सुनकर कामदेव को बहुत क्रोध आया और वह तत्काल धर्मपुरी को विजय करने के लिए चल पड़ा। उसने आदीश्वर को शीघ्र ही वश में करने की घोषणा की। कामदेव ने अपने साथी क्रोध, मोह, मान एवं माया सभी को साथ लिया और धर्मपुरी पर आक्रमण कर दिया। अपने विपुल हावभाव एवं विलास रूपी अस्त्रों से उन्हें जीतने का उपक्रम किया।

दोनों ओर युद्ध के लिए खूब तैयारी की गयी तथा एक ओर सभी विकारों ने ऋषभदेव के गुणों पर आक्रमण कर दिया। अज्ञान ने ज्ञान को पछाड़ने का उपक्रम किया। मिथ्यात्व जैसे सुभट ने पूरे वेग से आक्रमण किया। लेकिन सम्यक्त्व रूपी योद्धा ने अपनी पूरी ताकत से मिथ्यात्व का सामना किया। जैसे सूर्य को देख-कर अन्धकार छिप जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व भी सम्यकत्व के सामने नहीं टिक सका। राग ने गरज कर अपना अस्त्र चलाया लेकिन वैराग्य ने इसके वार को बेकार कर दिया। मद ने अपने आठ साथियों के साथ ऋषभदेव पर एकसाथ आक्रमण किया लेकिन ऋषभदेव ने उन्हें मार्दव धर्म से सहज ही में जीत लिया। इसके पश्चात् माया ने अपना जाल फेंका और बाईस परिषहों ने एक साथ आक्रमण किया। लेकिन ऋषभदेव ने माया को आर्जव से तथा बाईस परिषहों को अपने 'धीरज' सुभट से सहज ही में जीत लिया। इसके पश्चात् 'कलह' ने पूरे वेग से अपना अधिकार जमाना चाहा लेकिन क्षमा के सामने वह भी भाग गया। अब मोह का कोई वश नहीं चला और वह मुख फेर कर चल दिया तो लोभ ने अपनी पूरी सामर्थ्य से विजय प्राप्त करना चाहा। उसका प्रभाव सारे विश्व में व्याप्त है, कभी वह आगे बढ़ता और कभी पीछे हट जाता। लेकिन जब सन्तोष ने पूरे वेग से प्रत्याक्रमण किया तो वह ठहर नहीं सका। कुशील पर ब्रह्मचर्य ने विजय प्राप्त की।

ऋषभदेव ने कुमति को तो पहिले ही छोड़ दिया था इसलिए सुमति ही विवेक के साथ हो गयी। लेकिन मोह ने अपने सभी साथियों की हार सुनी तो उसकी आँखें लाल हो गयी तथा वह दांत पीसने लगा तथा अपने रौद्र रूप से उसने आक्रमण कर दिया। ऋषभदेव ने विवेक रूपी सुभट को बुलाया और स्वयं अपूर्व-करण गुणस्थान में विचरने लगे। मोह की एक भी चाल नहीं चली और अन्त में वह भी मुख मोड़ कर चल दिया।

जब कामदेव ने मोह को भी भागते देखा तो वह अपनी पूरी सेना के साथ मैदान में उतर गया। लेकिन ऋषभदेव संयम रूपी रूप में सवार हो गये थे। तीन गुप्तियाँ उनके रथ के घोड़े थे। पंच महाव्रत एवं क्षमा उनके योद्धा थे। ज्ञान रूपी तलवार को हाथ में लेकर सम्यक्त्व का छत्र तान कर वे मैदान में उतरे। रणभूमि से कामदेव के सहायक एक-एक करके भागना चाहा। लेकिन ऋषभदेव ने युद्ध भूमि का घेरा इतना शीघ्र किया कि कोई भी वहाँ से भाग नहीं सका और सबको एक-एक करके जीत लिया गया। चारों कषायों को जीत लिया, मिथ्यात्व का पता भी नहीं चला। ऋषभदेव को कैवल्य होते ही देवो ने दुदुंभि बजानी प्रारम्भ कर दी तथा चारों दिशाओं में ऋषभदेव के गुणगान होने लगे।

इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत काव्य में काम विकार एवं उसके साथियों पर जिस प्रकार गुणों की विजय बतलायी है वह अपने आप में अपूर्व है। इस प्रकार के रूपक काव्यों का निर्माण करके जैन कवि अपने पाठकों को तत्कालीन युद्ध के वातावरण से परिचित भी रखते थे तथा उन्हें आध्यात्मिकता से दूर भी नहीं होने देते थे।

भाषा एवं शैली

मयणजुज्झ यद्यपि अपभ्रंश प्रभावित कृति है लेकिन इसमें हिन्दी के शब्दों का एवं उसके दोहा एवं रड, षट्पद, वस्तुबंध एवं कवित्त जैसे छन्दों का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि देशवासियों का मानस हिन्दी की ओर हो रहा था तथा वे हिन्दी की कृतियों के पढ़ने के लिए लालायित थे। हिन्दी का प्रारम्भिक विकास जानने के लिए मयण जुज्झ अच्छी कृति है।

कवि ने कुछ तत्कालीन प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है। उसने सेना के स्थान पर फौज शब्द का[1] तथा तुरही के स्थान पर नफीरी का प्रयोग किया है।

---

१ ले फौज सबतु संकहि करि, इव विवेक भड आइयउ।

इससे पता चलता है कि कवि प्रचलित शब्दों के प्रयोग का मोह नहीं त्याग सका और उसने अपने काव्य को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके उनको भी अपनाने का प्रयास किया ।

मयणजुज्झ की राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में कितनी ही प्रतियाँ संग्रहीत है । इनमें निम्न उल्लेखनीय हैं ।

१. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर	गुटका सं०	२३२	पद्य सं० १५८	लिपि सवत् १६१६
२. दि० जैन मन्दिर दीवानजी कामां[1]	,,	६	—	—
३. दि० जैन मन्दिर लश्कर, जयपुर	,,	१६	—	—
४. दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथी जयपुर[2]	,,	२४२	—	लिपि सं० १७०५
५. दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथी, जयपुर	,,	२७६	—	,, १७०७
६. महावीर भवन, जयपुर[3]	,,	४६	,, १५६	—
७. दि० जैन मन्दिर नागदी, बूंदी		१०४	१४२	—

२. संतोष जयतिलकु

बूचराज की यह दूसरी रचना है जिसमें उसने रचना समाप्ति का उल्लेख किया है । संतोष जयतिलकु का रचना काल संवत् १५९१ भाद्रपद शुक्ला ५ है अर्थात् मयण जुज्झ के ठीक २ वर्ष पश्चात् कवि ने प्रस्तुत कृति को समाप्त किया था ।[4] दो वर्ष के मध्य में कवि केवल एकमात्र रचना लिख सके अथवा अन्य लघु रचनाओं को भी स्थान दिया इसके सम्बन्ध में निश्चित जानकारी नहीं मिलती है । लेकिन कवि राजस्थान से पंजाब चले गये थे यह अवश्य सत्य है । प्रस्तुत कृति को उन्होंने हिसार में छन्दोबद्ध की थी । जैसा कि स्वयं कवि ने उल्लेख किया है

संतोषह जय तिलउ जंपिउ हिसार नयर मंझ में ।
जे सुणहि भविय इक्क मनि ते पावहि वंछिय सुक्ख ।।

संतोष जय तिलकु भी एक रूपक काव्य है जिसमें लोभ पर संतोष की विजय बतलायी

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार को ग्रन्थ सूची पंचम भाग पृष्ठ ६८४, १०८८, ११०६ ।
२. वही, द्वितीय भाग ।
३. वही, प्रथम भाग ।
४. संवति पनरह इक्याणइ भद्दवि सिय पक्खि पंचमी दिवसे ।
सुक्कवारि स्वाति वृषे जेउ तह जाणि बंभणामेण ।।१२२।।

गयी है। मयरण जुज्झ में जिस प्रकार ऋषभदेव नायक एवं कामदेव प्रतिनायक है उसी प्रकार प्रस्तुत काव्य में संतोष नायक एवं लोभ प्रतिनायक है। ऐसा लगता है कि कवि आत्मिक विकारों की वास्तविकता को पाठकों के सामने प्रस्तुत करके उन्हें आत्मिक गुणों की ओर लगाना चाहता था तथा आत्मिक गुणों की महत्ता को रूपक काव्यों के माध्यम से प्रकट करना उसको अधिक रुचिकर प्रतीत होता था।

प्रस्तुत रूपक काव्य में १२३ पद्य हैं जो साटिक, रड्, गाथा षट्पद, दोहा, पद्धडी छंद, मडिल्ल, चंदाइरण छन्द, गीतिका छन्द, तोटक छन्द, रंगिका छन्द, जैसे छन्दों में विभक्त है। छोटे से काव्य में विभिन्न ११ छन्दों का प्रयोग कवि के छन्द ज्ञान की ओर तो प्रकाश डालता ही है साथ ही में तत्कालीन पाठकों की रुचि का भी हमें बोध कराता है कि पाठक ऐसे काव्यों का संगीत के माध्यम से सुनना अधिक पसन्द करते थे। इसके अतिरिक्त उस समय सगुण भक्ति के गुणानुवाद से भी पाठक गण ऊब चुके थे इसलिए भी वे अध्यात्म की ओर झुक रहे थे।

प्रस्तुत काव्य की संक्षिप्त कथा निम्न प्रकार है।

मंगलाचरण के पश्चात् कवि लिखता है कि भगवान महावीर का समवसरण पावापुरी में आता है। भगवान की जब दिव्य ध्वनि नहीं खिरती तब इन्द्र गौतम ऋषि के पास जाता है और कहता है कि महावीर ने तो मौन धारण कर रखा है इसलिए "त्रैकाल्यं द्रव्य षटकं नव पद सहितं' आदि पद्य का अर्थ कौन समझा सकता है? तब गौतम तत्काल इन्द्र के साथ जाने को तैयार हो जाते हैं। जब वे दोनों महावीर के समवसरण में स्थित मानस्तम्भ के पास पहुंचते हैं तो मानस्तम्भ को देखते ही गौतम का मान द्रवित हो जाता है।

देखंत मानथंभो गलियउ तिसु मानु मनह मज्झमे।
हुवउ सरल पणामो पुछ गोइमु चित्ति संदेहो ।।१०।।

गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा कि स्वामी, यह जीव संसार में लोभ के वशीभूत रहता है तो उसके बचने के क्या उपाय हैं? क्योंकि लोभ के कारण ही मानव प्राणिवध करता है, लोभ के कारण ही वह झूठ बोलता है। लोभ से ही वह दूसरों के द्रव्य ग्रहण करता है। सब परिग्रहों के संग्रह में भी लोभ ही कारण है। जिस प्रकार तेल की बूंद पानी में फैल जाती है उसी प्रकार यह लोभ भी फैलता रहता है। एक इन्द्रिय के वश में आने से यह प्राणी इतने दुःख पाता है तो पांच इन्द्रियों के वशीभूत होने पर उसकी क्या दशा होगी, यह वह स्वयं जान सकता है। लोभी मनुष्य उस कीड़े के समान है जो मधु का संचय ही करता है उसका उपयोग नहीं करता है। क्रोध, मान, माया तथा लोभ इन चारों में लोभ ही प्रमुख है।

इसके साथ ही तीन अन्य कषायों का प्रादुर्भाव होता है। जैसे सर्प के गले में गरल विष संयुक्त होता है उसी प्रकार राग एवं द्वेष दोनों ही लोभ के पुत्र हैं। जहाँ राग सरल स्वभावी एवं द्वेष वक्र स्वभावी होता है। लोभ के इन दोनों पुत्रों ने सभी प्राणियों को अपने वशीभूत कर रखा है फिर चाहे वह योगी हो अथवा यति एवं मुनि हो। भगवान महावीर गौतम ऋषि से कहते हैं कि प्राणी को चारों गति में डुलाने वाला यह लोभ ही है, इसलिए लोभ से बुरा कोई विकार नहीं है।

गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से फिर प्रश्न किया कि लोभ पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है तथा किस महापुरुष ने लोभ पर विजय पायी है। इस प्रकार भगवान महावीर ने निम्न प्रकार कहा—

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु,
यहु लासणु विम्मलइ, सुणतं धम्मु भव बंध तुट्टहि,
अति सूषिम भेद सुणि, मनि सदेहं खिण माहि मिट्टहि।
काल अनंतिहि ज्ञान यहि कहियउ आदि अनादि।
लोमु दुसहु इव जिणियइ संतोषह परसादि ॥४८॥

लेकिन गौतम ने भगवान से फिर निवेदन किया कि संतोष कैसे पैदा हो, उसके रहने का स्थान कौन सा है। किसके साथ होने से उसमें शक्ति आती है। उसकी कौन-कौन सी सेना दल है तथा संतोष सुभट कैसा है। जब तक ये सब मालूम नहीं होगा लोभ पर विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

महावीर स्वामी ने कहा कि आत्मा में संतोष स्वाभाविक रूप से पैदा होता है तथा वह आत्मपुरी में ही रहता है। धर्म की सेना ही उसका बल है। ज्ञान रूपी बुद्धि से उस पर विजय प्राप्त की जा सकती है। जिस प्राणि ने संतोष को अपने में उतार लिया बस समझलो कि उसने जगत को ही जीत लिया। जिसके जितना अधिक संतोष होगा उसको उतना ही सुख प्राप्त हो सकेगा। संतोषी प्राणी में राग द्वेष की प्रवृत्ति नहीं होती तथा वह शत्रु मित्र में समान भाव रखने वाला होता है। जिनके हृदय में संतोष है उनकी बुद्धि चन्द्रकला के समान होती है तथा उनका हृदय कमल खिल जाता है। संतोष एक चिंतामणि रत्न है जिससे चित्त प्रसन्न रहता है। वह कामधेनु के समान सबको वांछित फल देता रहता है। जहाँ संतोष है वहाँ सब सुख विद्यमान हैं। संतोष से उत्तम ध्यान होता है, परिणामों में सरलता आती है। वांछित सुखों की प्राप्ति होती है। संतोष से संवर तत्व की प्राप्ति होती है जिसके सहारे संसार को पार किया जा सकता है और अन्त में निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है।

इधर जब लोभ को संतोष की बात मालूम हुई तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने संतोष को सदा के लिए समाप्त करने की घोषणा कर दी। उसने उस समय झूठ को अपना प्रधान बनाया। क्रोध एवं द्रोह, कलह एवं क्लेश, पाप एवं संताप सभी को उसने एकत्रित किया। मिथ्यात्व, कुव्यसन, कुशील, कुमति, राग एवं द्वेष सभी वहाँ आ गये और इन सब को अपने साथ देखकर लोभ प्रसन्न हो गया। उसने कपट रूपी नगाड़ों को बजाया तथा विषय रूपी घोड़ों पर बैठकर संतोष पर आक्रमण कर दिया।

संतोष ने जब लोभ रूपी शत्रु का आक्रमण सुना तो उसे प्रसन्नता हुई। उसका सेनापति आत्मा वहीं आ गया और उसने अपनी सेना को भी वहीं बुला लिया। वहाँ १८००० अंगरक्षकों के साथ शील सुभट आया। साथ में ही सम्यक् दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र, वैराग्य, तप, करुणा, पंच महाव्रत, क्षमा एवं संयम आदि सभी योद्धा वहाँ आ गये। वह अपने सैनिकों को लेकर लोभ से जा टकराया। जिन शासन की जय जयकार होने लगी तो मिथ्यात्व भागने लगा। जय जयकार की महाध्वनि को सुनकर ही कितने ही शत्रु पक्ष के योद्धा लड़खड़ा गये। शील का चोला पहनकर रत्नत्रय के हाथी पर सवार होकर विवेक की तलवार लेकर सम्यकत्व रूपी छत्र पहनकर पद्म एवं शुक्ल लेश्या के जिस पर चंवर ढुल रहे थे, ऐसा संतोष राजा रण में लोभ से जा भिड़ा। उसने अपने दल के अन्दर अध्यात्म का संचार किया। जो शूरवीरों के हृदयों में जाकर बैठ गया। एक ओर लोभ छलकपट से अपनी शक्ति को तोलने लगा तथा दूसरी ओर संतोष ने अपने सुभटों में सरलता एवं निर्मलता के भाव भरे। इस पर दोनों ओर से चतुरंगिनी सेना एकत्रित हो गयी। भेरी बजने लगी। तब लोभ ने अपने सैनिकों को संतोष के सैनिकों पर आक्रमण करने के लिए ललकारा। संतोष ने लोभ से कहा कि ऐसा लगता है कि उसके सिर पर काल चढ़ गया है। उसके सब साथियों को मूढ़ता सता रही है। जहाँ लोभ है वहाँ रात दिन यह प्राणी दुःख सहता रहता है। लेकिन जहाँ संतोष है वहाँ उसकी इन्द्र एवं नरेन्द्र सेवा करते हैं। लोभ ने जगत में अभी तक सभी को सताया है तथा जगत में सभी को जीत रखा है, लेकिन आज संतोष का पौरुष भी देखे। यह सुनकर लोभ ने झूठ को आगे भेजा। लेकिन संतोष ने सत्य को भेजा और उसने उसका सिर काट लिया। इसके पश्चात् मान को बीड़ा दिया गया और वह जब रणभूमि में उतरा तो मार्दव ने उसका सामना किया और उसको बलहीन कर दिया। लेकिन फिर भी वह हटा नहीं तो महाव्रतों ने एक साथ उस पर आक्रमण कर दिया और क्षण भर में ही उसे परास्त कर दिया। अब मोह अपने प्रचण्ड हाथी पर बैठ कर आगे बढ़ा। मोह को देखकर विवेक उठा और उसे रणभूमि में से भागने

पर मजबूर कर दिया। माया ने विविध रूप धारण कर लिया और यह समझा कि उससे लड़ने की किसी में शक्ति नहीं है। लेकिन आर्जव ने उसे सहज में ही जीत लिया। क्रोध को क्षमा से तथा मिथ्यात्व को सम्यकत्व से जीत लिया गया। आठ कर्मों के प्रखर प्रहार को तप से जीतने में सफलता प्राप्त की। अन्य जितने भी छोटे-छोटे योद्धा थे उनकी एक भी नहीं चली और उन्हें युद्ध भूमि में ही सुला दिया। लोभ अपने सभी साथियों को युद्ध भूमि में खेत हुआ देखकर माथा धुनने लगा।

लोभ गरज कर अपने हाथी पर सवार हुआ। कपट का उसने छत्र लगाया तथा विषयों की तलवार को हाथ में ली। लेकिन सामने दसवें गुणस्थान में चढ़े हुए तपस्वी विराजमान थे। लोभ पूरे विकट स्वभाव में था। कभी वह बैठता, कभी वह उठता, कभी आकाश में और कभी पृथ्वी पर अपना जाल फैलाने लगता। वह अपने विभिन्न रूप धारण करता। लोभ का रूप ऐसी अग्नि की करणी के समान लगने लगा जो, क्षण भर में ही सारे जंगल को जला डालती है।

लोभ का सामना करने के लिए संतोष आगे बढ़ा। दसवें गुणस्थान से आगे बढ़कर शुक्ल ध्यान में विचरने लगा। अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया और केवल ज्ञान प्रकट हुआ। जिन वचनों को चित्त में धारण कर संतोष ने लोभ पर विजय प्राप्त की। तेरह प्रकार के व्रतों को, बारह प्रकार के तप को अपने में समाहित कर लिया।

संतोष की विजय के उपरान्त देवगण दुदुंभि बजाने लगे। ग्यारह अंग और चौदह पूर्व का ज्ञान प्रकट हो जाने से मिथ्यात्वियों का गर्व गल गया और चारों ओर आत्मा की जय जयकार होने लगी।

भाषा

प्रस्तुत कृति की भाषा यद्यपि मयणजुज्झ से अधिक परिस्कृत है लेकिन फिर भी वह अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो सकी है। बीच-बीच में गाथाओं का प्रयोग हुआ है। शब्दों को उकारान्त बनाकर प्रयोग करने में कवि को अधिक रुचि दिखलायी देती है।

कवि नाम

कवि ने प्रस्तुत कृति में अपना नाम 'वल्हि' लिखकर रचना समाप्त की है।[1]

---

१. वहु संतोषह् जय तिलउ जंपइ वल्हि सभाइ।

३. बारहमासा नेमीश्वरका

नेमि राजुल को लेकर प्राय: प्रत्येक जैन कवि किसी न किसी कृति की रचना करता रहा है। हमारे कवि बूचराज ने भी नेमीश्वर का बारहमासा लिख-कर इस परम्परा को जीवित रखा। यह बारह मासा श्रावण मास से प्रारम्भ होकर आषाढ़ मास तक चलता है। इसमें राग् वड़हंसु के १२ पद्य हैं जिनमें एक-एक महिने का वर्णन किया गया है। राजुल की विरह वेदना तथा नेमिनाथ के तपस्वी जीवन के प्रति जो उसकी अप्रसन्नता थी वह सब इन पद्यों में व्यक्त की गयी है।

इसमें न तो रचना काल दिया हुआ है और न रचना स्थान। इससे कृति का निश्चित समय नहीं दिया जा सकता है। फिर भी भाषा एवं शैली की दृष्टि से रचना संवत् १५६१ के पश्चात् किसी समय लिखी गयी थी। इसमें कवि ने अपना नाम 'बूचा' कह कर उल्लेख किया है।[1]

बारह मासा सावण माम से प्रारम्भ होता है। सावण में राजुल नेमिनाथ से अन्यत्र गमन न करने का आग्रह करती है तथा कहती है कि उनके अभाव में उसका शरीर [illegible] क्षीण हो रहा है। जब आकाश में बिजली चमकती है तो उसका विरह असह्य हो जाता है। जब मोर कुह कुह की आवाज करते हैं उस समय नेमि की याद आती है। इसलिए वह सावण मास में अन्यत्र गमन न करने की प्रार्थना करती है।[2]

कातिक का महिना जब आता है तो राजुल हाथों में दीपक लेकर अपने महल पर चढ़कर नेमिनाथ का मार्ग खोजती है। उसकी आँखें आंसुओं से भर जाती हैं। वे दशों दिशाओं की ओर दौड़ती हैं। सरोवर पर सारस पक्षी के जोड़े को देखकर वह कहती है कि नवयौवना एवं तरुणी बाला ऐसे समय में अपने पति के विरह में कैसे जीवित रह सकती है। इसलिए वह नेमिनाथ से कातिक के महिने में वापिस आने की प्रार्थना करती है।

---

१. आषाढ़ वड़िया भणइ बूचा नेमि अजउ न आईया।

२. ए रुति सावणे सावणि नेमि जिण गवणो न कीजं वे।
सुणि सारंगा भाष दुसह तनु खिणु खिणु छीजे वे।
छीजंति बाढ़ी विरह व्यापित धुरइ घण मइ संतिया।
सालुर सरि रड रडहि निसि भरि रयणि बिजु खिवंतिया।
सुरगोपि मह सुह वसुह मंडत मोर कुह कुहि वणि वणि।
विनवंति राजुल सुणहु नेमिजिन गवउ मा कइ सावणे॥१॥

इसी प्रकार जब वैशाख का महिना आता है तो नयनों को केवल नेमि की बाट जोहने का काम ही रहता है जब नेमि नहीं आते हैं तो वे वर्षा ऋतु के समान वे बरसने लगते हैं ।[1]

उनके वियोग में उसका वज्र का हृदय नहीं फटता है इसलिए ए सखि उनके बिना वैसाख महिना अत्यधिक दारुण दुख को देने वाला बन जाता है ।[2]

नेमि राजुल को लेकर कितने ही जैन कवियों ने बाराह मासा निबद्ध किये हैं । विरह का एवं षट् ऋतुओं का वर्णन करने के लिए नेमि राजुल का जीवन जैन साहित्य में सबसे अधिक आकर्षण की सामग्री है ।

कविवर बूचराज के प्रस्तुत बारहमासा का हिन्दी बारहमासा साहित्य में उल्लेखनीय स्थान है । कवि ने इसमें राजुल के मनोगत भावों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे पाठको को प्रभावित किये बिना नहीं रहते । कवि के प्रत्येक शब्द में विरह व्यथा छिपी हुई है और वह परिणय की आशा लगाये विरही नव यौवना के विरह का सजीव चित्र उपस्थित करता है । राजुल को प्रत्येक महिने में विरह वेदना सताती है तथा उस वेदना को वह नेमि के बिना सहन करने में अपने आपको असमर्थ पाती है । कवि को राजुल की विरह वेदना को सशक्त शब्दों में प्रस्तुत करने में पूर्ण सफलता मिली है ।

४. चेतन पुद्गल धमाल

कविवर बूचराज की यह महत्वपूर्ण कृति है । पूरी कृति में १३६ पद्य हैं ।

---

१. इनु कातेगे कातिगि आगमु की ताका पालैवा ।
चढि मंडपे मंडपि राजुल मग्गो नेहो लेवे ।
मग्गो निहालै नेमि राजुल नयरा बहु विसि धावए ।
सर रसहि सारस रयरिगभिनी दुसहु विरहु जगावए ।
कि बरहउ तुम विगु पेम लुद्धिय तरुरिग जोवरिग बालाए ।
बाहुकहु नेमि जिरग चढिउ कातिगु किमउ आगमु पालए ।।४।।

२. ए यहु आइयवा अब दुसहु सखी वइसाखो वे ।
जइयहसेवा इसि जाइ सनेहडा आखीव ।
आखी सनेहा जाइ बाइस अन्नु नीरु न भावए ।
दुइ नयरा पावस करहि निसि दिनु चितु भरि भरि आवए ।
फुट्टउ न जं वल्लम वियोगिनि हियारा कुलि वज्जिहिं घड़या ।
वइसाखु तुम विरगु सुराहु सखिए दुसहु अति दारगु चड़या ।।१०।।

उनमें १३१ पद्य राग दीपगु तथा शेष ५ अष्टपद छप्पय छन्द में निबद्ध है। कवि ने धमाल का रचना काल एवं रचना स्थान दोनों ही नहीं दिये हैं। लेकिन भाषा की दृष्टि से यह रचना उसकी अन्तिम रचनाओं में से दिखती है। कवि ने इस कृति में अपने आप का बल्हपति[1], बल्ह[2], बूचा[3] इन तीन नामों से उल्लेख किया है।

चेतन पुद्गल धमाल एक संवादात्मक कृति है। जिसमें संवाद के माध्यम से चेतन एवं पुद्गल दोनों अपना-अपना पक्ष रखते हैं, एक दूसरे पर दोषारोपण करते करते हैं। संसार में फिराने एवं निर्वाण मार्ग में रुकावट पैदा करने में कौन कितना सहायक है, इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। इस प्रकार के वर्णन प्रथम बार देखने में आये हैं और वे वर्णन भी एकदम विस्तृत। चेतन पुद्गल के संवाद इतने रोचक एवं आकर्षक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। पं० परमानन्दजी शास्त्री ने अपने एक लेख में इस कृति का नाम अध्यात्म धमाल भी दिया है।[4] लेकिन स्वयं कवि ने इसे संवादात्मक कृति के रूप में प्रस्तुत करने को कहा है।[5]

कवि ने प्रारम्भ में सम्यग्ज्ञान रूपी दीपक की प्रशंसा की है। जिसके द्वारा मिथ्यात्व का पलायन हो जाता है। इसके पश्चात् चौबीस तीर्थंकरों का २५ पद्यों में स्तवन किया गया है। फिर चेतन को इस प्रकार सम्बोधित करके रचना प्रारम्भ की गयी है।

यह जड़ खिणिहि विनंसिणी, ता सिउ संगु निवारू।
चेतन सेती पिरती करु, जिउ पावहि भव पारो।

चेतन गुण ॥३३॥

चेतन और जड़ के विवाद को प्रारम्भ करते हुए कहा गया है कि जिसने जड़ को अपना मान लिया तथा उससे प्रीति कर ली वह संसार सागर में निश्चय ही डूबता है। क्योंकि विषधर के मुख में दूध पड़ने पर उसका विष रूप ही परिणमन होता है। उससे अच्छे फल की आशा करना व्यर्थ है। लेकिन इस मन्तव्य का जड़ ने

---

१. कवि बल्हपति सुस्वामि के एवड चलनं सिर धारि ॥१॥
२. जिण सासण महि दीवडा बल्ह पया नवकार ॥३॥
३. इव भणइ बूंचा सदा निम्मलु मुकति सरूपी जीया ॥१३६॥
४. अनेकान्त वर्ष १६–१७ पृष्ठ २२६।
५. पंच प्रमिष्टि बल्ह कवि ए पणमी धरिभाउ।
चेतन पुद्गल बहूक साखु विवादु सुणाओ ॥ चेयण सुणु ॥३२॥

बहुत सुन्दर खण्डन किया है जो निम्न प्रकार है—

चेतनु चेति न चालई, कहइत मानै रोसु ।
आये बोलत सो फिरै, जइहि लगावहि दोसु ।। चेयन पुग्गु ।।३८।।

चेतन षट्रस एवं अन्य विविध पकवानों से शरीर को प्रतिदिन सींचता रहता है तो फिर इन्द्रियों के वशीभूत चेतन से धर्म पर चलने की आशा कैसे की जा सकती है। खेत में जब समय पर बीज ही नहीं डाला जावेगा तो उसके उगने की आशा भी कैसे की जा सकती है। वास्तव में देखा जावे तो यह चेतन अब २४ प्रकार के परिग्रह तज कर १५ प्रकार के योग धारण करता है लेकिन वह सब तो जड़ के सहारे से ही है। फिर उसकी निन्दा क्यों की जावे। पुद्गल का विश्वास कर जो प्राणी मन में निश्चिंत हो जाता है वह तो निश्चित ही कलंकित होने के समान है। यह मूर्ख मानव आपने आपको जाग्रत नहीं करता है और विषयों में लुभाए रखता है। वह तो अंधे पुरुष द्वारा बटने वाली उस जेवड़ी के समान है जिसको पीछे से बछड़े खाते रहते हैं।

मूरख मूलनु चेतई, लाहे रह्या लुभाइ ।
अंधा बाटै जेवड़ी, पाछइ बाछा खाइ ।।४५।।

जड़ फिर चेतन को कहता है कि जिसने पाँचों इन्द्रियों को वश में करके आत्मा के दर्शन किये हैं उसी ने निर्वाण पद प्राप्त किया है तथा उसका फिर चतुर्गति में जन्म नहीं होता,

पंचे इंदी दंडि करि, प्राणी अप्पणु जोइ ।
जिउ पावहि निरवाण पदु, चौगइ जनमु न होइ
चेयन पुग्गु ।।४८।।

जैसे काष्ठ में अग्नि, तिलों में तेल रहता है उसी प्रकार अनादि काल से चेतन और पुद्गल की एकात्मकता रहती है। पुद्गल के उक्त कथन का चेतन निम्न प्रकार उत्तर देता है,

लेहि बैसंदरु कठु तजि लेहि तेलु खलि राडि ।
चेतहि चेतनु मेलियै, पुद्गल परिहरि काडि ।।
चेतन पुग्ग ।।५५।।

मन का हठ सभी कोई पूरा करते हैं लेकिन चित्त को कोई भी वश में नहीं करता है क्योंकि शिखर के चढ़ने के पश्चात् घबराहट होने पर उसको दूर कैसे की जा सकती है—

मन का हठु सबु कोइ करइ, चित्तु वसि करइ न कोइ ।
चडि सिखरहु जब खडहुडै, तबरु विगुचणि होइ ।। चेयन पुग्गु ।।

इसका उत्तर चेतन ने निम्न प्रकार दिया,

सिखरहु भूलिन खडहडे जिण सासण आधारु ।
सूलि ऊपरि सीभियां चोरि जप्या नवकारु ।। चेयन गुण ।।६६।।

जड़ और पुद्गल ने बहुत सुन्दर एवं तर्कपूर्ण विवाद होता है लेकिन दोनों ही एक दूसरे के गुणों की महत्ता से अपरचित लगते हैं । इसलिए एक दूसरे के अवगुणों को बखारने में लगे रहते हैं ।

पुद्गल कहता है—कि पहले अपने आपको देखकर संयम लेना चाहिए । जितना ओढ़ना हो उतना ही पांव पसारना चाहिए । इसका पुद्गल उत्तर देता हुआ कहता है कि भला-भला सभी कहते हैं लेकिन उसके मर्म को कोई नहीं जानता । शरीर खोने पर किससे भला हो सकता है—

भला करितहि मीत सुणि, जे हुइ बुरहा जाणि ।
तो भी भला न छोड़िये उत्तिम यहु परवाणु ।। चेयन गुण ।।७०।।
भला भला सहु को कहै, मरमु न जाणै कोइ ।
काया खोई मीत रे भला न किस ही होए ।। चेयन गुण ।।७१।।

यह शरीर हाड मांस का पिंजरा है । जिस पर चमड़ी छायी हुई है । यह अन्दर नरकों से भरा हुआ है लेकिन यह मूर्ख मानव उस पर लुभाता रहता है । इसका पुद्गल बहुत सुन्दर उत्तर देता है कि जैसे वृक्ष स्वयं धूप सहन कर औरों को छाया देता है उसी तरह इस शरीर के संग से यह जीव मोक्ष प्राप्त करता है ।

हाडह केरा पंजरी शरिया चम्मिहि छाइ ।
बहु नरकिहि सो पूरिया, मुरिखु रहिउ लुभाए ।। चेयन गुण ।।७२।।
जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छाहु कराइ ।
तिउ इसु काया संगते, जीयड़ा मोखिहि जाए ।। चेयन गुण ।।

जिस तरह चन्द्रमा रात्रि का मण्डल और सूर्य दिन का उसी तरह इस चेतन का मण्डल शरीर है ।

जिउ ससि मंडणु रयणिका, दिन का मंडणु भाणु ।
तिम चेतन का मंडणा यहु पुद्गलु तूं जाणु ।। चेयन गुण ।।७८।।

काया की निन्दा करना तथा प्रत्येक क्षेत्र में उसे दोषी ठहराना पुद्गल को अच्छा नहीं लगा इसलिए वह कहता है कि चेतन शरीर की तो निन्दा करता है किन्तु अपनी ओर तनिक भी झांक कर नहीं देखता । किसी ने ठीक ही कहा है कि जैसे-जैसे कांवली भीगती है वैसे-वैसे ही वह भारी होती जाती है ।

काया की निन्दा करहि, आपुन देखहि जोइ।
जिउं जिउं भीजइ कावली, तिउ तिउ भारी होइ।। चेयन सुणु ।।६०।।

चेतन कहता है कि उस जड़ को कौन पानी देगा जिसके न तो फूल है न फल और न पत्ते हैं। उस स्वर्ण का क्या करना है जिसके पहिनने से कान ही कट जावें।

सा जड़ मूड न सीचियै, जिसु फलु फूलु न पातु।
सो सोना क्या फूकिये, जोह कटावै कान ।। चेयन गुण ।।१०६।।

पुद्गल इसका बहुत सुन्दर उत्तर देता है कि यौवन, लक्ष्मी, शरीर सुख एवं कुलवंती स्त्री ये चारों पुण्य जिसे प्राप्त हैं वे तो देवताओं के इन्द्र ही हैं।

संवादात्मक रूप में कवि कहता है कि जिन्होंने उद्यम, साहस, धीरता, बल, बुद्धि और पराक्रम इन छः बातों की ओर मन को सुदृढ़ कर लिया उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया है।

उद्दिमु साहसु धीर बलु, बुद्धि पराकमु जाणि।
ए छह जिनि मनि दिढु किया, ते पहुचा निरवाणि ।।
चेयन सुणु ।।१२०।।

प्रस्तुत कृति में १३२ से १२६ तक के ५ पद्य अष्ट पद्य छप्पय छन्द के हैं। इनमें दो पद्यों में जड़ का प्रस्ताव है तथा तीन में चेतन का उत्तर है। अन्तिम पद्य चेतन द्वारा कहलवाया गया है जिसमें जड़ से प्रतीति नहीं करने का उपदेश दिया गया है—

जिय मुकति सरूपी तूं निकलमलु राया।
इसु जड़ कै संग ते भमिया करमि भमाया।
कढि कवल जिवा गुणि तजि कद्दम संसारो।
भजि जिण गुण हीयडै तेरा यहु विवहारो।
विवहारु यहु तुझु जाणि जीयडे करहु इंदिय संवरो।
निरजरहु बंधण करम्म केरे जानत निहकावरो।
जे बयन श्री जिण वीरि भासे ताह नित धारहु हीया।
इव भणइ बूचा सदा निम्मलु मुकति सरूपी जीया ।।१३६।।

इस प्रकार चेतन पुद्गल धमाल हिन्दी जगत का प्रथम संवादात्मक रोचक काव्य है जिसमें चेतन एवं जड़ में परस्पर गहरा किन्तु मैत्री पूर्ण वाद विवाद होता है। इसमें चेतन वादी है और पुद्गल प्रतिवादी है। 'चेयन सुणु' यह पुद्गल कहता है तथा 'चेयन गुण' यह चेतन द्वारा कहा जाता है। पूरा काव्य सुभाषितों

एवं सूक्तियों से भरा पड़ा है। कवि ने जिन सीधे सादे शब्दों में प्रस्तुत किया है वह उसके गहन तत्व ज्ञान एवं व्यावहारिक ज्ञान का परिचायक है। कवि ने लोक प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग करके संवाद को सजीव बनाने का प्रयास किया है।

भाषा, शैली एवं विषय वर्णन आदि सभी दृष्टियों से यह एक उत्तम काव्य है।

५. नेमिनाथ बसन्तु

यह एक लघु रचना है जिसमें बसन्त ऋतु के आगमन का आध्यात्मिक शैली में रोचक वर्णन किया गया है। एक ओर नेमिनाथ तपस्या में लीन है दूसरी ओर मादकता उत्पन्न करने वाली बसन्त ऋतु भी आ जाती है। राजुल ने पहिले ही संयम धारण कर लिया है इसलिये उसका मन रूपी मधुवन संयम रूपी पुष्प से भरा हुआ है। बसन्त ऋतु के कारण बोलसिरी महक रही है। समूचे सौराष्ट्र में कोयल कुहक रही है। भ्रमरों की गुंजार हो रही है। गिरनार पर्वत पर गन्धर्व जाति के देव गीत गा रहे हैं। काम विजय के नगारे क्या बज रहे हैं मानों नेमिनाथ के यश के ढोल बज रहे हैं। और उनकी कीर्ति स्वयं ही नाच रही हो। संयम श्री वहां निर्भय होकर घूमती है क्योंकि संयम शिरोमणि नेमिनाथ के शील की १८ हजार सहेलियां रक्षा में तत्पर है। उनके शरीर में ज्ञान रूपी पुष्प महक रहे हैं तथा वे चारित्र चन्दन से मंडित है। मोक्ष लक्ष्मी उनसे फाग खेलती है। नेमिनाथ तो नवरत्नों से युक्त लगते हैं लेकिन बसन्त स्वयं नवरसों से रहित मालूम पड़ता है। नेमि ने छलिया बनकर मानों तीनों लोकों को ही अपने अपने वश में कर लिया है।

संयम श्री राजुल ऐसी सुहावनी ऋतु में अपने नेमि को देखती है जो जब संसार जगता है तब वे सोते हैं और जब वे सोते हैं तो संसार जगता है। जिसने मोह के किवाड़ों को अपने अनिमिष नेत्रों से जला डाला है। स्वयं राजुल अपनी सखियों के साथ विभिन्न पुष्पों से नेमिनाथ की वन्दना के लिए सबको कहती रहती है।

रचना काल

कवि ने इस कृति में किसी भी रचना काल का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु मूल संघ के मंडण भट्टारक पद्मनन्दि के प्रसाद से इस कृति का निर्माण हुआ, ऐसा कवि ने उल्लेख किया है।

मूलसंघ मुखमंडण पद्मनन्दि सुपसाइ।
बील्हु बसंतु जि गावइ सै सुखि रलीय कराइ।।

६. टंडाणा गीत

कविवर बूचराज ने एक ओर रूपक काव्य लिखे हैं, संवादात्मक काव्य लिखे हैं, तो दूसरी ओर छोटे-छोटे गीत भी निबद्ध किये हैं। उन्होंने सदैव जनरुचि का ध्यान रखा और अपने पाठकों को अधिक से अधिक आध्यात्मिक खुराक देने का प्रयास किया है। टंडाणा गीत उसी धारा का एक गीत है जिसमें कवि ने संसार के स्वरूप का चित्रण किया है। गीत का टंडाणा शब्द टांडे का वाचक है। बनजारे बैलों के समूह पर वस्तुओं को लाद कर ले जाते हैं उसे टांडा कहा जाता है। साथ ही में संसार के दुःखों से कैसे मुक्ति मिले यह भी बताने का प्रयास किया है।

कवि ने गीत प्रारम्भ करते हुए लिखा है कि यह संसार ही टंडाणा है जो दुःखों का भण्डार है लेकिन पता नहीं यह जीव उसके किस गुण पर लुब्ध हो रहा है। यह जगत् उसे अनादि काल से ठग रहा है। फिर भी वह उस पर विश्वास करता है। इसलिए वह कुमार्ग में पड़कर मिथ्यात्व का सेवन करता रहता है और जिनराज की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता है। दूसरे जीवों को सता कर पाप कमाता है और उसका फल तो नरक गति का बन्ध ही तो है।

गीत में कवि ने इस मानव को यह भी चेतावनी दी है कि उसने न व्रतों का पालन किया है और न कोई संयम धारण किया है। यही नहीं वह न काम पर भी विजय प्राप्त करने में सफल हो सका है। मानव का कुटुम्ब तो उस वृक्ष के समान है जिस पर रात्रि को पक्षी आकर बैठ जाते हैं और प्रातःकाल होते ही उड़ कर चले जाते हैं। यह मानव नट के समान अपने कितने ही नाम रख लेता है।

कवि आगे कहता है कि यह मानव क्रोध, मान, माया और लोभ के वशीभूत होकर जगत में यों ही भ्रमण करता रहता है। जब वृद्धावस्था आती है तो सब साथी यहाँ तक कि जवानी भी साथ छोड़ कर चली जाती है। कवि ने अन्त में यही कामना की है कि तू जब अन्तरदृष्टि होकर आत्मध्यान करेगा तब सहज सुख की प्राप्ति होगी।

> सुद्ध सरूप सहज लिव निसिदिन भावहु अन्तर झाणावें।
> जंपति बूचा जिम तुम पावहु वंछित सुख निरवाणावें।

इस गीत में कवि ने अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त रचना काल एवं रचना स्थान नहीं दिया है।

७. भुवन कीर्ति गीत

बूचराज की भुवनकीर्ति गीत एक ऐतिहासिक कृति है। इसमें भट्टारक

भुवनकीर्ति की यशोगाथा गायी गयी है। भुवनकीर्ति सकलकीर्ति के शिष्य थे जिनका भट्टारक काल संवत् १४९९ से संवत् १५३० तक का माना जाता है। भुवनकीर्ति अपने समय के बड़े भारी यशस्वी भट्टारक थे। भ० सकल कीर्ति के पश्चात् इन्होंने देश में भट्टारक परम्परा की गहरी व मजबूत नींव जमा दी थी। बूचराज जैसे आध्यात्मिक कवि ने भुवनकीर्ति की जिन शब्दों में प्रशंसा की है उससे मालूम होता है कि इनकी कीर्ति चारों ओर फैल चुकी थी। कवि ने भुवनकीर्ति के दर्शन मात्र से ही सांसारिक दुःखों से मुक्ति एवं नव निधि को प्राप्त करने का निमित्त माना है। इनके चरणों में चन्दन व केशर लगाने के लिए कहा है। भुवनकीर्ति की विशेषताओं को लिखते हुए कवि ने इन्हें तेरह प्रकार के चारित्र से विभूषित सूर्य के समान तपस्वी तथा सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रतिपादित धर्म का बखान करने वालों में होना लिखा है। वे षट् द्रव्य पंचास्ति काय तत्वों पर प्रकाश डालते हैं तथा २२ परिषहों को सहन करते हैं। भ० भुवनकीर्ति २८ मूलगुणों का पालन करते हैं। उन्होंने जीवन में दश धर्मों को धारण कर रखा है। जिनके लिए शत्रु मित्र समान है। तथा मिथ्यात्व का खण्डन करते जैन धर्म का प्रतिपादन करते हैं। भुवनकीर्ति के नगर प्रवेश पर अनेक उत्सव आयोजित होते थे, कामनियाँ गीत गाती तथा मन्दिर में पूजा पाठ करती थी।

बूचराज ने भट्टारक के स्थान पर भुवन कीर्ति को आचार्य लिखा है इससे पता चलता है कि वे भट्टारक होते हुए भी नग्न रहते थे और आचार्यों के समान चारित्र पालन करते थे। लेकिन बूचराज की इनकी भेंट कब हुई हुई इसका उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया। इसके अतिरिक्त इसी गीत में उन्होंने भट्टारक रत्नकीर्ति के नाम का उल्लेख किया है और अपने आपको रत्नकीर्ति के पट्ट से सम्बन्धित माना है। रत्नकीर्ति भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य थे जिनका भट्टारक काल संवत् १५७१ से १५८१ तक का रहा है।

८. नेमि गीत

बूचराज ने अपने लघु नाम वल्हण से एक नेमीश्वर गीत की रचना की थी। यह भी अपभ्रंश प्रभावित रचना है जिसमें १५ पद्य हैं। संवत् १६५० में लिपिबद्ध पाण्डुलिपि दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महावीर जी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत थी।

लघु गीतों का निर्माण

कविवर बूचराज ने एक ओर मयणजुज्झ एवं चेतन पुद्गल धमाल जैसी रचनाओं द्वारा अपने पाठकों को आध्यात्मिक सन्देश दिया तो वहाँ नेमीश्वर

बारहमासा, नेमिनाथ बसंत जैसी रचनाओं द्वारा विरह रस का वर्णन किया और अपने पाठकों को वैराग्य रस की ओर प्रेरित किया। किन्तु इसके अतिरिक्त छोटे-गीतों द्वारा मानव के हृदय में जिनेन्द्र भक्ति के भाव भरे, जगत की निःसारता बतलायी और अपने कर्तव्यों की ओर संकेत किया। लेकिन ये अधिकांश गीत पंजाबी शैली से प्रभावित हैं। जिससे स्पष्ट है कि कवि ने ये सब गीत हिसार की ओर विहार करने के पश्चात् लिखे थे। ऐसा अनुमान किया जा सकता है। सभी गीत यद्यपि भिन्न-भिन्न रागों में लिखे हुए हैं लेकिन मूलतः सबका उपदेशात्मक विषय है। मानव को जगत की बुराइयों से दूर हटा कर सन्मार्ग की ओर ले जाना तथा संसार का स्वरूप उपस्थित करना ही इन गीतों का मुख्य उद्देश्य है। कभी-कभी स्वयं को भी अपने मन की चपलता के बारे में ज्ञान प्राप्त हो जाता है और इसके लिए वह चिन्ता करने लगता है। संयम रूपी रथ में नहीं चढ़ने की उसको सबसे अधिक निराशा होती है। लेकिन उसका क्या किया जावे। अब तो संयम पालन एवं सम्यक्त्व साधना उसके लिए एकमात्र मार्ग बचता है और उसी पर जाने से वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

अब तक कवि के ११ गीत एवं पद मिल चुके हैं। इन गीतों के अतिरिक्त और भी गीत मिल सकते हैं इसमें इन्कार नहीं किया जा सकता। सभी गीत गुटकों में उपलब्ध हुए हैं। इसलिए गुटकों के पाठों की विशेष छानबीन की विशेष आवश्यकता है। यहाँ सभी गीतों का सारांश दिया जा रहा है।

९. गीत (ए सखी मेरा मनु चपलु दसे दिसे ध्यावै वेहा)

प्रस्तुत गीत में उस महिला की आत्म कथा है जिसे अपने चंचल मन से बड़ी भारी शिकायत है। वह चंचल मन लोभ रस में डूबा हुआ है और उसे शुभ ध्यान का तनिक भी ख्याल नहीं है। यह पांचों इन्द्रियों के संग फंसा रहता है। इस जीव ने नरकों के भारी दुःख सहे हैं। मिथ्यात्व के चक्कर में फंस कर उसने अपना सम्पूर्ण जन्म ही गंवा दिया है। उसका मन भवसागर रूपी भूल भुलैया में पड़कर सब कुछ भुला बैठा है, यही नहीं उसे दुःख होने लगता है कि वह अपनी आत्मा को छोड़कर दूसरी आत्मा के वश में हो गया। इसलिए अब उसने वीतराग प्रभु की शरण ली है जो जन्म मरण के चक्कर से मुक्त है तथा रत्नत्रय से युक्त है।

गीत में ४ पद हैं और प्रत्येक पद ६--६ पंक्तियों का है गीत की भाषा राजस्थानी है। जिस पर पंजाबी बोली का प्रभाव है। गीत राग वडहंस में निबद्ध है। इसकी प्रति दि० जैन मन्दिर नेमिनाथ (नागदी) बूंदी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में उपलब्ध है।

१० गीत (सुणिय पधातु मेरे जीय वे की सुभ ध्यानि श्रावहि)

यह गीत राग धनाक्षरी में लिखा हुआ है। गीत में ४ पद हैं तथा प्रत्येक पद में ६ पंक्तियाँ हैं।

प्रस्तुत गीत में इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि यह मनुष्य सच्चे धर्म का पालन नहीं करता है इसलिए उसे व्यर्थ में ही गतियों में फिरना पड़ता है। मोहिनी कर्म के उदय से यह सत्तर कोडाकोडी सागर तक भ्रमता रहता है फिर भी बन्धन से नहीं छूटता। संपत्ति, स्वजन, सुत एवं मनुष्य देह सब कर्म संयोग से मिल जाते हैं। मनुष्य जीवन रूपी रत्न मिलने पर भी वह उसे यों ही खो देता है तथा मधु बिन्दु प्राप्ति की आशा में ही पड़ा रहता है। निर्ग्रन्थ अर्हन्त देव ने जो कहा है वही सच है। उसी से जन्म मरण के बन्धन से छूट सकता है।

११. गीत (पट मेरी का चोलणा लालो, लौंग मोती का हार वे लालो)

राग धनाश्री में लिखा हुआ यह दूसरा गीत है जिसमें ४ पद हैं तथा पहिले वाले गीत के समान ही प्रत्येक पद में ६ पंक्तियाँ हैं।

प्रस्तुत गीत में हस्तिनापुर क्षेत्र के शान्तिनाथ स्वामी के पूजा के महात्म्य का वर्णन किया गया है। अभिषेक व पूजा की पूरी विधि दी हुई है। शान्तिनाथ की पूजा पीत वस्त्र पहनकर तथा अपने आप का शृंगार करके करना चाहिए। कवि ने उन सभी पुष्पों के नाम गिनाये हैं जिन्हें भगवान के चरणों में समर्पित करना चाहिए। ऐसे पुष्पों में रायचंपा, केवड़ा, मरुवा, जुही, कुंद, मचकुंद आदि के नाम गिनाये हैं। कवि ने लिखा है कि जब मालिन इन पुष्पों की माला गूंथ कर लाती है तो मन से बड़ी प्रसन्नता होती है। उस माला को भगवान के चरणों में समर्पित कर फिर पांच कलशों से भगवान शान्तिनाथ का अभिषेक किया जाना चाहिए। अन्त में कवि ने भगवान शान्तिनाथ की स्तुति भी की है—

मुकति दाता नयणि दीठा, रोगु सोगु निकंदणो।
अवतारु अचला देवि कुक्षिहि, राइ विससेण नंदणो।
जगदीस तू सुणु भणइ बूचा जनम दुखु दालिद हरो।
सिरि संति जिणवर देउ तूठा थानु गढ़ि हथिनापुरी।

१२, गीत—रंग हो रंग हो रंगु करि जिणवरु ध्याइयैं।

प्रस्तुत गीत राग गौडी में निबद्ध है जिसके ४ अन्तरे हैं। कवि ने इस गीत में मानव से जिनदेव के रंग में रंगे जाने का उपदेश दिया है। क्योंकि उन्होंने आठ कर्मों पर तथा पंचेन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त कर ली है इसलिए झूठ एवं लालच

में नहीं फंसकर जिनेन्द्र देव का ध्यान करना चाहिए। इसमें कवि ने अपना नाम बूचराज के स्थान पर 'वल्ह' दिया है।

१३. गीत—(न जाणो तिसु वेल कौ रे चेतनु रह्या लभाई वे लाल)

इस गीत की राग वीपु है। यह प्राणी किस कारण संसार में फंसा हुआ है। इसका स्वयं चेतन को भी आश्चर्य होता है। इस जीव को कितनी ही बार शिक्षा दी जाय पर यह कभी मानता ही नहीं। अब तक वह न जाने कितनी बार शिक्षाएं ले चुका है लेकिन उन्हें वह तत्काल भूल जाता है। यौवनावस्था में स्त्री सुखों में फंस जाता है तथा साथ ही मरना साथ ही जीना इस चाह में फंसा रहता है। अन्त में कवि कहता है कि इस मानव को इस माया जाल के सागर में से कैसे निकाला जावे यह सोचना चाहिए।

१४. गीत—(वाले बलि वेहुं मावे मनु माया घुलि रातावे।)
वाले बलि वेहुं भावे रहइ आठ मादि मात्तावे॥

प्रस्तुत गीत सूहउ राग में निबद्ध है। इसमें ४ अन्तरे हैं। यह भी उपदेशात्मक गीत है जिसमें संसार का स्वरूप बताया गया है। पांचों इन्द्रियों द्वारा ठगा जाने पर और चारों गतियों में फिरने पर भी यह मानव जरा भी नहीं सम्भलता और ... में यों ही ... जाता है।

१५. गीत—(ए मेरे अंगणे वाचं वाला सोचंवे को बल कलि यावा।)

जिनेन्द्र की अष्टविध पूजा से भव के दुःख दूर हो जाते हैं। इसी भक्ति भावना के साथ इस गीत की रचना की गयी है। यह राग विहागडा में निबद्ध है। जिसमें ४ अन्तरे हैं। प्रत्येक अन्तरा में ६ पंक्तियां हैं।

१६. गीत—(संजमि प्रोहणि ना चडे भए अनंत संसारि।)

यह गीत आसावरी राग में है। प्रथम दोहा है। इस गीत में लिखा है कि सयम रूपी रथ नहीं चढ़ने के कारण अनन्त संसार में घूमना पड़ रहा है। यह प्राणी इस संसार में घूमते-घूमते थक गया है। किन्तु न धर्म सेवन किया और न सम्यक्त्व की आराधना की। नरकों की घोर यातना सही, वहां शीत एवं उष्ण की बाधा सही, कुगुरु एवं कुदेव की सेवा की लेकिन सम्यक्त्व भाव पैदा नहीं हुआ। इसलिए कवि जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है कि उनके दर्शन से ही उसे सम्यक् मार्ग मिल जावे यही उसकी हार्दिक इच्छा है।

१७. गीत—(नित्त नित्त नवली देहडी नित नित्त अवइ कम्मु।)

प्रस्तुत गीत में भी ४ अन्तरे हैं। गीत में कवि ने कहा है कि जीव को न तो बार-बार मनुष्य जीवन मिलता है और न अपनी इच्छानुसार भोग मिलते हैं इसलिए जब तक यौवनावस्था है, वृद्धावस्था नहीं आती है, देह को रोग नहीं सताते हैं तब तक उसे सम्भल जाना चाहिए।

राजद्वार पर लगी हुई झालरी रात्रि दिन यही शब्द सुनाती रहती है कि शुभ एवं अशुभ जैसे भी दिन इस मानव के निकल जाते हैं वे फिर कभी नहीं आते। इसलिए अब किञ्चित भी विलम्ब नहीं करके जीवन को संयमित बना लेना चाहिए। जिस प्रकार सर्वज्ञ देव ने कहा है उसी प्रकार हमें जीवन में उत्तम धर्म का पालन करना चाहिए।

प्रस्तुत गीत शास्त्र भण्डार मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर के गुटका संख्या ९७१ में संग्रहीत है।

१८. पद—ए मनुषि हियडा कमल विगस्सेवा।
ए जिणु देखीयडा पाप पणस्सेवा॥

प्रस्तुत पद में भगवान महावीर के आगमन पर अपार हर्ष व्यक्त किया गया है। महावीर के पधारने से चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है। उनके दर्शन मात्र से जीवन सफल हो जाता है तथा धर्म की ओर मन लगने लगता है। मालाकार भगवान के चरणों में विभिन्न पुष्पों से गुंथी हुई माला अर्पण करता है। उनके चरणों में ध्यान ही मानव को जन्म मरण के बन्धनों से छुड़ाने वाला है।

प्रस्तुत पद बूंदी के नागदी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत गुटके के ५७—५८ पृष्ठ पर लिपिबद्ध है।

१९. धम्मो दुग्गय हरणो करणो सह धम्मु मंगल मूलं।
जो भास्यो जिण वीरो, सो धम्मो नरह पालेहु॥१॥

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्म दुर्गति को हरण करने वाला तथा मंगलीक फल का देने वाला है इसलिए मानव को उसी धर्म का पालन करना चाहिए ये ही भाव उक्त कुछ छन्दों में निबद्ध है। सभी छन्द अशुद्ध लिखे हुए है तथा लिपिकार स्वयं अनपढ़ सा मालूम देता है। फिर ये सभी छन्द तथा १८ वा संख्या वाला पद अभी तक अज्ञात था इसलिए इसका पाठ भी यहां दिया जा रहा है।

प्रस्तुत पद बूंदी के नागदी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत गुटके में लिपिबद्ध है।

विषय प्रतिपादन

बूचराज जैन सन्त थे इसलिए उनके जीवन के दो ही उद्देश्य थे। प्रथम अपना आत्म विकास द्वितीय अपने भक्तों को सही मार्ग का निर्देशन। वे स्वयं जिन-धर्म के अनुयायी थे इसलिए उन्होंने पहिले अपने जीवन को सुधारा फिर जनता को काव्यों के माध्यम से तथा उपदेशों से बुराइयों से बचने का उपदेश दिया। उनके समय में देश की राजनीति अस्थिर थी। हिन्दुओं एवं जैनों पर भीषण अत्याचार होते थे। यहां के निवासियों को ठेस पहुंचाना मुस्लिम शासकों का प्रमुख काम था। तत्कालीन मुस्लिम शासक विषयान्ध थे। उन्हीं के समान यहां के राजपूत शासक भी हो गये थे। महाराजा पृथ्वीराज की वासना पूर्ति के लिए इस देश को गुलाम बनना पड़ा। मुहम्मद खिलजी ने अपनी वासना पूर्ति के लिए लाखों निरपराधियों का संहार किया।

कविवर बूचराज ने ब्रह्मचारी का पद ग्रहण करके सबसे पहले काम वासना पर विजय प्राप्त की तथा साधु वेष धारण कर ब्रह्मचारी का जीवन बिताने लगे। काम से अपने आप का पिण्ड छुड़ाया। इसलिए सर्वप्रथम कवि ने 'मयणजुज्झ' नामक एक रूपक काव्य लिख कर तत्कालीन वासनामय वातावरण के विरुद्ध अपनी लेखनी उठायी। यद्यपि उनके काव्य में कहीं किसी शासक अथवा उनकी वासना विषयक कमजोरियों का नामोल्लेख नहीं है। लेकिन कृति तत्कालीन सामाजिक दुर्बलताओं के लिए एक खुली पुस्तक है। १६ वीं शताब्दी अथवा इसके पूर्व नारियों को लेकर जो युद्ध होते थे वे सब देश एवं समाज के लिए कलंक थे। इनसे नारी समाज का मनोबल तो गिर ही चुका था उनमें अशिक्षा एवं पर्दा प्रथा ने भी घर कर लिया था। काम वासना से अन्धा पुरुष समाज अपना विवेक खो बैठा था। और पशु के समान आचरण करने लगा था। कवि ने 'मदन युद्ध' रूपक काव्य में काम वासना पूर्ति के लिए जिन-जिन बुराइयों को अपनाना पड़ता है उनका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।

कवि ने अपनी दूसरी कृति सन्तोषजयतिलकु में 'लोभ' रूपी बुराई पर करारी चोट की है। इस पूरे रूपक काव्य में लोभ के साथ-साथ अन्य कौन-कौन सी बुराई घर कर जाती है उनका विस्तृत वर्णन किया है। लोभ पर विजय पाना सरल काम नहीं है। बड़े-बड़े राजा महाराजा साधु महात्मा भी लोभ के चंगुल में फंसे रहते हैं इसलिए कवि ने कहा है—

दुसह लोभु काया गढ अंतरि, रयणि दिवस संतवइ निरंतरि।
करइ ढीठु अप्पणु बलु मंडइ, लज्जा त्यागु सीलु कुल खंडइ।।

करने के लिए विवेक से काम लिया जाना चाहिए। एक ओर मोह है जिसने अपने माया जाल से सारे जगत को फंसा रखा है और जो कोई इससे टक्कर लेना चाहता है उसे किसी न किसी की सहायता से वह गिरा देता है। वह नहीं चाहता कि मानव गुणों से पूर्ण रहे। सम्यक्त्वी हो और व्रतों के धारक हो। विवेक का वह महान शत्रु है।

सत् असत् की यह लड़ाई यद्यपि आज की नहीं किन्तु युगों से चली आ रही है। कवि ने इस लोभ रूपी बुराई से बचने के लिए जो उपाय बतलाये हैं वे ठोस प्रमाण पर आधारित हैं।

कवि की 'चेतन पुद्गल धमाल' तीसरी बड़ी रचना है। चेतन (जीव) और पुद्गल (जड़) का सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। जब तक यह चेतन बन्धन मुक्त नहीं हो जाता, अष्ट कर्मों से नहीं छूट जाता तथा मुक्ति पुरी का स्वामी नहीं बन जाता तब तक दोनों इसी प्रकार एक दूसरे से बंधे रहेंगे। कवि ने इसमें स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। दोनों में (चेतन, पुद्गल) वाद-विवाद होता है एक दूसरे की ओर से वादी प्रतिवादी बन कर कमियों एवं दोषों को प्रस्तुत किया जाता है। सांसारिक बन्धन के लिए जब चेतन पुद्गल को उत्तरदायी ठहराता है। तो जड़ बन्धनों का उत्तरदायित्व चेतन पर डालकर दूर हो जाता है। पूरा वर्णन सजीव है। सूझबूझ से युक्त है तथा आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। कवि ने पूरे प्रसंग को सरल भाषा में प्रस्तुत किया है जिससे प्रत्येक पाठक उसके भावों को समझ सके। आत्मा को सचेत रहने तथा पुद्गल द्रव्यों के सेवन से दूर रहने पर कवि ने सुन्दर प्रकाश डाला है।

कबीर ने माया को जिस रूप में प्रस्तुत किया है बूचराज ने वैसा ही वर्णन पुद्गल का किया है। कबीर ने "माया, मोहनी जैसी मीठी खांड" कह कर माया की भर्त्सना की है। तो बूचराज ने पुद्गल पर विश्वास करने से जो कलंक लगता है उसकी पंक्तियां निम्न प्रकार है—

इस जड तणा विसासु करि, जो मन भया निसंकु।
काले पासि वइट्ठि महु, निश्चे चडइ कलंकु ।।४३।।

लेकिन जड़ तो शरीर भी है जिसमें यह चेतन निवास करता है। यदि शरीर नहीं हो तो चेतन कहां रहेगा। दोनों का आधार आधेय का सम्बन्ध हैं। उत्तर प्रत्युत्तर देने, एक दूसरे पर दोषारोपण करने तथा कहावतों के माध्यम से अपने मन्तव्य को प्रभावक रीति से प्रस्तुत करने में कवि ने बड़ी शालीनता से काव्य रचना की है। वाद-विवाद में कवि ने जड की भी रक्षा की है। चेतन पर दोषारोपण

करने के लिए विवेक से काम लिया जाना चाहिए। एक ओर मोह है जिसने अपने माया जाल से सारे जगत को फंसा रखा है और जो कोई इससे टक्कर लेना चाहता है उसे किसी न किसी की सहायता से वह गिरा देता है। वह नहीं चाहता कि मानव गुणों से पूर्ण रहे। सम्यकत्वी हो और व्रतों के धारक हो। विवेक का वह महान शत्रु है।

सत् असत् की यह लड़ाई यद्यपि आज की नहीं किन्तु युगों से चली आ रही है। कवि ने इस लोभ रूपी बुराई से बचने के लिए जो उपाय बतलाये हैं वे ठोस प्रमाण पर आधारित हैं।

कवि की 'चेतन पुद्गल धमाल' तीसरी बड़ी रचना है। चेतन (जीव) और पुद्गल (जड़) का सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। जब तक यह चेतन बन्धन मुक्त नहीं हो जाता, अष्ट कर्मों से नहीं छूट जाता तथा मुक्ति पुरी का स्वामी नहीं बन जाता तब तक दोनों इसी प्रकार एक दूसरे से बंधे रहेंगे। कवि ने इसमें स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। दोनों में (चेतन, पुद्गल) वाद-विवाद होता है एक दूसरे की ओर से वादी प्रतिवादी बन कर कमियों एवं दोषों को प्रस्तुत किया जाता है। सांसारिक बन्धन के लिए जब चेतन पुद्गल को उत्तरदायी ठहराता है। तो जड़ बन्धनों का उत्तरदायित्व चेतन पर डालकर दूर हो जाता है। पूरा वर्णन सजीव है। सूझबूझ से युक्त है तथा आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। कवि ने पूरे प्रसंग को सरल भाषा में प्रस्तुत किया है जिससे प्रत्येक पाठक उसके भावों को समझ सके। आत्मा को सचेत रहने तथा पुद्गल द्रव्यों के सेवन से दूर रहने पर कवि ने सुन्दर प्रकाश डाला है।

कबीर ने माया को जिस रूप में प्रस्तुत किया है बूचराज ने वैसा ही वर्णन पुद्गल का किया है। कबीर ने "माया, मोहनी जैसी मीठी खांड" कह कर माया की भर्त्सना की है। तो बूचराज ने पुद्गल पर विश्वास करने से जो कलंक लगता है उसकी पंक्तियाँ निम्न प्रकार है—

इस जड़ तणा विसासु करि, जो मन भया निसंकु।
काले पासि वइट्ठि यह, निश्चै चडइ कलंकु ॥४३॥

लेकिन जड़ तो शरीर भी है जिसमें यह चेतन निवास करता है। यदि शरीर नहीं हो तो चेतन कहाँ रहेगा। दोनों का आधार आधेय का सम्बन्ध है। उत्तर प्रत्युत्तर देने, एक दूसरे पर दोषारोपण करने तथा कहावतों के माध्यम से अपने मन्तव्य को प्रभावक रीति से प्रस्तुत करने में कवि ने बड़ी शालीनता से काव्य रचना की है। वाद-विवाद में कवि ने जड़ की भी रक्षा की है। चेतन पर दोषारोपण

करने में उसने जरा भी संकोच नहीं किया है।[1] कवि ने चार सुख गिनाये हैं और वे हैं यौवन, लक्ष्मी, स्वस्थ्य शरीर एवं शीलवती नारी। जहाँ ये चारों हैं वहीं स्वर्ग है। लेकिन सांसारिक सुख तो नश्वर है जो दिन दिन घटते रहते हैं अतः संयम ग्रहण ही मोक्ष का एक मात्र उपाय है।

बूचराज ने केवल आध्यात्मिक तथा उपदेशात्मक काव्य ही नहीं लिखे किन्तु 'बारहमासा' 'नेमिनाथ बसन्त' जैसी रचनाएँ लिखकर अपनी शृंगार प्रियता का भी परिचय दिया है। यद्यपि इन काव्यों के लिखने का उद्देश्य भी वैराग्यात्मक है किन्तु इनके माध्यम से षद् ऋतुओं की प्राकृतिक छटा का तथा राजुल की विरहात्मक दशा का वर्णन स्वतः ही हो गया है और इससे काव्यों के विषयों में कुछ परिवर्तन आ गया है। राजुल नेमिनाथ के आने की प्रतीक्षा करती है। सावन मास से लेकर आषाढ मास तक १२ महिने एक एक करके निकल जाते हैं। राजुल का विरह बढ़ता रहता है तथा उसे किसी भी महिने में नेमिनाथ के अभाव में शान्ति नहीं मिलती है। वह अपनी विरह वेदना सहती-सहती थक जाती है। नेमिनाथ अपने वैराग्य में डूबे रहते हैं उन्हें राजुल की चिन्ता कहाँ। यदि चिन्ता होती तो तोरण द्वार से ही क्यों लौटते। घरबार छोड़कर दीक्षा नहीं लेते। लेकिन राजुल को ऐसी बात कैसे समझ में आती। उसने यौवन में प्रवेश लिया था विवाह के पूर्व कितने ही स्वर्णिम स्वप्न लिये थे। इसलिए उनको वह टूटता हुआ कैसे देख सकती थी। बारहमासा में इसी सब का तो वर्णन किया हुआ है। सावन में बिजली चमकती है, मोर मेघ से पानी बरसाने को रट लगाते हैं, भाद्रपद में चारों ओर जल भर जाता है और आने जाने का मार्ग भी नष्ट हो जाता है, इसी तरह आसोज में निर्मल जल में कमल खिल उठते हैं ऐसे समय में राजुल को अकेलापन खाने को दौड़ता है, उसकी आंखों से आंसुओं की धारा रुकती नहीं। इसी प्रकार राजुल नेमि के विरह में बारह महिने के एक एक दिन गिनकर निकालती है उनकी प्रतीक्षा करती रहती है। लेकिन उसका रोना, प्रतीक्षा करना, आहें भरना, सभी व्यर्थ जाते हैं। क्योंकि नेमिनाथ फिर भी नहीं लौटते और न कुछ संदेशा ही भेजते हैं। कवि ने इस प्रकार इन रचनाओं में पात्रों के आत्म भावों को उड़ेल कर ही रख दिया है।

कवि ने उक्त रचनाओं के अतिरिक्त पदों के रूप में छोटे-छोटे गीत भी लिखे हैं जो विभिन्न रागों में निबद्ध हैं। सभी पदों में अर्हत भगवान की भक्ति के लिए पाठकों को प्रेरणा दी गई है साथ ही में वस्तु तत्त्व का भी वर्णन किया गया है।

---

१. काया की निंदा करई आपु न देखई जोइ।
जिउं जिउं भीजइ कांवली तिउ तिउ भारी होई ।।४१।।

इस जीव को फिर चतुर्गति में भ्रमण नहीं करना पड़े इसलिए अरिहन्त भगवान की भक्ति में मन लगाना चाहिए। ऐसे उपदेशात्मक पदों में मनुष्य का अथवा इस जीव का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि को बड़ी चिन्ता है कि यह जीवात्मा पता नहीं किस वेला से जगत पर लुभा रहा है। जिसको भी आत्मा में लगन लग जाती है तो उसे कष्टों का भान नहीं होता।

संयम जीवन के लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति संयम रूपी नाव पर नहीं चढ़ता है वह अनन्त संसार में डुलता रहता है। इसलिए एक पद में "संजमि प्रोहणि ना चढै भए अनन्त सँसारि" के रूप में प्रस्तुत किया है। सभी गीतों में इस जीव को विषय रूपी कलापों से सावधान किया है तथा उसे मोक्ष मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। क्योंकि स्वयं कवि भी उसी मार्ग का पथिक था। वे तो रात्रि दिन आत्म साधना में ही लगे रहते थे।

इस प्रकार कवि ने अपनी कृतियों में पूर्णत: आध्यात्मिक विषय का प्रतिपादन किया है जिसको पढ़कर प्रत्येक पाठक बुराई से बचने का प्रयत्न कर सकता है तथा अपने आत्मा विकास की ओर आगे बढ़ सकता है।

भाषा

कविवर बूचराज की कृतियों की भाषा के सम्बन्ध में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि बूचराज जन कवि थे। इसलिए जनता की भाषा में ही उन्हें काव्य लिखना अच्छा लगता था। उनके काव्यों की भाषा एक सी नहीं रही। प्रारम्भ में उन्होंने मयणजुज्झ लिखा जो अपभ्रंश से प्रभावित कृति है। इसकी भाषा को हम डिंगल राजस्थानी के निकट पाते हैं। जिसमें प्रत्येक शब्द का बड़े जोश के साथ प्रयोग किया गया है जिसका उद्देश्य अपने वर्णन में जीवन डालना मात्र माना जा सकता है। मैं मयणजुज्झ की भाषा को राजस्थानी डिंगल का ही एक रूप कहना चाहूँगा। जिसमें जननी को जणणी (२), मध्य को मज्झि (७), पुत्र को पुत्त (१०) के रूप में शब्दों का प्रयोग हुआ है। यही नहीं राजस्थानी शब्दों का जैसे पूछण लागा (२२), भाग्या (५८), बीडउ (३५) का भी प्रयोग कवि को रुचिकर लगा है। कवि उस समय सम्भवत: ढूंढाड़ प्रदेश के किसी नगर में थे इसलिए उसमें उर्दू शब्द जो उस समय बोलचाल की भाषा के शब्द बन गये थे, आ गये हैं। ऐसे शब्दों में चूतडि (३०), खबरि (३१), फौज (६५) जैसे शब्द उल्लेखनीय हैं।

इस समय अपभ्रंश का जन सामान्य पर सामान्य प्रभाव था। तथा अपभ्रंश की कृतियों का पठन पाठन खूब चलता था। इसलिए बूचराज ने भी अपनी

कृति में अपभ्रंश शब्दों का खुलकर प्रयोग किया। ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

काव्य की भाषा	हिन्दी शब्द
णाण	ज्ञान
रिसहो	ऋषभ
तित्थयरु	तीर्थंकर
जम्मणु मरणु	जन्म मरण
धम्मु	धर्म
दुट्ठ	दुष्ट
तिजंच	तिर्यन्च
गब्बु	गर्व
गोइमु	गौतम

कवि ने कुछ शब्दों के आगे 'ति' लगाकर उनका क्रिया पद शब्दों में प्रयोग किया है। इस दृष्टि में हाकन्ति, हसंति, कुकंति, कुरलति, गायंति, वजंति (३४) जैसे शब्दों का प्रयोग उल्लेखनीय है।

यहाँ पर यह कहना पर्याप्त होगा कि कवि ने प्रारम्भ में अपनी कृतियों की भाषा को अपने पूर्ववर्ती अपभ्रंश कवियों की भाषा के अनुकूल बनाने का प्रयास किया लेकिन इसमें उसने धीरे-धीरे परिवर्तन भी किया जिसे 'सन्तोष जयतिलकु' एवं 'चेतन पुद्गल धमाल' में देखा जा सकता है। 'चेतन पुद्गल धमाल' कवि की सबसे अधिक परिष्कृत भाषा से निबद्ध कृति है। जिसे कोई भी पाठक सरलता से समझ सकता है। संवादात्मक कृति के रूप में कवि ने बहुत ही सहज एवं बोलचाल के शब्दों में गूढ़ से गूढ़ बातों को रखने का प्रयास किया है। इसलिए उसमें कोमल, सरल एवं सुबोध रूप में विषय का प्रतिपादन हो सका है।

कवि की तीन प्रमुख कृतियों के अतिरिक्त 'नेमिनाथ बसन्तु', 'टंडाणा गीत' जैसे अन्य गीतों की भाषा भी राजस्थानी का ही एक रूप है। इन गीतों की भाषा पूर्वापेक्षा अधिक सरल है तथा शब्दो का सहज रूप में प्रयोग किया गया है। इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

राज दुवारह झल्लरी, अहि निसि सबद सुणावें।
सुभ असुभ दिनु जो घटइ, बहुडि न सो फिर आवइ।
आवइ न सो फिरि धाइ जो दिनु, आउ इणि परि छीज्जइ।
मोहहु अभ्भादकु व्रत संजम, खिणु विलंब न कीजिए।

पंच परमेष्ठी सदा समणउ हिंसइ तिज्ज समिकितु धरइ ।
खिणाखिण चितावइ चेत चेतन राज द्वारहु भल्लरी ।

लेकिन जब कवि ने पंजाब की ओर प्रस्थान किया तथा वहां कुछ समय रहने का अवसर मिला तो अपनी कृतियों को पंजाबी शैली में लिखने में वे पीछे नहीं रहे। इनके कुछ गीतों में पंजाबी पन देखा जा सकता है। शब्दों के आगे वे, वा, वो लगा कर उन्होंने अपने लघु गीतों में इनका प्रयोग किया है। 'ए सखी मेरा मणु चपलु दसै दिसे ध्यावै वेहा' इस पंक्ति में कवि ने 'वेहा' शब्द जोड़कर पंजाबीपने का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार बूचराज यद्यपि मुख्यत: राजस्थानी कवि है। उसके काव्यों की भाषा राजस्थानी है लेकिन फिर भी किसी कृति पर अपभ्रंश का प्रभाव है तो कोई पंजाबी शैली से प्रभावित है। किसी-किसी पद एवं गीत की भाषा भी दुरुह हो गयी है और उसमें सहजपना नहीं रहा है तथा वह सामान्य पाठक की समझ के बाहर हो गयी है।

छन्द

कविवर बूचराज ने अपनी कृतियों में अनेक छन्दों का प्रयोग करके अपने छन्द-शास्त्र के गम्भीर ज्ञान को प्रस्तुत किया है। मयणजुज्झ में १५ प्रकार के छन्दों का तथा सन्तोष जयतिलकु में ११ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। केवल एकमात्र चेतन पुद्गल धमाल ही ऐसी कृति है जो केवल दीपक छन्द एवं छप्पय छन्द में ही निबद्ध की गयी है। इसके अतिरिक्त बारहमासा राग वडहंस में तथा अन्य गीत राग धन्याश्री, गौडी, सूहव, बिहागडा एवं असावरी में निबद्ध किये गये हैं। बूचराज को दोहा, मडिल्ल, रड़ एवं षट्पदु छन्द अत्यधिक प्रिय हैं। वह दोहा को कभी दोहडा नाम देता है। कवि ने रासा छन्द के नाम से छन्द लिखा है जिसमें चार चरण हैं। तथा प्रत्येक चरण में १५ व १६ अक्षर हैं। मयणजुज्झ में ऐसे ८९ से ९२ तक के ४ पद्य हैं।[1] अपभ्रंश के पद्धडिया छन्द का भी कवि ने प्रयोग किया है। लेकिन इसमें केवल ४ चरण हैं तथा प्रत्येक चरण में ११ अक्षर हैं।[2]

---

१. कारिवि पलाणउ मोहु भडु चल्लियउ ।
संमुह भंखज बाल अघूलउ भुल्लियउ ।
फुट्टिउ जलहरु कुंभ धाहु तरणि किय ।
ले आइ तहु अग्गि धूर्वतिय रंडतिय ॥८९॥

२. तमकायउ तिनि भडु मोहु, जाइ, पुगु माया तहु बुलाइ ॥
जब बैठे इनउ एक सथि, कलिकालु कहइ जब जोडि हथु ॥

रड छन्द में भी कवि ने कितने ही पद्य लिखे हैं। यह वस्तुबंध छन्द के समान है और किसी-किसी पाण्डुलिपि में तो रड के स्थान का वस्तुबंध नाम भी दिया है। इसी तरह मडिल्ल छन्द का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है। यह चौपई छन्द से मिलता जुलता छन्द है। रंगिका छन्द में आठ चरण होते हैं और यह सबसे बड़ा छन्द है। कविवर बूचराज ने इस छन्द का 'मयणजुज्झ' एवं 'सन्तोष जयतिलकु' इन दोनों में ही प्रयोग किया है।

कवि ने मयणजुज्झ एवं अन्य कृतियों में गाथा छन्द का भी खूब प्रयोग किया है। एक गाथा निम्न प्रकार है—

> ए जित्ति चित्त खिल्लउ, आयउ आनंदि घरहु बद्वारे।
> उट्ठु उट्ठु चंचल नयणि, आरतउ वेगि उत्तारउ ॥५६॥

पाण्डुलिपि परिचय

मयणजुज्झ की राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारों में निम्न पाण्डुलिपियां उपलब्ध होती हैं :

	पत्र संख्या	लेखन काल	पद्य संख्या
१. आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर (महावीर भवन के संग्रह में) गुटका सं० ४६ वेष्टन सं० २८७	२४	—	१५६
२. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार, अजमेर	२०	संवत् १६१६	१५८
३. शास्त्र भण्डार दि० जैन ठोलियान, जयपुर	—	संवत् १७१२	१५८
४. शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा मन्दिर, जयपुर (गुटका सं० ५ वेष्टन सं० २६६४)	४१	—	१५८
५. शास्त्र भण्डार नागदी मन्दिर, बूंदी	२२	—	१४२
६. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर, दीवान जी कामा (भरतपुर)	—	—	—

लेकिन प्रस्तुत पुस्तक में दिया जाने वाला पाठ प्रथम, चतुर्थ एवं पंचम पाण्डुलिपियों के आधार पर तैयार किया गया है। आमेर शास्त्र भण्डार वाली प्रति जीर्ण अवस्था में है। लेकिन उसके पाठ सबसे अधिक शुद्ध है। बूंदी वाली पाण्डुलिपि में ५२।। पद्य एक लिपिकर्त्ता द्वारा तथा शेष पद्य दूसरे लिपिकार द्वारा लिखे हुए हैं। इसको पारा बाई द्वारा लिखवाया गया था। लिखने वाले देवपाल माली मलकिरे का था। यहां क प्रति आमेर शास्त्र भण्डार वाली पाण्डुलिपि है। ख प्रति बूंदी के शास्त्र भण्डार की है। तथा ग प्रति से तात्पर्य शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथी मन्दिर जयपुर से है।

मयणजुज्झ

मंगलाचरण—शार्दूल

जो सव्वट्ठविमाणहुंति चविउ तह णाण चितंतरे।
उवन्नो मरुदेवि कुक्खि रयणो, इखाग कुले मंडणो।
भुक्तं भोग सिरज्ज देस विमलं, पाली पवज्जा पुणो।
संपत्तो णिव्वाणि देउ रिसहो, काऊण तुव मंगलं ॥१॥

जिण भरह वागवाणि, पणमवउ सुहमति देहि अय जणणी।
वण्णेसु मयण जुज्झं, किव जित्तिउ वीय रिसहेस ॥२॥

रिसह जिणवरु पढम तित्थयरु,
जिणधम्मह उद्धरणु, जुयलु[1] धम्मु सव्वै निवारणु।
नाभिराइ कुलि कमलु, सरवनु संसारह तारणु।
जो सुर इंदहि वंदियउ, सदा चलणु सिरधारि।
किउं किउं रतिपति जित्तिउ, ते गुण कहउ विचारि ॥३॥

सुणहु भवियण एहु परमत्थु,
तजि चिंता परकथा, इकु ध्यानु हुइ कन्नु दिज्जइ।
मनु थिल्लइ कव लाज्यउं, हुइ समाधियउ धमी उपज्जइ।
परचं जिन्ह चित्त एहु रसु, चालइ कसमल सोइ।
पुनरपि तिन्ह संसार महि जम्मणु मरणु न होइ ॥४॥

सुणहि नहीं जूवइ जे रत्त,
जे इत्तिय कामरस, बहु उपाय बंधइ जि रत्तीय।
पर निंदा पर कत्थ जिके, तियचरि उनमाचि मत्तिय।
पडिय जि घोर समुद्द महि, नहु आवहि सुभ ध्यान।
नौमा रसु बहु अमीय रस, इतहि न सुणही काम ॥५॥

---

१. जुयल (क प्रति)

दोहा

चेतन एवं उसका परिवार—

पुब्ब करम गहि बंधिउ, सहइ सु-दुख संताउ ।
इसु काया गढ भितरई, वसै सचेतन राउ ॥६॥

रड

राउ चेतन कोउ गढ मज्झि,
मुहु जाणइ सार किसु, मनु मंत्री सपर बल बखाणउ ।
परवत्ति निवत्ति दुइ तासु तीय, ए प्रगट जाणउ ।
जाणउ निवत्ति विवेक सुत, परवत्तिहि भयो मोह ।
सो मल्लि बैठो रजु ले, करइ[1] कपटु सनेहु नित दोहु ॥७॥

मडिल्ल

मोह धरहि माया पटरानी, करइ न संक अधिक सबलाणिय ।
करि परपंचु जगतु फुसलावइ, तहि निवंसि किव श्रावक पावइ ॥८॥

दोहा

चलिय निवत्ति विवेकु ले, दीठ्ठे इसिय[2] आधार ।
मोह राउ तब गरजियउ, दल बल सयन विथार ॥९॥

गाथा

गइ[3] कनकपुरीय[4] नामो, राजा तहु सत्तु करहु थिरु रज्जो ।
तहु[5] ले पुत्त पहुत्तिया, बहु आदर पाइयो[6] तेरा ॥१०॥
दीनी कन्या सत्त तिसु, सुमति सरस सुविसाल ।
थप्पि रज्जि विवेकु थिरु, घालि गलइ गुणमाल ॥११॥

---

१. कर कपटु नित दोहु (क प्रति)
२. इसे (क प्रति)
३. चेतन की स्त्री निवृत्ति अपने विवेक सुत को लेकर कनकपुरी में पहुँच जाती है।
४. पुष्पपुरी (ग प्रति)
५. तहां लोकंत पहुतइ (ख प्रति)
६. पाइउ (ख प्रति)

मोह द्वारा चार दूतों को बुलाना—

सालु विवेकहु मोह भनि, सोवइ पान पसारि ।
येक दिवस इम सोचि करि, दूत बुलावइ चारि ॥१२॥

मडिल्ल

मोह[1] चारि तब दूत बुलाइय, सार लेण कुं वेगि पठाइय ।
कन्हु कुसलु पापु वखाणउं, अरु[2] तहां दोहु चवथउ जाणउ ॥१३॥
खोजत खोजत देस सधाइय, पुन रंगइपट्टण[3] तब आइय ।
करि[4] भरडइ को भेस पठाइय, धीरज कोतवाल तब दिट्ठिय ॥१४॥

दोहा

रंगपट्टण का वर्णन—

धीरज देखि कुं दरसणीय, बहु ताडण तिन्ह दीय ।
पंसण मिले न नगर महिं, ले करि भागे जीय ॥१५॥
तीनि गए तिहुं वाहुडइ, कपटु कीयउ मनि चिट्ठु ।
तिस[5] सरवर तिय भरहि जल, जिनुसर जाइ वइट्ठु ॥१६॥

रड

ज्ञान सरोवर ध्यानु तसु पालि, जलुवाणी विमलमइ ।
सयण वरषस व्रत बारह, थिरु पंखी जोग तिहां ।
भलनि नगर प्रतिमा इग्यारह, अठतीसउं रिषि तिहां ।
आणंद कुंभ भरेहि, इमक जीहले सुन्दरी बहु थुति जैन करेह ॥१७॥

दोहा

बहुती जैन पसंसना, कपत सुणी इक नारि ।
कपट छल्यउ तब नगर कहु, रूप जतीकउ धारि ॥१८॥

---

१. ख प्रति में १३ से १६ तक के पद्य नहीं हैं ।
२. अवर ग प्रति
३. रंगपट्टन
४. करि भरडे कउ वेसु पइठे ग प्रति
५. तिस ग प्रति

मडिल्ल

नगरी माहि कपटु, संचरयउ ठाम ठाम सो देखत फिरयउ ।
देखि विवेक सभा सुविचक्षण, देखि प्रजा वय सुभ लक्षण ॥१९॥
देख्या न्याउ नीति मारग बहु, देख्या तह दुइ लोगु सुख सहु ।
भेद छेदु सर्वहि तिहा पायो, तब सु कपटु उठि पंथहि धायो ॥२०॥

कपट का वापिस अधर्मपुरी में जाना—

आइ अधम्मपुरी सुपहुतउ, जाइ जुहार मोहसिहु किलउ ।
मोहु जुलाइ तरु सबु पुच्छइ, कहहु विवेकु कवणहुइ अच्छइ ॥२१॥

दोहा

पासि बुलायो कपटु तब, पूछण लागा बात ।
कहा विवेक निवसि कहु, कहु तिन्ह की कुसलात ॥२२॥

कपट का उत्तर—

मोह सुणहु तुम्हि कानु धरि[1], कपटु पयासइ एउ ।
जैसी देखी नयण मइ, तैसी बात कहेउ ॥२३॥

वस्तु बन्ध

धर्मपुरी का वर्णन—

बसइ पट्टणु पुन्नपुरु नयरु ।
तहाँ राजा सत थिरु, तिनि विवेकु गहि सुथिरु थप्पिउ ।
परणाई धीय तिनि, राजु देसु सबइ समप्पिउ ।
दया धम्मु तहाँ पालीयइ, कीजइ पर उपगारु ।
तह इइ गुणनत दीसई, चोर अन्याई जारु ॥२४॥

दोहा

पवण छतीस्यु सुखस्यउ बसहि, करइ न को परतीति ।
काचे कंचन गलिय महि, पडे रहहि दिनु राति ॥२५॥
हेरे गठ महि फोडि घर, चोर न्हरउ ले जाहि ।
पर तिण कोइण छीपई, उसकी आज्ञा माहि ॥२६॥
तहाँ परपंचु न दीसई, जहं छै विसियन कोइ ।
सर्व संतोषी मेदनी दीठी मइ अवलोइ ॥२७॥

---

१. ख क प्रति
२. ग प्रति में २८-२६ पद्य को केवल २८ वां पद्य ही माना है ।

मडिल्ल

दीठा नयरु फिरि विचारयउ पखि ।
सुभ वाणी सुणीय सव्वहु मुखि ।
राउ नयर विपमउं दलु बलु अति ।
इंद नरिंद करहिं जिसु की थुति ॥२८॥
सुणु सुणहो तू मोह भुवपत्ति, मइ दीठा नयर तणी यह गति ।
स्वामि विवेकु चहिउ प्रति चाडइ, तुम्हं ऊपरि गब्बइ दिउ हाडइ ॥२९॥

दोहा

जब पच्चारिउ कपटि तिनि, तब मनि मच्छरु वाधु ।
डालि सडया जणु बांनरा, चूलडि बीछू खाधु ॥३०॥
तब[1] अहंकार कीयउ तहु, लीयउ बेगि बुलाइ ।
खबरि करहु सब सयण कहु, सभा जुडी जिउं आइ ॥३१॥

रड

मोह राजा की सभा—

रोसु आयउ साथि तिसु झूंठ,
अरु सोक संतापु तहु, संकलपु विकलपु आयउ ।
पापलि चिंता सहितु, दुखु कलेसु को ध्यायउ ।
कलहु अंदेसा छदमु तहु, समसरु[2] बलगरु जाइ ।
असी राजा मोह की सभा जुडी सब आइ ॥३२॥

दोहा

करिवि सभा तब मोह भडु, इव चितइ मन मांहि ।
जब लगु जीवइ विवेकु वहु[3], तब लगु सुख हम नांहि ॥३३॥

रड

तात मोहहि वयण सुणीयइ,
सुत मनमथु उठियउ, सिरु निवाइ करि जोडि जंपइ ।
दावानलु जिउ जलिउ, थरहराइ करि कोउ कंपिउ ।
रहहिकि कुंजर बापुडे, जिसु वनि केहरि गाजि ।
आजु निवत्ति विवेक सुतु गहि ले आउ बांधि ॥३४॥

---

१. तब अहंकारन कीयु तिनि क प्रति
२. थवरु समसरु सव्वलु गरजाये ग प्रति
३. वहु ग प्रति

दोहा

मदन का बीड़ा लेकर प्रस्थान—

मोह राउ तब हाथि करि, बीडउ प्रप्पइ प्रप्पु।
कुमति कुबुद्धि कुसील देइ, चलायिउ कंदप्पु ॥३५॥

गाथा

गुडिय मयरा मय मत्त गज्जिउ, सज्जिउ दलु विषमु चहु पयरेण।
हरि बंभु ईसु भज्जिउ, जब वज्जिउ गहिर नीसारा ॥३६॥

गीतिका छंद

बसन्त का आगमन—

बज्जिउ निसानु बसन्तु आयउ, छल्ल कुंदसु खिल्लियं।
सुगंध मलयापवरा भुल्लिय, अंब कोइल बुल्लियं।
रुण भुणिय केवइ कलिय महुवर, सुतर पत्तिहि छाइयं।
गावन्ति गीय वजंति वीरा, तरुरिग पाइक आइयं ॥३७॥
जिन्ह कुंडिल केस कलाव कुंतिल, मंग मोत्तिय धारियं।
जिन्ह विरा भुवंग वलंति चंदनि गुंथि कुसम सवारियं।
जिन्ह भवहं धुराहर धरिय संमुह नयण बारा चढाइयं।
गावन्ति गीय वजन्ति वीरा तरुरिग पाइक माइयं ॥३८॥
जिन्ह तिलक त्रिगमय तिक्ख भल्लिय वीर भज फरकंतियं।
जिन्ह कनक कुंडल कंध मनमथ मूढ पंडिव भंतियं।
जिन्ह दन्स विज्जु चमकंत लगहि कुको कोनद वाइयं।
गायन्ति गीत वजन्ति वीना तरुणि पाइक आइयं ॥३९॥

जिन्ह सिहरिग गिरिवर रोम वरा घरा, नखसि असिवर करट्ठए।
इतु मग्गि चलंतह समरि तसकर कहउ नर कितिय हुए।
भंजजति धराउ खिइ नूपुर काछ कुसम बरगाइयं।
गावन्ति गीय वजन्ति वीरा तरुरिग पाइक ग्राइयं ॥४०॥
जिन्ह रागि कटि बंधिय पटंबर जिरह उर कंचुक से।
हाकंति हसति कुकंति कुरलति मूढ पट लहुरी वसे।
जे कुटिल सुविहि हरहि परचितु चरत मेउन जाणीयं।
गायन्ति गीय वजन्ति वीरा तरुणि पाइक माईयं ॥४१॥

देखंतु दरसणु जिन्ह केरा रूप पहिला नासए ।
तिन्ह साथि परसु करंत खिणमहि तेउ तनहु पणासए ।
मोहणु करंतहु आउ छीजइ कहहु किमि सुखु पाइयं ।
गायन्ति गीय वजन्ति वीणा, तरुणि पाइक आइयं ॥४२॥

जे दव्वु देखत चित्त रंजहि सील सत्तु गवावहि ।
जे चहुंय गति महि अनत जम लगु बहुतु दुख सहावहि ।
चिति अवरु चिंतहि अवरु जंपहि अवरु जुगपति आइयं ।
गायन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइयं ॥४३॥[1]

रड्ड[2]

तरुणु पट्ट माईल संगीत

मिथ्यासीय गय गुडिय विसन सत्त हय तेउ सज्जिय ।
सुनहु कुसील तिणि पापु कुल निसान वज्जिय ।
छत्तु धरियउ परमादु सिरि चमर कषाय ढलंति ।
इव रतिपति संवूह करि चडिउ गहीर गाजंति ॥४४॥

रंगिका

कामदेव का आक्रमण—

चडिउ गहीर गाजंत घोरि मानइ न संक उरि ।
सुभटु आपणु जोरि अतुल बले लिणि कुसम कोवंडलीय ।
भमर पणु चकीय देखत तरुणि लिय कि कि न छले ।
सज्जि आणिय कुंत कृपाण साथिये पाचउ बाण ।
फेरिये जगत आण बंडिवि रणे, आइया आइया रे मदन राइ ॥
दुसहु लगउ धाइ चलिय सूर पलाइ गहवि तणो ॥४५॥

खिणि मिलिउ[3] संकरु माणु, छोडियउ अंतर ध्यानु ।
गोरी संग हित प्राणु इव नडियौ, जिन तपहु बिच टालि ।
घालिउ माया जालि महन रूपि निहालि फंद पडियं ।
हरि लियो मदन कसि सोलह सहस वसि रहिउ गुजरि रसि रयणु दिणो ।
आइया आइया रे मदनु राइ दुसह लगो धाइ
चलिय सूर पलाइ गहिविलणो ॥४६॥

---

१. क प्रति में यह पद्य तीन पंक्तियों का है ।
२. ग प्रति में इसका नाम वस्तु बंध दिया है ।
३. मल्यउ—ग प्रति ।

जमदगनि वे स्वामी तू टालिउ तिन्हा चित्त, छोडि तपु गेहकितु ।
आपु खोइयं, इंदु विषप भषिकु ब्यापउ अहिल्या टालीयउ आपु ।
गोतमी दिय सरापु, भगउ इयं जिन लंकापति डिगाइ ।
आणिय सीय चुराइ, घाल्या रावणु घाइ कइ जिणो ।
अइया अइया रे मदन राइ चलिय सूर पलाइ गहिवि विमणो ॥४७॥

जिणि सन्यासी जतीय सार, जंगम सिर जटा धार ।
जोगीय मंडित छार धलिय रसे, जिन मरउ भगववेस ।
विहंडी लुंचित केस, काली पोस दरवेस कि कि नगसे ।
जख्य राकस गंध्रव गुरु, सुभट सबल नर पसुव पंखिय थर किलिय थुणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागा धाइ ।
चलिय सूर पलाइ गहियाविमणो ॥४८॥

कि के जैन के सेवणहार ते तो कीते भिष्टचार ।
भोगिय सुख अपार संसार तणो ।
उहि देखत भये अंध पडिय करम फंध ।
किये कुगत बंध जनम मणो ।
जैसे बंभदत्त चक्कवति काम भोग करि थिति ।
गयउ नरक गति सतमि थुणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागो घाइ ।
चलिय सूर पलाइ गहियाविमणो ॥४९॥

जिनि कुंड रिषि ताडि, लीयउ सुभट पाडि ।
सिखर हु दिया राडि तपु तजियं ।
लीए सबल सुसर अंगि रहिउ तिय रंगि ।
विषय विषय संगि सुख भजियं ।
वीर चरण सेवक नितु इंदिय लोलप चित्तु ।
सेणिकु नरय पत्तु सुख निषणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागो घाइ ।
चलिय सूर पलाइ गहविमणो ॥५०॥

इक अबुह संजम रूपि, अखिय मदन भूप ।
दीनीय संसार कूप दंसण भट्टे ।
नित करहिसि परपंचु अनेकहु जीव वंचु ।
तजि मान लेहि कंचु अप्पणु हट्टे ।

ते तौ रह्रिय सुणि प्रारंभ सकिन बरतु ठंभि ।
जवर मरहि हंभि रंजिवि जिणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागो घाइ ।
चलिय सूर फलाइ गहिविलतणो ।।५१।।

षट्पद

जितउ सुभटु बलिवंडु जिन्हु गज सिंघ मिवाइय ।
जीतउ दैत्य प्रचंड लोइ जिन्ह कुमगिहि लाइय ।
जितउ देउ बलि लबवि धारि बहु रूप दिखालहि ।
जितउ इन्दु तिजंच करिवि लघु बणखंड आलहि ।
असपति गजपति नरपतिय भूपतिय भूरहिय भरि ।
ते अच्छ लच्छ लं टालिय मटल मयण नृपति परपंचु करि ।।५२।।

रड

जीतिये सहि कीयउ मनि हरषु ।
पुअपुरि[1] दिसि चलिउ, तब विवेक आवंत सुणियो ।
चित्त तरि चितविउ करिवि मंतुये रिसउ मुणियउ ।
धम्मपुरिहि थी आदि-जिणु सुणियउ परगट नाउ ।
तत्थ गए हउं उब्बरउ मदन गंवावउं ठाउं ।।५३।।

गाथा

इवं करंत गुण मंतो, आयउ सुह ध्यान दूव रिसहेसु ।
विवेक वेगि चवहु बुल्लावइ देव सरवन्नि ।।५४।।

दोहरा

चलिउ विवेकु आनंदु करि, धम्मपुरी सुपहुत्त ।
परणाई संजमसिरि, सुखु भोगवइ बहुत्त ।।५५।।
जब विवेकु नाठउ सुण्या, चितवइ अनंगु प्रयाणु ।
भाग्या पीठि न धावहि, पुरुषहि इहु परवाणु ।।५६।।[2]

---

१. पुष्पपुरी ।
२. 'ग' प्रति में ५६ वें पद्य की दूसरी पंक्ति नहीं है ।

रड

कामदेव का स्वदेश आगमन—

फिरिउ मनमथु जिति सब देसु,
नड भट जे जे करहि, पिसाच गंध्रब्ब गावहि ।
बहु खिल्लिय ढुड्डु मणि, कुजसु पढहु गल महि बजावहि ।
माया करइ बधावणउ, मोह रहसि चितु ।
सब्बे इंद्रा पुष्फिणया, जिणु धरि आयउ पुतु ।।५७।।

दोहड़ा

माइ पिता पगि लागि करि, तब मनमथु घरि आइ ।
रहसिउ अंगिन मावई, जीते राणा राइ ।।५८।।

गाथा

ए जिति चिति खिल्लउ, आयउ आनंद वरहि जब बारि ।
ढुड्डु ढुड्डु चंद बयणि, आरतउ वेगि उतारउ ।।५९।।
मुहु रहिय मोड मालणि, पुच्छइ तव मयणु कवण कज्जेण ।
को सूरु वीर अटलो कहि सुंदरि मुज्झ सरि भुवणे ।।६०।।

रड

रति एवं कामदेव के मध्य प्रश्नोत्तर—

कंत जितउ कवणु सै देसु,
को पट्टणु वर णयरु, कवणु सबलु भूपत्ति झिगायउ ।
किसु छत्तु विहंडियउ, करिवि बंदि कहु कासु ल्यायो ।
किसु मलिया परतापु, तै कहु कहु फेरी माण ।
रति जंपइ हो मदन भड कहु पौरिषु अप्पाणु ।।६१।।
जिणि संकरु इंदु हरि बंभु,
वासिगु फ्याल जिसु, इंदु चंदु गह गण तारायण ।
विद्याधर यक्षसु गंधव्व सहि देव मण [illegible] ।।
जोगी जंगम कापडी सन्यासी रस छंदि ।
ते ते तपु बण महि ढुडिय ते मइ घलि बंदि ।।६२।।

दोहा

सुणि करि पौरिष मुज्झु तणा, चाल्यो मण भरमाई ।
संमुहु अणिम न जुज्झयउ, गयउ विवेकु पलाइ ।।६३।।

रड्ड

आणिमंतु पिय गयउ विवेकु,
धम्मपुरि गढ चडिउ सबंनि सनमानु दीयउ।
परतापै गरजियो, सूरजिव उद्योतु कियो।
जीवंतउ वैरी गयउ, देखुजि करिहौ सोचु।
सां तू मदनु न मोह भडु दुहु गंवावइ पोचु॥६४॥

दोहा

'ढंढोलिय तीन्यो[1] भुवण खलु लिद्धउ सुहृडाइं।
सोमइ कहूँ न दिख्यिउ सो मुज्झु पकडइ बांह॥६५॥
बडहू बडेरी पिरखवी, घर महि मस्वहि कासु।
इन जह चीरिय मंड तुम, ते निसहि सारीसु॥६६॥
जब तिनि नारि बिखोह्यिउ, तब तमकिउ तिसु जीउ।
जणु पजलंती अग्गि महि, लेकरि घालिउ घीउ॥६७॥

कवित्त

कामदेव का धर्मपुरी की ओर प्रस्थान—

रोम रोम उद्धसिया, भिकुटि चडिय निल्लाडिय।
गुरणाउ जिउ सिंघु घालि चललिय अंगडाइये॥
विसहर जिउं फुंकरइ, लहरि ले कोयह चडियउ।
जिव पावस घण मत्त तिवसु गज्जवि गइ अडियउ।
नहु सहिय तमतिसु लिय किय, मछ तुछ जलि जणु गलिउ।
श्री धम्मपुरी पट्टण दिसहि, लषसु दुहु मनमथु चलिउ॥६८॥

गाथा

चल्लियउ रयहूणाहो, सुंदरि धरि मयण चित्त मज्झंमि।
कलि कालि तासु सुणियउं, उद्धयउ मोहु भडु आइ॥६९॥
तहि उठ्यो मोहु राउ दिट्ठिउ नर सूर वीर परचंडो।
तू कवण कत्थ वासहि, कहू आयो कवण कज्जेण॥७०॥

---

१. लिखित क प्रति, लिखित ख प्रति

रड[1]

सुणहु स्वामीहउ सुकलिकालु
दस खेतहि संचरिउ, मइ[2] प्रतापु आपणौ कियउ ।
विवेकु दुडाइयउ, मुकति पंथु चलण न दीयो ।
कोडाकोडी अट्ठदस सायर महबलु कित्तु ।
आदीस्वर भय भगियउ, इव तुम्ह सरणि पहुत्तु ।।७१।।

दोहा

आइ पहिय तिहि[3] [illegible] ।
कलीकालि पच्चारिउ, मोहु तमक्किउ ताम ।।७२।।

पद्धडीय छंदु

तमकायउ तिनि भडु मोहु जाइ, पुणु माया तह ठैलैं बुलाइ ।
जब बैठे हूनउं एक सत्थु, कलिकालु कहइ जब जोडि हत्थु ।।७३।।
तुम्ह पूत मदन अति चडिउ तेजि, मन माहि न देखिउ सो आगेजि ।
घर माहि वडत तिनि नारि दुट्ठि, आरत्तउ न कियउ वेगि उट्ठि ।।७४।।

कामदेव का प्रभाव—

नट्ठ सहीय तमक मनमथ प्रचंडु, उत्तरिउ जाइ तितु घोर कुंडु ।
सो घोर कुंड दुल्लह अगाहु, जलु रुहिर पूई भरियो अथाहु ।।७५।।
मय भीम भयंकर पालि जाहु, आसाता वेयणि नलनि ताहु ।
जह बिरख तिक्ख करवाल पत्त, झडि पडहि वुट्ठि छेदहि सिगात्त ।।७६।।
जह ढंक कंख पंखियन तेह, जिन्ह चुंच संधासिय भखह देह ।
जितु लहरि अगनि झाला तपाइ, खिणुमहि सतनु घालहि जलाइ ।।७७।।
करि मगर मंछ ए दुट्ठ जीय, तिसु भीतरि ते पुण लेइ दीय ।
जे परमाधरमी वधिक जाणि, ते घालि जालु काढति ताणि ।।७८।।
इक लो कुहाड कुरुहि गहीर[4], ते खंड खंड करि घालहि सरीर ।
जहं तता तपहि नित लोह थंभ, जिन्ह लावहि अंगिजि पलिय खंभ ।।७९।।

---

१. ग प्रति में रड के स्थान पर वस्तु बन्ध छन्द का नाम दिया है ।
२. मैंनू (ख प्रति)
३. तिसु (क, ख प्रति)
१. अहीर (क प्रति)

चाइयइ सु ता बोलाइ सुद्ध, मदि मासि जिहुं तिय जीय लुद्ध ।
तहु धाट विषम कुंभी गहीर, तिसु माहि पचावहि ले सरीर ।।८०।।
सिरु तलें करहि उप्परि सि पाउ, वै घालहि सबल निसंक घाउ ।
भाले करि पीडहि घाण माहि, रड वडहि रडहि बहु दुखु सहाइ ।।८१।।
वै छेयण भेयण ताडणइ ताप, वेंसहहि जीव जिनि कीय पाप ।
जिनि मन्यामानी मोहु राइ, तितु सुर मज्जहि तेह जाइ ।।८२।।
तह स्वामि उत्तारिउ मयण कीय, मइ आइ सारथयइ तुम्ह दीय,
धम्म²पुरु गढु अति विषम ठाणु, तिस उप्परि चलिउ करि त्रिताणु ।।८३।।
इव आइ जुडियइहु विषम संधि, उहूं संक न मानइ जीति कंधि ।
उहु अप्पु अप्पु अप्पउ भणाइ, उहु अवरि कोडि नवडि गिणाइ ।।८४।।
आदीसुरस्यउ मिल्लिउ बिबेकु, उहुं वैसि कियउ द्रुहु मंतु एकु ।
अप्पणउ दाउ सहुको गणंति, को जाणइ पासा कि ढलंति ।।८५।।

दोहा

इती बाय सुणेवि करि, चित्ति उप्पणउ कोहु ।
सधनु सबै संवूहि करि, इम भडु चल्लिउ मोहु ।।८६।।

रड

मोह का साथ होना—

मोहु चल्लिउ साथि कलिकालु,
तहहु तउ मदन भडु, तहु सु आइ कुमंतु कियउ ।
गढु विषमउ धम्मुपुरु, तहसु सधनु संवूहि लियउ ।
दोनउं चल्ले पैज करि, गव्वु धरिउ मन माहि ।
पवण प्रबल जब उछलहि, घण घट कैम रहाहि ।।८७।।

गाथा

रहहि सुकिउ घण घट्टं, जुडिया जह सबल गजि थट्टं ।
सवखिडि चले सुभटं, पयाणउं कियउ भड मोहं ।।८८।।

रासाछंदु

करिवि पयाणउं मोहु भड चल्लियउ ।
संमुहु भंपाज वालवघूलउ भुल्लियउ ।
फुट्टिउ जलहरु कुंभ ध्याहु तरुणि दिय ।
ले आइ तह अग्गि भूयंतिय रडंतिय ।।८९।।

---

२. धर्मपुरी

अपसकुन होना—

मुंडिय सिरु नर न कटउ हथि कपालु जिसु ।
संमुहुई छींक पयाणउं करत तिसु ।
तिण तुस चम्म कपास कद्दम गुड लवणा ।
मोह चलतं तिसु नगर हू दीठे ए सवणा ।।६०।।

प्रथम मजलि चलंत सुकीही फोकरई ।
नाहक बाभहु मालउ बत्तीसी अगुसरइ ।
वांवइ काला विसहरु मंसिहु फणु हुणई ।
सुक्क बिरषतहि जुगिणि बोलइ दाहिणए ।।६१।।
सवणान सुधिनउ मानइ, चडिउ गवियते ।
कज्ज विणासण अवसरि पुरुषहु विगय मते ।

धर्मपुरी के दर्शन होना—

मजलि मजलि करि चलिउ, धम्मपुरी दिसहि ।
आगम अधातम सार जणाइय वेचरहि ।।६२।।

दोहा

आगम अधातम विधिचर तिन्ह जणायउं ।
आइ तुम्ह उप्परि पल्याण्यो, स्वामी मनमथु राइ ।।६३।।

गाथा

सुणिय बात मणरमु उपायउ ।
मरुवतणु न क्कीवु मुलायउ ।
सार देइ बिव्वेक बुलायहु ।
सभा जोडि सुहु मंतु उप्पावहु ।।६४।।

कवित्त

विवेक की सेना—

सम दम संवरु हुकु ढुकु वैरागु सबसु दलु ।
बोहि तत्त परमत्थु सहण संतोष गरुवभर ।
पिमा सु अज्जउ मिलिउ मिलिउ मद्दउ मुत्तिसउ ।
संजमु सुत्त सउच्चु आयउ किंचणु बंभवउ ।
बलु मंडि मिलिय करुणा अटलु सासण विण बधाइयउं ।
ले फौज सबलु संबूहि करि इव विवेक भडु आइयउ ।।६५।।

हक्कारिउ सुभट चारित्तु [illegible] तहु [illegible] समसु संदरि ।
गह गहउ जंन चित्त, इव चल्लिउ रिसह जिणराहि ॥९६॥

चल्लिउ रिसह जिणंदु स्वामी, छिहिसिया मनु कवलु ।
तिसु पंथि सनमुष आइया, नाथि थामै मनु धवलु ।
मृदंग तूरा संष भेरी झल्लरी झंकारु ।
दाहिणइ सुंदरि सबद मंगल, गीय करहि उचारु ॥९७॥

ले हत्थि पुरण कलसु लछिमी, मीलिय सनमुष आइ ।
पावकु दीपग्गु जोति समसरि देषिया जिण राइ ।
सव रच्छ सुरही श्रति अनूपमु, काढ तासु गुवालु ।
पयसंतु पवलिहि दिट्ठ नरवइ, करगहे करमालु ॥९८॥

निलटंतु वांवइ वोलिया चडि सुफल बिरखहि चाइ ।
इकु निमलु जुगलु पलोइया सावइ चडिया आइ ।
गरजंत सुणिया केसरी सिरि धरया सवरु उठाई ॥९९॥

दुइ दिट्ठ गयवर अति सउज्जल करत गल गरजार ।
आवंत फल नारिंग निहाले अवर कुसमहि हारु ।
सव सवण सुपन संजोग ससिमालबधि पोतइ जाम ।
जे नीति मारग पुरष चालहि तिनहि सीझइ काम ॥१००॥

रड

हुइय उत्तिम सवेण जाम
गढ पाथलि उत्तरिउ, सुमति पंथ सा जाण छाइयं ।
मनुसूरह गह गहिय, जाम नीसाण परगड वजाइय ।
दोनउ दुक्कय सवल दल, जुडिय सुभट मुख मोडि ।
रण दिट्ठहि जे नर खिसहि, तिनकी जननी खोडि ॥१०१॥

पद्धडीय छन्दु

तिन्ह जननि खोडि जे भजि जाहि, पच्चारिय नर पौरिषु कराहि ।
रणु अंगणु देखहि सूरवीर, पै हणिय जेव नक्खहि गहीर ॥१०२॥

आइयउ पहि स अन्यान चोरि, छहि न्यान पछाडिउ करिवि ओरु ।
मिथ्यातु उठिउ तब अति कराल, जिनि जीउ रुलाउ अनंत कालु ॥१०३॥

चल्लिउ कुमग्गहि लोउ तासु, तिनि मुसिउ न कोको को विस्वासु ।
अनादि काल जो नरह सल्लु, उह भिडइ सुभटुए कल्लु मल्लु ॥१०४॥

का वर्णन —

लोगालोगोरु दुहु पयार ।
जिसु सेवत भमियइ गति चयारि ।
अमिकतु सुसूरु तब विट्ठ होइ ।
बलु मंडि रणहि जुट्टियो सोइ ।।१०५।।

फाटियो तिमरु जब देखि भानु ।
भगियो छोडि सो पढम ठाणु ।
उठि रागु चलिउ गरमत गहीर ।
वैरागि हणिउ तणि तासु तीर ।।१०६।।

उठि धाइ दुसहु तब विषइ लगु ।
पचखाणु देषलु परइ भगु ।
उठि कोहु चलिउ झाला करालु ।
तब उपसमु ले हणियो करवालु ।।१०७।।

मद अट्ठ सहित गंजिउ मानु ।
जिनि महवि जित्ति कर विनाणु ।
तब माया अति उट्टी करूर ।
मलि अज्जव बिद्दिसी होट्ठ सूरि ।।१०८।।

बाईस परीसह उठेय गज्जि ।
दिखि देखि धीरजु सुभटु जि गईय भज्जि ।
आइयउ कलहु तह कलकलाइ ।
दुडि गयउ दुसहु तिसु खिमा धाइ ।।१०९।।

हुविकयउ झूठु मूरिखु अंगेजु ।
सति राइ गंवायो तासु तेजु ।
कुसीलु जु होत दुट्ठु चिति ।
बलु करि बिदारिउ बंभदत्त ।।११०।।

दलु चलियउ मोहहु मुख फिराइ ।
तब लोमु सुभटु भो जुडिउ आइ ।
तिणि दारुणि बलु मंडिउ बहुतु ।
उन विकट बुधि सिहु दिनी सुभुत्त ।।१११।

उहु दुखी करइ नित पुरिष संत ।
इहु व्यापि रह्या सहु जीव जंत ।

उहु भडइ खिणहू खिणि भज्जि जाइ ।
बलु करइ बहुडि संभरइ आइ ॥११२॥

धरमै गुणठाणौ जगु करेइ ।
बलु करइ अधिकू नहु जाण देइ ।
तिसु देषि पराक्रमु खलिय राइ ।
संतोषु तबसु उट्ठियउ रिसाइ ॥११३॥

तिसु सीसु हृणयाँ ले बज्ज दंडु ।
खंड हूडिउ लोभु पडियो प्रचंडु ।
एहु देषि सुदधु सो कलियकालु ।
खिण माहि फिरिउ नारदु बितालु ॥११४॥

तिनि तजिय कुमति सुहमति उपाइ ।
बिब्बेकु सहाई हुयउ आइ ।
जो चलन न दित्तउ मुत्ति मग्गु ।
कर जोडि सुस्वामी चलण लग्गु ॥११५॥

आसरउ उठिउ सब विधि समत्थु ।
रण मज्झि भउ करि उभ हत्थु ।
संवर बलु आणिउ ताम चित्ति ।
तिसु खोइय मूलि उप्पाडि षित्ति ॥११६॥

बहु भिडिय सुभड रण महि पचारि ।
के भग्गिय के घल्लिमसि मारि ।
दल माहि जु अम हुंतिय प्रचंडु ।
तप सूर किये ते खंड खंड ॥११७॥

जब बात सुणीयहु मोह राइ ।
तब जलिउ बलिउ उट्ठिउ रिसाइ ।
करि रत्त नयण बहु दंत पीसि ।
अनिहाउ पडिउ जण तुट्टि सीसि ॥११८॥

बहु रूदि रूपि सो उड्यो आप्पु ।
सो बहुत करइ जीयहू संतापु ।
रै मडिउ सु रणमहि दुसहु धाइ ।
उस संमुहु न बुक्कइ कोइ आइ ॥११९॥

वस्तु बन्ध

को न छुक्कइ समुद्द तिसु थाइ ।
जलु पीरिषु सबु हरिउ मलइ—
ग्रमल सो ग्रचल चालइ ।
वैरागहु चरितहु तपहु ग्रवरु संजमहु टालइ ।
ग्रट्ठाइसै पगल जिसु लगाइ जिस कहूं धाइ ।
सो नरु जम्मरणु मरणु करि बहुतै जोणि भमाइ ।।१२०।।

तब बुलाय देवु ग्रादीसु,
बिबेकु सबलु भडु ग्रप्पुलकारणि थानिकि बइठ्ठिउ ।
ग्रवगंजनु मोहको, ग्यान बुद्धि ग्रवलोइ देषिउ ।
पेरिउ तब तिनि सीख कहि, दे ग्रसिवरु मुहु ग्रारणु ।
बेगि बिग्रारहु धुरा धुर, जिउ ग्रावै निब्बारणु ।।१२१।।

गाथा

प्रगटावण पहुमतो, चढियो बब्बेकु सज्जि भोवालो ।
सो सरयन्नि चलणि लग्गिवि, लेउ नमतु चलियउ एवं ।।१२२।।

चौपाई

उम्मतु लै चल्लिउ मनमहि खिल्लिउ ।
उपजी बहुत समाधि रणि रंगणि ग्रायौ ।
साधहु भायो नाठी कुमति कुव्याधि ।
रंजिय सुहु सज्जणि जिव पावस घण ।
दुज्जण मयं तालो मोहहं मोषंजनु ।
ग्यानहु मंडनु चडिउ बिवेकु भुवालो ।।१२३।।[1]

उस बाग्रहु जे नर, दीसहि रत सर किर्त किसहि न काजे ।
जिन्ह कहु ग्रसंग्रा पुब्बिल्ल पुत्रा, ते राणे ते राजे ।
ते ग्रविहुउ मित्तहु निम्मल चित्तहु, बिगसत बयन रसालो ।
मोहहु मोषंडणु ग्यानहु मंडनु चडिउ बिवेकु भुवालो ।।१२४।।

---

१. क ग्रौर ग प्रति की छन्द संख्या में ग्रन्तर है

जो दलि बलि पूरा, सब विधिसूरा, पंचह महि परवीणो ।
परमत्थह बुज्झइ आगमु सुज्झइ धम्मि ध्यानि नित लीणो ।
जो केई दुर्गति मार्गी सुहगति बहु जीवह रखवालो ।
मोहह मौखंडनु म्यानुह मंडनु चडिउ विवेकु भुवालो ॥१२५॥

जो दव्वह खित्तहि, भावी छित्तिहि काल भावसु विचारइ ।
नयसुत्तिहि सत्थहि भेयहि अत्थहि संकट विकट निवारइ ।
जो आगम विमासइ निरतउ भासइ मदन खनन कुद्दालो ।
मोहह मौखंडनु म्यानह मंडनु चडिउ विवेकु भुवालो ॥१२६॥

छप्पड्ड

पाप पडलु विहडणु जोति जगल्लण कारणु ।
चिंता मणिमड्ड रमणु भवियण जण मन उल्हासणु ।
सकल कल्याण कोसु, सवइ आरति भय खिल्लणु ।
जडिगत जीव अवलंभि, भार धम्म धुर भुल्लणु ।
संतुट्ठ होइ जि सुर नर, मिलिउ तासु न पडइ कम्मपड्ड ।
चडिउ विवेकु इव सज्जि भडु, करण प्रगट मिथ्याण पडु ॥१२७॥

पद्धडिय छंदु

मोह एवं विवेक के मध्य युद्ध—

परगटणु मग्गु निव्वाणु कज्जि ।
विवेकु सुभट्टु तव चडिउ सज्जि ।
तव होयो कीयो तेनि आइ ।
मुह मोडि चलिउ तव मोहु राइ ॥१२८॥

देखिव मदनु जव खिसत मोहु ।
तव चल्लिउ अप्पु मनि करि विछोहु ।
उड्ड दोनउ दुज्जिकय काल कंपि ।
तव भिडिय रणांगणि फौज बंधि ॥१२९॥

वे अणिम जोडि जुज्भिय भुवाल ।
तव पडहिं खगजणु धसणु झाल ।
ए तेजल्हेस्या गोले मिलंति ।
तिसीय उल्हेस्या झाला झलंति ॥१३०॥

वैर छीय सुभट्ट मञ्चल्ल होइ ।
दुह माहि नपिछीक खिसई कोइ ।
जब देखिउ बलु दुधरु प्रगाहु ।
तब संजमि रथि चडि चलिउ नाहु ।।१३१।।

छन्दु रंगिका

आदिनाथ की कामदेव पर विजय—

जिणु संजमु रथहि चडि तिन्नि गुत्ति मय गुडि ।
मिलिय सुभट जुडि पंच वरत खिमा प्राडणु समुहु धरि ।
न्याणु करवालु करि समिकतु ताणि सिरि तणि उत्थिल ।
छुटि प्रगम सकल सार कुमति कयानर कपति घणो ।
भाजु भाजु रे मदन भट, आदिनाहु सिरिसट ।
देइ कर दहु वट प्रथम जिणो ।।१३२।।[1]

मेनुरचा भावन भाइ, मत्त घु जलहृकाइ ।
मिलिय राणिम राइ, छत्तीस गुण अनुप्रेक्षा पाइ कवार ।
सील सहंस प्रंगढार, बस विधि धम्मचार ।
सबल घणं बैठो ओदसमें गुणगणु ।
देखिय अन्तर ध्यानि गति थि सब जाणि कहइ सुणो ।
भाजु भाजु रे मदन भट आदिनाहु सिरि सरट.....जिणो।।१३३।।

तिनि रतन जो से निकसि बमु करत धारि धसि ।
नफीरी बाजहि जसि, महिर सरोवयारहिय पोरिस पूरि ।
भागिय हिंसा दूरि बलु उपसनु सूरि कियो ।
नरो ए जु मतीसहु तीसचारि, परि जेति बंच कारि ।
मंतु सुध्यानु धरि राखिउ मणो, भाजु भाजु रे मदन भट ।
आदिनाहु सिरसट देइ कर दहु वट प्रथम जिणो ।।१३४।।

घालिउ समर कंटकु फंदि, मोहु राउ कियो बंदि ।
कसाइ चारि निन्द बहिहुरा भ्रममइ मंगल किय निपातु ।
घालिय भागि मिथ्यातु मुकिय घडा धम्म सुरति भाट पढंति ।
दुंदही देव बाजंति सुरहु तीय गावंति सासण गुणो ।
भाजु भाजु रे मदन भट..........प्रथम जिणो ।।१३५।।

---

1. क प्रति में १३२ की संख्या नहीं दी गई है ।

कवित्त

पखिउ कोइ कंदप्पु, अप्पु बलु अवर न मानइ ।
कुंजर [illegible] [illegible], दुसह दुद्धरह अवगण्णइ ।
ताणि कुसमु कोवंड मअरद्धह संडह बल ।
बंभई सहरि दैत तिन्ह रखिय तिन्हक ।

कवि वल्हुगु जयंतु जंगमु अटलु ।
सरकिय अवरु तिसु सरइ कोइ ।
पखि भाण हणिउ श्री आदिजिण ।
गयउ मयणु दह अट्ठ कुहुइ ॥१३६॥

वस्तु बन्ध

दुसहु बडउ मोहु प्रचंडु, भडु मयणु निदियउ ।
कलिय कालि तब पाडि लियउ, आनंदु निवत्ति मनि ।
विवेक जसु तिलकु दीयउ, जे वड्डवडे धम्म के ते सब ।
घाले बंदि चेयणराउ छुडाइयउ, स्वामी आदि जिणंदु ॥१३७॥
छुट्टि चेयणु हुयउ मणु महजि,
सह खुल्लिय धम्मदर, समाधि आगम जाणियउ ।
रवि कोट अनंत गुण, प्रगट जोति केवलि दिपायउ ।
सुरपति नरपति, नागपति मिलिय सैन सब आइ ।
अन्या फेरन देसमहि दियउ विवेकु पठाइ ॥१३८॥
स्वामि पठायउ राउ विवेकु
सो देसहि संचरिउ, उसभ सेणिकहु वेगि बुलायहु ।
सो थप्पिउ गणहपति, सुत्तु अत्थु तिसु कहु सुणायउ ।
इकु धम्मु दुहु बिधि कह्यो, सागारी अणगारु दे ।
संखेपिहि इब कहियउ, भवियहु सणहु बिचारु ॥१३९॥

कर्म का विवेचन—

मिलि चउविहु संघहु आइ,
बहु देवी देवतह, तिप जांचमि हुइय इक्कट्ठिय ।
करि बारहु परिखधा, ठामि ठामि मांडवि वइट्ठिय ।
वाणीय निम्मल अमियमं, सुणि उपजे सुह झाणु ।
भवियणु मनु गहि गहिउ स्वामी करइ बखाणु ॥१४०॥

थिति पयासिय लोउ प्रलोउ,
पुणु भासिय प्रथि जो, नत्थि हुंति ते नत्थि भासिय।
पुण्णि कारणि बहु बिधि कहिव, जो जो जिणेंद पहेंउ।
सो सो लिवहि मेलि दल, सा सा गति भोगेइ ॥१४१॥

महारंभ पारंभ करि परिग्गहु मिलवहि।
पंच इंदिय वसि करहि मद मासि चितु लावहि।
इहै सुख के फल पाप न पुन्न विचारहि।
सो नरु नर गेहि जाइ मणुव जम्मतरु हारइ ॥१४२॥

बहु माया केवलहि कपटु करि पर मनु रंजइ।
प्रति कूडिहि प्रवगुरु करिवि छल परजीवह वंचइ।
मुहि मीठा मनि मलिन पंच महि भला कहावइ।
इन कम्महि नरु जाणि जुनि तियजचह पावइ ॥१४३॥

भद्द प्रवृत्ति जे होंहि ध्यान आरति न चहुंटहि।
प्रनुकंपा चिति करहि विनउं रति मुखा भाषइ।
पंचदहु दहइ सरल प्रणामि, मनि न आणहि मछर गति।
कहहि खरवन्नि पावहि सुगति राग संजम दहु पालहि ॥१४४॥

सावय धम्म जे लीण दिस समूहु निहालइ।
विणु रुचि जे निजरहि बालयरण तवु साधहि।
इनु भाइ जिणराइ कह्यउ देवहु एति बाधहि ॥१४५॥

रड छंद

मणहु सवे चित्त धरि भाउ,
निज समकितु सद्दहहु, देउ इक प्ररहंत सेवहु।
प्रारंभ पारंभ बिनु, सुगुरु जाणि निग्रन्थ सेवहु।
भासिउ धम्मु जु केवलिय, सो निश्चइ जाणेह।
तिन्ह बरत संजम नेमि तिन्ह, जिन्ह पहिला थिरु एहु ॥१४६॥

थूल पाण मम भखहु थूल कूडउ मम भासहु।
थूलु प्रदत्तु मलेहु देखि परतिय वितु तासहु।
परिगहु विउह पमाणु, भोगउपभोग संखेवहु।
प्रनर्थदंडविमाणु, नमउहु सामाइकु सेवहु ॥१४७॥

क प्रति

थूल पाण मम वहहु, थूल कूडवो मम भासहु ।
थूल अदत्तमलेहु, वेखि परत्तिय तन तासहु ।
परिगह दिगह पमाणु, भोग उपभोग संखवेहु ।
अनथदंड प्रमाण, नित्य सामाइकु सेवहु ।
पसंरतु सुमनु दसमहि दमहु, पोसहु एकादसि धरहु ।
आहार सुद्ध चित्त निम्मलइ, असंविभाग साधहु करहु ।।१४७।।

मडिल्ल

पहिली प्रतिमा दंसण धारहु, बीजी व्रत निम्मल उच्चारहु ।
तीजी तिहुं कालहि सामाइक, चौथी पोसहु सिव सुख दायक ।।१४८।।
पंचमी सकल सचित्त विवज्जइ, राईभोयणु छट्ठीयम किज्जइ ।
सप्तमी बंभ वरत दिढु पालहु, अट्ठमी आपणु आरंभु टालहु ।।१४९।।
नवमी परगहु परइ मिलीजइ, सावध वचनु दसमी दीजइ ।
एकादसमी पडिमा कहि परि, रिषि जाउ ले भिक्षा पर घर फिरि ।।१५०।।

दोहा

इव जे पालहि भावस्युं इहु उत्तिम जिण धम्मु ।
जग महि हुवउ तिन्ह तणउं, नर सकयत्थउ जम्मु ।।१५१।।

रड्ड

जंपि सक्कइ करहु तउ तिसउ
वलु मंडिवि देहस्यउ, अहव किंपि जे नर सक्कहु ।
ता सद्दहु ध्यानु निजु, हीयइ धरत खिणु इक न चक्कहु ।
अंते करहु सलेखणा, सव्वे जीव खमाइ ।
पालहु सावय सुख लहहु आण जिणेसुर राइ ।।१५२।।
सुणहु सावहु धम्मु हित करणु,
सो पालहु मलख मणि, सुगइ होइ दुग्गइ निवारइ ।
वुडंत संसार महि, होइ तरंड खिण महि तारइ ।
बंधियइ कम्म जि सुह असुह, जीय अनंतइ कालि ।
ते तप बलि सब निद्दलहुं, जिव तरु कुंद कुदालि ।।१५३।।

षट् पद

छोडि इक्कु आरंभु राग दोषह बिहु तजहु ।
तीनि सल्ल परिहरउ, चारि कषाय विवज्जहु ।

पंच प्रमाद निवारि, छोडि पीडणु छक्काइहिं ।
पंच सत्ति भय ठाणु, अट्ठ मद पडि सभा इहिं ।
अबंभुन नव विधि आचहु, मिथ्या दस विधि परहरहु ।
रिषि गुणहु एव अरुहिय छंडिहि, इकु अप्पणु गुण उवरहु ॥१५४॥

इकु वसि करि आतमउ, विजि थावर तेस पालहु ।
आरहहु तेर धरण दिट्ठि, ते समिय निहालहु ।
पंचइ चार चरहु दव्व छह विद्धि न लिज्जहु ।
सुस सत्त नय जाणि, मातु अडसमें गहिज्जहु ।
नव बंभ वडि दिढु राखीयइ, दस लक्षण धम्महम्महु ।
जिण भास इव मुनिवर सुणहु, गति न चारि इणि परिभमहु ॥१५५॥

सुमइ पंच तिय गुत्त पंचहु वैयारित परि ।
संजमु सत्त दह भेय, भेय बारह तपु आचरि ।
पडिमा हुइ दस सहहु, सहहु बाइस परीसहु ।
भावण भाइ पचीस, पापु सुत्त तजि नव वीसहं ।
तेतीस असाइण वल्लियहिं, जिण चौवीसइ थुति करहु ।
अट्ठाईस पगय मडु मोहु जिणु, इय सुभाय सिवपुरि सहहु ॥१५६॥

विन्नु देसण एहु जिणराइ जहु गणहर संघ जाहु ।
भव्व जिय संवेउ आयउ किय तित्थु चौबिहहिं ।
तित्थंकर तव नाउ पायउ, नामु गोतु फुणि वेधही ।
आउ सेसजिहु ति, लेखिउ करि सिवपुरि गयउ ।
सुख भोगवइ अनंत ॥१५७॥

षट्पदु

जहु न जरा न मरणु जत्थ पुणि व्याधि न वेयणु ।
जहु न देहन न नेहु जोति मइ तह ठइ चेयणु ।
जहु ठइ सुक्ख अनंत न्यान दंसण अवलोवहिं ।
कालु विणासइ सयलु सिद्ध पुणि कालहिं खोवहिं ।
जिसु वणु न गंधु न रसु फरसु, सबदु न जिस किसही लह्यो ।
बूचराजु कहै श्री रिसह जिणु सुथिरु होइ तह ठइ रह्यो ॥१५८॥

राइ विक्कम तणउं संवतु नवासिय पणरहसै ।
सरद[1] रुत्ति आसवज वखाणिउं तिथि पडिवा सुकलु पखु ।
सनि-सुवारु करु नखित्तु जाणिउं तितु दिन वल्हु पसंठ्ठयउ ।
मयणु जुझु, सुविसेसु, करत पढत निसुणत नरह् ।
जयउ स्वामि रिसहेसु ॥१५९॥

सुभं भवतु ॥ लेखक—पाठकयो ॥ लिखापितं बाई पारा स्वयं पठनार्थं कर्म्मं क्षयनिमित्तं । लिखंत देवपालु माली मलावरे की ॥[2]

---

१. सवद (क प्रति)
२. (ख प्रति)

२

संतोषजयतिलकु

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में 'संतोषजयतिलकु' की एक मात्र पाण्डुलिपि उपलब्ध हो सकी है। पाण्डुलिपि श्री दि० जैन मन्दिर नागदी, बून्दी के गुटके में कविवर बूचराज के अन्य पाठों के साथ संग्रहीत है जो पत्र संख्या १७ से २० तक उपलब्ध है। तिलकु में १२३ पद्य हैं। उसके लिपिकर्ता पांडे देवदासु थे जिनका उल्लेख 'चेतन पुद्गल धमाल' के अन्त में दिया हुआ है। पाण्डुलिपि शुद्ध, स्वच्छ एवं सुन्दर है।

साटिक

मंगलाचरण—

जा अज्ञान अपार फेडि करणं, सन्यानदी वंधये।
जा दुखं बहु कंभा एण हरणं, दाइकसुग्गं सुहं।
जा देवं मणुणर तिर्यच रमणी, भविकजं तारणी।
सा जं जै जिणवीर वयण सरियं वाणी अते निम्मलं ॥१॥

रड

विमल उज्जल सुर सुरसणेहि,
सु भवियण गह गहहि, मनमु सरिजणु कवल खिल्लहि।
कल केवल पयडियहि, पाप पटल मिथ्यात पिल्लहि।
कोटि दिवाकर तेउ तपि निधि गुण रतन करंडु।
सो बधमानु प्रसंनु नितु तारण तरणु तरंडु ॥२॥

तरण तारणु हरणु दुगयह,
करुणाकरु जीय सहि, भविय चित्त बहु विधि उल्लासणु।
अठ करमह खिउ करणु सुद्ध धमु दह दिसि पयासणु।
पावापुरि श्री वीर जिणु, जय सुबहुत्तउ आइ।
तव देविन्हि मिलि संठयउ समोसरण बहु भाइ ॥३॥

इन्द्र का वृद्ध के वेष में गौतम गणधर के पास आना—

अब सुदेखइ इंदु धरि ध्यानु,
गहु वाणी होइ जिण, तव सुक पटु मन महि उपायउ ।
हुइ बंभणु डोकरउ मच्चलोइ सुरपति आयउ ।
गोतमु गोतमु जहू धर्म ममइ सरोतमु वीरु ।
तत्थ पहूतउ आइ करि मणवें गुणिहि गहीरु ।।४।।
थिवरु बोलइ सुणहु हो विप्प,
तुम्ह दीसइ विमलमति, इकु सन्देहु हम मनहि खक्कइ ।
नहु तें साके मिलइ जासुहु लयहू गांठि मुक्कइ ।
वीरहु ता मुज्झ गुरु मौनि रह्यालो सोइ ।
हुउ सलोकु लीए फिरउ अत्थु न कहइ कोइ ।।५।।

गाथा

हो कहहु थिवर बंभण, को अच्छै तुम्ह चित्ति संदेहो ।
खिण माहि सयल फेडउ, हुउ अविरल्लु बुद्धि पंडित्तु ।।६।।

षट्पदु

तीन काल षटु दव्वि नवसुपद जीव षटुक्कहि ।
रस ल्हेस्या पंचास्तिकाइ व्रत समिति सिगक्कहि ।।
ज्ञान अवरि चारित्त भेदु यहु मूलु सु मुत्तिहि ।
तिहुअण-महर्ष कहिउ वचनु यहु अरिहि न रत्तिहि ।।
यहु मूलु भेदु निजु जाणियहू सुद्ध भाइ जे के गहहि ।
समनक्तदिट्ठि मतिमान ते सिव पद सुख वंछित लहहि ।।७।।

गाथा

एय वयण सवणि संभलि, चमकिउ चित्त मज्झि पुरइ नहु अत्थो ।
उट्ठियउ झत्ति गोइमु चल्लिउ, पुणि तत्थ जय जिणणाहु ।।८।।

रड

तब सु गोइमु चल्लिउ गजंतु,
जणु सिंधुरु मत्तमय तरक छंद व्याकरण सत्थहू ।
षटु अंगहु वेयधुनि, जोतिक्कलंकार सत्थहू ।।
पुलइ सु विद्या अतुल बलु चडिउ तेजि अति थंमु ।
मानु गरुया सिसु मन तणा देखत मानथंभु ।।९।।

गाथा

देखंत मान थंभो, गलियउ तिसु मानु मनहु मर्झम्मे ।
हुवउ सरल पणामो पुछइ गोइमु चिति संदेहो ॥१०॥

दोहा

गौतम द्वारा प्रश्न—

गोइमु पुछइ जोडिकर स्वामी कहहु विचारि ।
लोभि वियापे जीव सहि, तरिहि केउ संसारि ॥११॥

रड

भगवान महावीर का उत्तर—

लोभ लग्गउ पाणवधु करइ,
अलि जंपइ लोभिरतु, ले अदत्तु जब लोभि आवइ ।
महु लोभु बंमहु हरइ, लोभि पसरि परगहु बधावइ ॥
पंचइ वरतहु खिउ करइ, देहु सदा मनचारु ।
सुणि गोइम इसु लोभ का कहुउ प्रगटु विचारु ॥१२॥

मूलहु वृक्ख तणउ सनेहु,
सतु विसनहु मूलु अ कम्महु मूल आसउ भणिज्जइ ।
जिम इंदिय मूलु मनु, नरय मूलु हिंस्या कहिज्जइ ।
जगु विस्वासे कपट मति परजिय बंछइ दोहु ॥
सुणि गोइम परमारथु यहु, पापहु मूलु सुलोहु ॥१३॥

गाथा

भमयउ अनादि काले, चहुगति मर्झम्मि जीवु वहु जोनी ।
वसि करि न तेनि सक्कियउ, यहु दारुणु लोभ प्रचडु ॥१४॥

दोहडा

दारुणु लोभ प्रचंडु यहु, फिरि फिरि वहु दुख दीय ।
व्यापि रह्या वलि अप्पइ, लख चउरासी जीय ॥१५॥

पद्धडी छंद

यहु व्यापि रह्या सहि जीय जंत, करि विकट बुद्धि परमय हुवंत ।
करि छलु पयसे धूरत जेंव, परपंचु करिवि जगु मुसइ एव ॥१६॥

संकुडइ मुडइ मढलु कराइ, बगजेंव रहइ लिव ध्यान लाइ ।
ठग जेंव ठगौ लिय सीसि पाइ, परचित्त विस्वासै विविह भाइ ॥१७॥

मंजार जेव आसण बहुत्त, सो करइ जु करणउ नाहि जुत्त ।
जे वे सजेंव करि विविह ताल, मति थावइ सुख दे वृद्धबाल ॥१८॥

लोभ का साम्राज्य —

आपणौ न औसरि जाइ चुक्कि, तम जेंउ रहइ तलि दीव लुक्कि ।
जब देखइ डिगतह जोति तासु, तब पसरि करइ अप्पणु प्रगासु ॥१९॥

जो करइ कुमति तव मण विचार, जिसु सागर जिउ लहरी अपार ।
इकि चडहि इक्कि उत्तरिवि जाहि, बहु घाट घडइ नित हीयै माहि ॥२०॥

परपचु करैइ जहरै जगत्तु, पर अप्पु न देखइ सत्तु मित्तु ।
खिण ही अयासि खिण ही पयालि, खिण ही भित मंडलि रंग तालि ॥२१॥

जिव तेल बुंद जल माहि पडाइ, सा पसरि रहे भाजनह छाइ ।
तिव लोभु करइ राई सचारु, प्रगटावै जगि में रह विथारु ॥२२॥

जो अघट घाट दुघट फिराइ, ओ लगड जेव लंगत थाइ ।
इकि सवणि लोभि लग्गिय कुरंग, देहि जीव आइ पारधि निसंग ॥२३॥

पतंग नयण लोभिहि भुलाहि, कंचण रसि दीपग महि पडाहि ।
इक घाणि लोभि मधुकर भमंति, तनु केवइ कंटइ वेधियंति ॥२४॥

जिह लोभि मच्छ जल महि फिराहि, ते लग्गि पराण अप्पणु गमहि ।
रसि काम लोभि गयवर भमंति, मद अंधसि वध बंधन सहंति ॥२५॥

इक इक्कइ इंदिय तणो सुक्ख, तिन लोभि दिखाए विविह दुक्ख ।
पंच इंदिय लोभिहि तिन रखुत्त, करि जनम मरण ते नर विगुत्त ॥२६॥

जगमसि तपी जोगी प्रचंड, ते लोभी भमाए भमहि खंड ।
इंद्राधिदेव बहु लोभ मत्ति, ते वंछहि मन महि मणुवगत्ति ॥२७॥

चक्कवै महिय हुइ इक्क छत्ति, सुर पदइ वंछहि सदा चित्ति ।
राइ राणो रावत मंडलीय, इनि लोभि वसी के के न कीय ॥२८॥

वण मज्झि मुनीसर जे वसहि, सिव रमणी लोभु तिन हियइ माहि ।
इकि लोभि सग्गि पर भूमि जाहि, पर करहि सेव जीउ जीउ भणाहि ॥२९॥

सकुलीणो निकुलीणह दुवारि, लेहि लोभ विगाए कर पसारि ।
वसि लोभि न सुणही धम्मु कानि, निसि दिवसि फिरहि आरत्त ध्यानि ॥३०॥

ए कीट पड़े लोभिहि भमाहि, संचहि सु अन्नु ले धरणि माहि ।
ले वनरसु हूंढै लोभि रत्तु, मक्खिकासु मधु संचइ बहुत ॥३१॥
ते कियन पक्खिय लोभहु मझारि, धनु संचहि ते धरणी भडारि ।
जे दानि धम्मि नहु देहि खाहि, देखंत न उठि हाथ झाडि जाहि ॥३२॥

गाथा

जहि हत्थ झाडिकि गर्ग, धनु संचहि सुलहि करिवि भंडारे ।
तरहि कौव संसारे, मनु बुद्धि ऐ रसी जांइ ॥३३॥

रड

वसइ जिन्ह मनि हसिय नित बुद्धि,
धनु खिढनहि ग्रहकि जगु, सुगुर वचन चितिहि न भावइ ।
मै मै मै करइ सुपत धम्मु सिरि सूलु आवइ ॥
अप्पणु चित्तु न रंजही जणु रंजावहि लोइ ।
लोभि वियापे जेइ नर तिन्ह मति ग्रैसी होइ ॥३४॥

गाथा

तिन्ह होइ इसिय मत्ते, चित्ते भय मलिन मुद्दुर मुहि वाणी ।
विदहि पुत्र न पावो, वसकियो लोभि ते पुरिष ॥३५॥

मडिल्ल

इसउ लोभु काया गढ अंतरि, रयणि दिवस संतवइ निरंतरि ।
करइ ढीठु अप्पणु बलु मंडइ, लज्या न्यानु सीलु कुल खंडइ ॥३६॥

रडं

कोहु माया मानु परचंड,
तिन्ह मज्झिहि राउ यहु इसु सहाइ तिन्निउ उपज्जहि ।
यहु तिव तिव विप्फुरइ, उइ तेय बलु अधिकु सज्जहि ॥
यहु सहु महि कारणु करणु, अव घट घाट फिरंतु ।
एक लोभ विणु वसि किए, चौगय जीउ भमंतु ॥३७॥

जासु लोवइ प्रीति अप्रीति,
ते जग माहि जाणि यह, जाणिउ रागु तिनि प्रीति नारि ।
अप्रीति हु दोष हव, दहु कलाप परगट पसारि ॥
अज्ञा फेरी आपणी, घटि घटि रहे समाइ ।
इन्ह दहु वसि करि ना सकै, ता जीउ नरकि हि जाइ ॥३८॥

दोहा

सप्प उरहु जैसे गरल, उपने विष संजुत्त ।
तैसे जाणहु लोभके, राग दोष दुइ पुत्त ॥३९॥

पद्धडी छंद

दुइ राग दोष तिसु लोभ पुत्त ।
जाणहि प्रगट संसारि धुत्त ॥
जहु मित्त तणु तहु राग रंगु ।
जहु सत्त तहा दोषहु प्रसंगु ॥४०॥

जहु रागु तहा सरलउ सहाउ ।
जहु दोषु तहां किछु बक्र भाउ ॥
जहु रागु तहु मनहु प्रवाणि ।
जहु दोषु तहा अपमानु आणि ॥४१॥

जहु रागु तहा तहु गुणहि सुत्ति ।
जहु दोषु तहा तहु छिद्र चित्ति ॥
जहु रागु तहा तहु पतिपत्तिदु ।
जहु दोषु तहा तहु काल दिट्ठु ॥४२॥

ए दोनउ रहिय वियापि लोइ ।
इन्ह साभुन दीसइ महिय कोइ ॥
नित हियइ सिसलहि राग दोष ।
वट माडे दारुण मग्गहु मोख ॥४३॥

रड

पुत्त मैसिय लोभ धरि दोइ ।
चलु मंडिउ अप्पणउ, नाद कालि जिन्ह दुक्ख दीयउ ।
इंद जालु दिखाइ करि, घरी भूत सहु लोगु कीयउ ॥
जोगी जंगम जतिय मुनि सभि रक्खे लिवलाइ ।
अटल न टाले जे टलहि फिरि फिरि लग्गहि धाइ ॥४४॥

लोभ का प्रभाव—

लोभु राजउ रहिउ जगु व्यापि ।
चउरासी लखमहि जय जीउ पुणि तत्थ सोइय ।
जे देखउ सोधि करि तासु साभु नहु भत्थि कोइय ॥

विकट बुद्धि जिनि सहि मुसिय घाले कम्मह फंध ।
लोभ लहरि जिन्ह कहु चडिय, दीसहि ते नर अंध ॥४५॥

दोहा

नरय तिजंचह नर सुरह, हीडावै गति चारि ।
वीरु भणइ गोइम निसुणि, लोभु बुरा संसारि ॥४६॥

रड

गौतम स्वामी का प्रश्न—

कहिउ स्वामी लोभु बलिवंडु ॥
तब पुछिउ गोइमिहि इसु, समस गय जिउ गुजारहि ।
इसु तनिइ तउ बलु, को समथु कहुइ सु बिदारइ ॥
कवण बुद्धि मनि सोचियइ कीजइ कवण उपाउ ।
किसु पौरिषि यहु जीतियइ सरवनि कहहु सभाइ ॥४७॥

भगवान महावीर का उत्तर—

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु ।
यहु सासणु बिम्मलइ, सुणत धम्मु भय बंध तुट्टहि ।
अति सूखिम भेद सुणि, मनि संदेह खिण माहि मिट्टहि ॥
काल अनंतिहि ज्ञान यहि, कहियउ आदि अनादि ।
लोभु दुसहु इव जिजत्तयइ, संतोषह परसादि ॥४८॥

कहहु उपजाइ कह संतोषु ।
कहु वासइ थानि उहु, किस सहाइ बलु इसउ मंडइ ।
क्या पौरिषु सैनु तिसु, कासु बुद्धि लोभह बिहंडइ ॥
जोरु सखाई भवियहुइ पयडावै यहु मोखु ।
गोइम पुछइ जिण कहहु किसउ सुभटु संतोषु ॥४९॥

संतोष के गुण—

सहजि उप्पजइ चिति संतोषु ॥
सो निमसइ सतपुरि, जिण सहाय बलु करइ इतउ ।
गुण पौरिषु सैनु धम्मु, ज्ञान बुद्धि लोभह जितइ ॥
होति सखाई भवियहुइ टालइ दुरगति दोषु ।
सुणि गोइम सरवनि कहउ, इसउ सूरु संतोषु ॥५०॥

रासा छंद

इसउ सूरु संतोषु जिनिहि घट महि कियउ।
सफयत्थउ तिन पुरिसह, संसारिहि जियउ ।।
संतोषिहि जे तिपते ते चिरु नंदियहि।
देवह जिउ ते माणुस महियलि वंदियहि ।।५१।।

जगमहि तिन्ह की लीह जि संतोषिहि रंम्मिय।
पाप पटल घंधारसि अंतर गति दंम्मिय ।।
राग दोष मन मज्झि न खिणु इकु माणियइ।
सत्तु मित्तु मिस तरि समकरि आणियइ ।।५२।।

जिन्ह संतोषु सखाई तिन्ह नित चडइ कला।
नाव कालि सतोष करइ जीयह कुसला ।।
दिनकरु यहु संतोषु बिगासइ हियं कमला।
सुरतरु यहु संतोषु कि वंछित देइ फला ।।५३।।

चिंतामणि संतोषु कि चित्त चितत्तु फुरइ।
कामधेनु संतोषु कि सब कज्जह सरइ ।।
पारसु यहु संतोषु कि परसिहि दुक्खु मिटइ।
यहु कुठारु संतोषु कि पावहु जड कटइ ।।५४।।

रयणायरु संतोषु कि रतनह रासि निधि।
जिसु पसाइ संडहि मनोरथ सकल सिधि ।।
जे संतोषि समाणे तिन्ह भउ सब्बु गयउ।
भ्रमरेह जिउ तिन्ह मनु नितु निश्चल भयउ ।।५५।।

जिन्हहि राउ संतोषु सुतुट्ठउ भाउ धरि।
पर रमणी पर दब्बि न छीपहि तेइ हरि ।।
कूडु कपटु परपंचु सु चित्ति न लेखिहहि।
तिणु कंचणु मणि लुट्ठसि समकरि देखिहहि ।।५६।।

पियउ अमिय संतोषु तिन्हहि नित महा सुखु।
लहिउ अमरपद ठाणु गया परभमणा दुखु ।।
राइहंस जिउ नीर खीर गुण उद्धरइ।
धम्म अधम्म परिख तेव हीयै करइ ।।५७।।

भावै सुहमति ध्यानु सुबुद्धि हीयैं भज्जइ।
कलहि कलेसु कुध्यानु कुबुधि हियें तजइ ।।

लेइ न किसही दोसु कि गुण सव्वहु गहइ ।
पडइ न आरति जीउ सदा चेतनु रहइ ।।५८।।
जाहुन वक्क परणाम होहि तिसु सरल मति ।
दप्पजिउ निम्मलउ न, लगहि मलण चिति ।।
सीस जिव जिन्ह पर किति सदा सीयलु रहइ ।
धवल जिव धरि कंधु गरुव भारह सहइ ।।५६।।
सूरधीर वरवीर जिन्हहि संतोषु बलु ।
पुडयणि पति सरीरि न लिपइ दोष जलु ।।
इसउ महु संतोषु गुणिहि वखियै जिवा ।
सो लोभहु सिउ करइ कहिउ सरवंकि इवा ।।६०।।

रड

कहिउ सरवंकि इसउ संतोषु ।
सो किज्जइ चिति दिढु जिसु पसाइ सभि सुख उपज्जहि ।
नहु आरति जीउ पडइ, घोर घोर दुख लख भज्जहि ।।
जिसु ते कल वढिम चडइ, होइ सकल जगि प्रीय ।
जिन्ह कटि यहु प्रगट्टी पिय पुत्र प्रिकिति ते जीय ।।६१।।

मडिल्ल

पुत्र प्रिकिति जिय सवणिहि सुणियहि ।
जे जे जै लोयहि महि भणियहि ।।
गोइम सिउ परवीणु पयंपिउ ।
इसउ संतोषु मुवम्पति जंपिउ ।।६२।।

संघाइणु छंदु

जंपियै एहु संतोषु भूवपति जासु ।
नारीय समाधि अत्थइ थिति ।।
के ससा सुंदरी चिति है आवए ।
जीउ ततखिणे वंछियं पावए ।।६३।।

संतोष का परिवार—

संवरो पुत्तु, सुी पयडु जाणिज्जए ।
जासु अौलंबि संसारु तारिज्जए ।।
छेदि सो आसरे दूरि नै वारए ।
मुक्ति मभंम्मिले हेल संचारए ।।६४।।

कलियं तासु को लंगणा बलियं ।
दुज्जस्स तेव भंजेइ पासंनियं ॥
कोहु मणोगाहु यम्भंति ते नरा ।
ताहं संतोसए सोम सीयंकरा ॥६५॥
एहु कोट्टु संतोष राजा तणो ।
जासु पसाइ वज्झंति वंती मणो ।
तासु नैरिहि को दुद्धना भावए ।
सो भज्जो लोभह सो जुग बावए ॥६६॥

दोहा

जो जुग यावइ लोभ, कउए गुणहहि जिसु पाहि ।
सो संतोषु मनि संगहहु, कहियहु तिहु वणथाहि ॥६७॥

गाथा

कहियहु तिहु वणथाहो, जाणहु संतोषु एहु परणामो ।
गोइम चिति दिठु करु, जिव जितहि लोभु महु दुसहु ॥६८॥
सुणि वीरवयण गोइमि, भाणिउ संतोषु सूर धट मज्झे ।
पज्जलिउ लोहु तंखि खिणि, मेले चउरंगु सयमु अप्पणु ॥६९॥

रड्ड

लोभ द्वारा आक्रमण—

चित्ति चमकिउ हियइ थरहरिउ ।
रोसाइणु तमकियउ, लेइ लहरि विसु मनिहि घोलइं ।
रोमावलि उल्लसिय कालक इहुइ मुवहु तोलइ ॥
दावानल जिउ पज्जलिउ नयण नि लाडिय चाडि ।
आजु संतोषहु खिउ करउ जउ मूलहु उप्पाडि ॥७०॥

दोहा

लोभहि कीयउ सोचणउ हुवउ आरति ध्यानु ।
आइ मिथ्या सिरु नाइ करि झूठु सवलु परधानु ॥७१॥

षट्पदु

लोभ की सेना—

आयउ झूठु पधानु मंतु तस खिणि कीयउ ।
मनु कोहु अरु दोहु मोहु इक गुढउ बीयउ ॥

माया कलहि कलेसु थापु संतापु छदम दुखु ।
कम्म मिथ्या आसरउ आइ संद्रम्मि कियउ पखु ॥
कुविसनु कुसीलु कुमतु जुडिउ राग दोष आइव सहिउ ।
अप्पणउ समनु बलु देखि करि लोहराउ तव गहगहिउ ॥७२॥

मडिल्ल

गहगहियउ तव लोहु चितंतरि,
वज्जिय कपट निसाण गहिर सरि ।
विषय तुरंगिहि दियउ पलाणउ,
संतोषहु दिसि कियउ पयाणउ ॥७३॥

आवत सुणिउ संतोष ततक्खिणि,
मनि आनंदु कीयउ सुविचक्खिणि ।
तह ठइ सयनहु पति सतु आयउ,
तिनि दलु अप्पणु वेगि बुलायउ ॥७४॥

गाथा

बुल्लायउ दलु अप्पणु, हरषिउ संतोषु सुरु बहु भाए ।
जिसु ढार सहस अंग, सो मिलियउ सीलु भडु आइ ॥७५॥

गीतिका छन्दु

संतोष की सेना—

आईयो सीलु सुद्धम्मु समकतु न्यानु चारितु संवरो ।
वैरागु तपु करुणा महाव्रत खिमा चिति संजमु थिरु ॥
अज्जउ सुमद्दउ मुत्ति उपसमु द्धम्मु सो आकिंचणो ।
इव मेलि दलु संतोष राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ॥७६॥

सासणिहि जय जयकार हुवउ भगि मिथ्याति दडे ।
नीसाण सुत वज्जिय महामुनि मनिहिं कइर लडे खडे ॥
केसरिय जीव गज्जंत बलु करि चिति जिसु सासण गुणो ।
इव मेलि दलु संतोषु राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ॥७७॥

गज हल्ल जोग अचल गुडियं तत्त हयहीसारहे ।
चड फरसि पंषिउ सुमति जुडहि विनि ध्यान पचारहे ॥
अति सबल सर आगम्म छुट्टहि असणि जणु पावस घणो ।
इव मेलि दलु संतोषु राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ॥७८॥

सा णाहु सीलु सुपक्खरि अंगिहि कुंतु रतनत्रय किय।
खलहलइ हत्थि विवेक असिवरु, छत्तु सिरि समकतु हियं।
इक पदम अरु तह सुकल लेस्या चवर ढालहि निसिदिणो।
इव मेलि दलु संतोषु राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ॥७९॥

षट्पदु

मंडिउ रणु तिनि सुभटि सैनु समु अप्पणु सज्जिउ।
भाव खेतु तह रचिउ तुरु सुत आगमु वज्जिउ॥
पच्चारयो व्यातमु पयड अप्पणु दल अंतरि।
सूर हियैं गहगहहि धसहि काइर चित्तंतरि॥
उसु दिसि सु लोभु छलु तवक वैवलु पवरिषु णियतणि तुलइ।
संतोषु गरुव मेरह सरिसु इसुकि पवण भयणिणु खलइ ॥८०॥

गाथा

किं खलिहै भय पवणं, गरुवउ संतोषु मेर सरि अटलं।
पवरंगु सयनु गज्जिय, रणि अंगणि सूर बहु जुडियं ॥८१॥

तोटक छंदु

रण अंगणि जुट्टिय सूर नरा, तहि वज्जहि भेरि गहीर सर।
तह बोलिउ लोभु प्रचंडु भडो, हुणि जाइ संतोष पयालि दडो ॥८२॥
फिटु लोभ न बोलहु गरुव करे, हुण कालु पहुत्ता है तुम्ह सिरे।
तइ मूढ सतायउ सयल जणो, जहु जाहिन छोडउ तय खिणो ॥८३॥

युद्ध स्थल—

जह लोभु तहा थिरु लच्छिवहो, दरि सेवइ उब्भउ लोउ सहो।
जिव इंद्रिय चित्ति संतोषु करि, ते दीसहि भिक्ख भमंति परे ॥८४॥
जह लोभु तहा कहु कत्थ सुखो, निसि वासुरि जीउ सहंत दुखो।
संतोषु जहा तहु जोतिउसो, पय वंदहि इंद नरिंद तिसो ॥८५॥
संतोष निवारहु गव्वु चित्ते, हउ व्यापि रह्या जगु मंडि थिते।
हउ आदि अनादि जुगादि जुगे, सहु जीयसि जीयहि मुक्खु लगे ॥८६॥
सुणु लोभ न कीजइ राडि घणी, सब पिसिउ पाडउ तुम्ह तणी।
हउ तुज्झ विदारउ ख्यानि खगे, सहु जीय पठावउ मुक्ति मगे ॥८७॥

हूउ लोभु अचलु महा सुभटो, जगु मैं सहु जितिउ बंधि पटो ।
संभि सूर निवारउ तेजु मले, महु जित्तइ कोणु समत्थु फले ॥८८॥

तइ अति सतायउ लोगु घणा, हव देखहु पौरिषु मुज्झ तणा ।
करि राडउ लंब विहुंड अखी, तर जेमउ पाडउ मूढ जडी ॥८९॥

सुणि इत्तउ कोपिउ लोभु मने, सब झूठु उठायउ वेगि तिने ।
सा आयउ सूरु उठाइ करी, सतिराइहि छेदिउ तासु सिरो ॥९०॥

तव मीढउ लीयउ मानि भडे, उठि चल्लिउ संमुह गज्जि गुडे ।
थलु कीयउ महवि अप्पु घणा, खुर खोजु गवायउ तासु तणा ॥९१॥

इम कुक्कउ छोहु सुजोडि अणी, मनि संक न मानइ और तणी ।
तब उट्ठि महाव्रत लग्गु बले, खिण मज्झि सु घाल्यौ छोहु दले ॥९२॥
भडु उट्ठिउ मोहु प्रचंडु गजे, वलु पौरिष अप्पणु सेनु सजे ।
तब देखि विवेक चढ्या अटलं, दहु वट्ट किया सुद्ध भज्जि वलं ॥९३॥

वहु माय महाकरि रूप चली, महु अग्गइ सूरउ कवणु वली ।
कुविक पौरषु अज्जवि चोरि किया, तिसु जोति जयप्पतु वेगि लिया ॥९४॥

जव माय पडी रण मज्झि खले, तब आइय कंक गजंति यले ।
तव उट्ठि खिमा जव धाउ दिया, तिनि वेगिहि प्राणनि नासु किया ॥९५॥

अथ ज्ञानु चल्या उठि घोर मतै, तिसु लोचन आइया कंपि चिते ।
उहु आवत हाक्या शानि जवं, गय प्राण पढ्या धर धूमि तवं ॥९६॥

मिथ्यातु सदा तहि जीय रिपो, रुद रूपि चढ्या सुदसज्जि अपो ।
समकतु उड्या उठि जोडि अणी, धरि धूलि मिल्या दिय चूर घणी ॥९७॥

कम्म अट्ठसि सज्जि चडे विषमं, जगु छायउ अंवरु रेणु भयं ।
तपु भानु प्रगासिउ जाम दिसे, गय पाटि दिगंतरि मज्झि धुसे ॥९८॥

जगु व्यापि रह्या सबु आसरयं, तिनि पौरिषु धीठिइता करयं ।
जब संवरु गज्जिउ घोरि घटं, उहु झाडि पिछोडि किया दवटं ॥९९॥

रसि रागिहि धुत्तउ लोउ सह्रो, रण अंगणि लग्गउ मडि गह्रो ।
वयरागु सुधायउ सज्जि करे, इम जुज्झि विडाड्यो दुहु अरे ॥१००॥

यहु दोसु जु छिव गहंति परं, रण अंगणि कुक्क उडाहि सिरं ।
उठि ध्यानिय मुक्किय अग्गि घणं, खिण मज्झ जलायउ दोसु तिणं ॥१०१॥

कुमतिहि कुमारगि सयनु नखधा, गय जेउ गजंतउ आइ जुडया ।
खिण मत्तु परकंय लिउ परे, तिसु हाकसु णंत पयट्ठु धरे ॥१०२॥

परजीय कुसील जु कद्दु करैं, रण मज्झि भिडंतु न संक धरैं।
धमवत्तु समीरणु धाइ लगं, कुरविंद जि बागय पाटि दिगं ॥१०३॥

दुखहु'तजिहु गय देण सजो, साहजु दिउ आइ निसंक भजो।
परमा सुलु भायउ पूरि घटं, उद्दु भाडि पिछोडि कियाइवटं ॥१०४॥

बहु जुज्झिय सूर पचारि घणे, बहु दीसहि लुटत मज्झि रणे।
किय दिनु रसातलि वीरवरा, किय तज्जि गए बहु मुक्कि धरा ॥१०५॥

राजा संतोष का आक्रमण—

मन दंसण कंद रहंतु जहा, इकि भज्जि पइट्ठिय जाइ तहा।
यहु पेंतु संतोषहु राइ चडया, दलु दिट्ठु उ लोभिहि सेंनु पडया ॥१०६॥

रड

लोभि दिठ्ठउ पडिउ दलु जाम,
तब धुणियउ सीसु कर घ'स खेलु सुज्झिइ न लग्गइ।
जणु घेरिउ लहरि विषु, कच कचाइ उठि धाइ लग्गइ॥
करइ सु अकरणु आकलउ, किपिन बुज्झइ घट्ठ।
जेव चणाउ भ्रसि उछलइ, तकि भड भंनइ मट्ठ॥१०७॥

गाथा

रोसा इणु थर हुरियं, धरियं मन मझि रुद्द तिनि ध्यानो।
मुक्कइ चित्ति न मानो, अज्ञानो लोभु गज्जेइ॥१०८॥

रंगिक्का छंदु

लोभु उठिउ अपणु गज्जि, मंडिउ बलुनि लाजि।
चडिउ दुमहु साजि रोसिहि भरे, सिरि लगिउ कपटु छतु॥
विषय खडगु कितु, छदमु फरियलितु।
संमुहु धरे गुण दसमेंह ठाणु लगु॥
जाइ रोकयो सूर मगु।
देह महुड पसगु जगत अरे।
ऐंसे चडिउ लोभ विकटु, धूतइ धूरत नटु।
संतवइ प्राणहु षटु पौरिपु करि॥१०९॥

खिणु उठइ अणिय जुडि, पिणिहि चालइ मुडि।
खिणु गयजेव गुडि लागइ उठे, खिणु रहइ गगनु छाइ॥

खिणिह पयालि आइ, खिणि मचलोइ आइ ।
फउइ हठे थाकै चरत न जाणैं कोइ व्यापैइ सकल लोइ ।
अनेक रूपिहि होइ. जाइ संचरै ॥
अैसे चडिउ लोभ विकटु धूतइ धुरत नटु ।
संतवइ प्राणह घटु पौरिषु करै ॥११०॥
जिनि संमि जिय लिवलाइ घाले ततबुधि खाइ ।
राखे ए वडहु काइ, देखत नडे ।
यहु दीसइ ज परवथु, देसु सैनु राजु गथु ।
जाण्या करि आप तथु लालचि पडे ॥
जाकी लहरि अनंत परि, घोरह सागर सरि ।
सकइ कवणु तरि ।
हियउध, अैसे चडिउ, लोभ विकटु, धूतउ धूरत नटु ।
संतवैइ प्राणह घटु पौरिषु करि ॥१११॥
जैसी कणिय पावक होइ, तिसहि न आणइ कोइ ।
पडि तिण संगि होइ, कि कि न करै ।
तिसु तणिय विविहिरंग, कौणु जाणै केते ढंग ।
आगम लंग विलंग खिणि हि फिरै ।
वहु अनतप सारैं जाल, कर इक लोल पलाल ।
मूल पेड पत्त डाल, देइ उदरै ।
अैसे चडिउ लोभ विकटु, धूतइ धूरत नटु ।
संतवैइ प्राणह घटु पौरिषु करि ॥११२॥

षट्पदु

लोभ विकटु करि कपटु अमिटु, रोसाइणु चडियउ ।
लपटि दवटि नटि कुघटि झपटि झटि इव जगु नडियउ ॥
धरणि खंडि ब्रह्मंडि गगनि पयालिहि धावइ ।
मीन कुरंग पतंग भ्रिग, मातंग संतावइ ॥
जो इंद मुणिंद फणिंद सुरचंद सूर संमुह अडइ ।
ऊहु लडइ मुडइ खिणु गडवडइ, खिणु सुजट्ठि समुह जुडइ ॥११३॥

अडिल्ल

जब सुलोभि इत्तउ बलु कीयउ,
अधिकु कष्टु तिन्ह जीयहु दीयउ ।

सव जिणउ नमतु लै चिति गज्जिउ,
राउ संतोषु इनहू परि सज्जिउ ॥११४॥

रंगिका छंदु

इव साजिउ संतोष राउ, हुवउ धम्म सहाउ,
उठिउ मनिहि भाउ आनंदु भयं ।
गुण उत्तिम मिलिउ मागु, हूवउ जोग पहागु,
भायउ सुकल झागु, तिमरु गयं ॥
जोति दिपइ केवल कल, मिटिय पटल मल,
हृदय कमल दल खिल्लियत दे ।
ऐसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति,
छेदिय लोभहू थिति चडिउ पदे ॥११५॥

तनिक पचु संजमु धारि, सतु दहू परकारि,
तेरहू विधि सहारि, चारितु लियं ।
तपु द्वादस भेदहू जाणि, आपणु अंगिहि आणि,
बैठउ गुणहू ठाणि, उदोतु कियं ॥
तम कुमतु गइउ नूसि, धौलिउ जगतु जसि,
जैसेउ पुन्निउ ससि, निसि सरदे ।
ऐसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति,
छेदिय लोभहू थिति, चडिउ पदे ॥११६॥

जिन बंधिय सकल दुट्ठ, परम पापनिघट्ठ,
करत जीयहू कंठ, रयणि दिणो ।
जगि हो तिय जिन्हहि प्राण, देतिय नर्मुति जाण,
नरय तणिय ठाण, भोगत घणे ॥
उइ आवत नरीहि जेइ, खडगु समुहू लेइ,
सुपनिन दीसे तेइ अवरु के दे ।
ऐसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति,
छेदिय लोभहि थिति, चडिउ पदे ॥११७॥

लोभ पर विजय—

देव दुंदही वाजिय घण, सुर मुनि गहगण,
मिलिय भविकजण, ढुंवर लियं ।

अंग ग्यारह चौदह पुब्ब, विचारे प्रगट सब्ब,
मिथ्याती सुणत गब्ब, मनि गलिमं ।
जिसु वाणिय सकल पिय, षितिहि हरषु किय,
संतोषे उतिम जिय, धरमु बवे ।
अैसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति ।
छंडिय लोभह थिति, [illegible] ॥११८॥

षट्पदु

चडिउ सुपदि गोइमु लवधि तप बलि मति गज्जिउ ।
उदउ हुवइ सासणि हि सयनु आगमु मतु सज्जिउ ।।
हिंसारहि हय वरतु सुभटु चारितु बलि जुट्टिउ ।
हाकि विमल मति बाणि कुमत दल वरहि दवट्टिउ ।।
बंधिउ प्रचंडु दुद्धरु सुमनु जिनि जगु सगलउ धुत्तियउ ।
जय तिलउ मिलिउ संतोष कहु, लोभहु सहु इव जित्तियउ ।।११९।।

गाथा

जब जित्त दुसहु लोहु, कीयउ तब चित्त मभि आनंदे ।
हुव निकंट रज्जो गह गहियउ राउ संतोषु ।।१२०।।
संतोषुह जय तिलउ जंपिउ, हिसार नयर संभ मे ।
जे सुणहि भविय इक्क मनि, ते पावहि बंछिय सुक्ख ।।१२१।।
संवति पनरह इक्याणु, भद्दवि सिय पक्खि पंचमी दिवसे ।
सुक्कवारि स्वाति बृषे, जेउ तह जाणि बंभ णामेण ।।१२२।।

रड

पढहि जे के सुद्ध भाएहि,
जे सिक्खहि सुद्ध लिखाव, सुद्ध ध्यानि जे सुणहि मनु धरि ।
ते उतिम नारि नर अमर सुक्ख भोगवहि बहुपरि ।।
यहु संतोषह जयतिलउ जंपिउ वल्हि सभाइ ।
मंगलु चौविह संघ कहु, करइ वीर जिणराइ ।।१२३।।

इति संतोष जयतिलकु समाप्ता ।।५।।

□ □ □

३

नेमीश्वर का बारहमासा

राग वडहंसु

सावन मास—

ए रुति सावणी सावणि नेमि जिण गवणो न कीजै वे ।
सुणि सारंग भाय दुसह तनु खिण खिण छीजै वे ।
छीजंति बाढ़ी विरह व्यापित घुरइ घण मइ मंतिया ।
सालूर सरि रव रडहि निसि भरि रयणि विज्जु खिवंतिया ।
सुर गोपि मह सुह वसुह मंडिल मोर कुहकहि वणि वणि ।
विनवंति राजुल सुणहु नेमि जिण गवउ ना करु सावणे ।।१।।

भाद्रपद मास—

ए भरि भाद्रवड़ै भादवि मारग जलहरे छाए वे ।
कोइ परभूए परमुहं पंथी हरि न जु लाये वे ।
नहु जु लाइ को पर भूमि पंथी किसु सनेहा जंप वे ।
सरपंच तनि मनमथ बीरुद्धिय कर लजिइ निसि कंपवो ।
वग चडिय तर सिरि देख पावस मनि अनन्दु उपाइया ।
घरि आउ नेमि जिण चडिउ भाद्रउ मग्ग जलहर छाइया ।।२।।

आसोज मास—

ससि सोहाए सोहै ससिहरु आसूवा मासे वे ।
जल निरमल निरमल जलसरि कवल वेगासे वे ।
विगसंति सरि सरि कवल कोमल भवर रुणु झुणकार है ।
मयमंतु मनमथु तनि विआपइ किमसु चित्त सहार हे ।
देखन्ति सेज अकेलि कामिणि मखहु नहु बोलै हसे ।
घरि आउ नेमि जिणंद स्वामी आसूवै सोहै ससि ।।३।।

कातिक मास—

इनु कातेगे कातिग आगमु को साडा पालै वे ।
चढि मंडपे मंडपि राजुल मग्गो मेहोलै वे ।

मग्गो निहाली देखि राजुल नयरा दह दिसि धावए ।
सर रसहि सारस रयरिंग भिन्नि दुसहु बिरहु जगवए ।
कि वरहज तुव विणु पेम लुद्धिय तरुणि जोवणि बालए ।
वाहुडहु नेमि जिण चन्निउ कातिगु किमउ आगमु पालेए ।।४।।

मार्गशीर्ष मास :—

ए इतु मंघेरे मंधिरियहु जीउ तरसए मेरा वे ।
तुझ कारणे कारणि महु तनु तप ए घणेरा वे ।
तनु तपइ तिन्हु सुरि जनहु कारणि जीउ जिणु गुणि लीणवो ।
जिसु श्रास अधिक उसास मेलउ रहइ चितु उडीणवो ।
संभलहि सभितिय कै पियारे देखियहु उग्गिम रितो ।
तरसंति महु मनु नेमि तुव विणु मंगि मंगिहुरिहु रितो ।।५।।

पोस मास—

ए इतु पोहे हे पोहे सीउ सतावए वाली वे ।
नव पल्लव पल्लव नवयण सो परजाली वे ।
परजालि नववण रच्यौ सकोइय,पडइ हिमु श्राति दारणो ।
वर खणि ते मनि किवसु धीरउ जिन्हु न सेज सहारणो ।
अथ दीहु रयणि सतुछ वासुर कियर बिरहु दविखणे ।
नेमिनाथ आउ सभालि को गुण सीउ पोहेहि श्रतिघणो ।।६।।

माघ मास—

ए इतु माघे हि माघिहि नेमि दया करे आऊ वे ।
तनि मंगल मंमल जेउ घुरे श्रसु राऊ वे ।
श्रणरउ मइगल जेव गज्जइ कुलहु श्रंक सिरक्खणो ।
श्रगाह दुसही विरह वेयण तोहि विणु किसु अक्खणो ।
क्या सवरि अवगुरगु तइ विसारी लिखिन भूज पठावहो ।
कर दया नेमि जिणंद स्वामी माघि इव घरि आवहो ।।७।।

फाल्गुण मास :—

ए यहु फागुणो फागुणु निरगुणु माहो पियारे वे ।
जिनि तरवरे तरवर भाणि कीए खइ खारेवे ।
खइ खारढोल्लर किए तरवर पवणु महियलि भोलइ ।
उरि लाइ कर निसि गणउ तारे निद नहु आवइ खिणो ।
घरि आउ नेमि जिणंद स्वामी चढिउ फागुणु निरगुणो ।।८।।

चैत्र मास—

एइतु चैतेहे चैतिहि नव मोरी वणराए वे ।
नव कलियहो कलियहि भवर भणविकयडे भ्राए वे ।
घइ भवर नव कलियहि भणवके नवइ पल्लव न तरे ।
नव चूव मंजरि पिकय लुडिय करहि श्रुति पंचम सरे ।
फुल्लियउ मलय सुगंध परमलु दक्खिणिहि पिय सवरिय ।
दरसाइ दरसणु नेमि स्वामी चैत्ति नव नर मौलिया ।।९।।

वशाख मास—

ए यहु आइयडा श्रब दुसहु सखी वइसाखो वे ।
अइवइ सेवा हसिजाइ सनेहडा भाखोषे ।
भाखो सनेहा जाइ वाइस श्रन्नु नीरु न भावए ।
दुइ नयण पावस करहि निसिदिनु चितु भरि भरि श्राव ए ।
फुट्टउ न जं वल्लभ वियोगिहि हिया दुक्खि वज्जहि घडया ।
वइसाखु तुव विणु सुणहु सखिए दुसहु श्रति शारणु चडया ।।१०।।

जेठ मास—

एइतु जेठेहे जेठिहि लूव श्रनल भल वावेवे ।
दिनि दिनकरो दिनकरु दिवसि रयणि ससेतावेवे ।
ससि तवइ निसि परजलइ दिन रवि नीरु सरि सुक्कियघणं ।
तडयडइ सर तडफडइ जलचर मिलिय अहि वंदण वणं ।
चच्चउ सिहं दुरु पूरहि मजलु श्रगु श्रधिकु दहावए ।
विललंति राजुलि फिरहु नेमि जिए लूव जेठिहि वावए ।।११।।

आषाढ मास—

एइतु षाढेहे षाढिहि नेमि न आईयडा प्यारा वे ।
मनु लागाडा लागा मनुवइ रोग हमारा वे ।
मनु लाइ इव वइरागि रजमति लियउ संजमु तंखिये ।
अष्टो भवलंर नेहु निरजरि सहइ नव तेरह तणे ।
तिसु तरुणि काला गाउ माहा सिद्धि जिनिवर माइया ।
आषाढ चडिया भणइ वूचा नेमि प्रजउ न आईया ।।१२।।

।। इति बारहमासा समाप्ता ।।[1]

□ □ □

---

१. गुटका-दि० जैन मन्दिर नागदी बूंदी ।

४

चेतन पुद्गल धमाल

प्रस्तुत धमाल की पाण्डुलिपि दि० जैन मन्दिर नागदी, बूंदी के उसी गुटके में है जिसमें बूचराज के अन्य पाठों का संग्रह है। यह धमाल पत्र संख्या २८ से ४४ तक है। इसके लिपिकर्त्ता पांडे देवदासु हैं। लिपि सुन्दर एवं शुद्ध है। धमाल की पाण्डुलिपियां कामां एवं अजमेर के भट्टारकीय भण्डार में भी है लेकिन वे उपलब्ध नहीं हो सकी इसलिए बूंदी वाली प्रति के आधार पर ही यहां पाठ दिया जा रहा है।

रागु दीपगु

मंगलाचरण—

जिनि दीपगु घटि ग्यानु करि, रज दीठ्ठी दश चारि।
कवि 'बल्हु पति' सुस्वामि के, सावउ चलण सिरु धारि ॥१॥

दीपगु इकु सरवन्नि जगि, जिनि दीपा संसारि।
जासु उदइ सहु भागिया, मिथ्या तिमर अध्यारु ॥२॥

'जिण सासण' महि दीवडा, बल्हु पया नवकार।
जासु पसाए तुम्हि तिरहु, सागरु यहु संसारु ॥३॥

भवियहु 'अरहंतु' दीवडा, कै दीपगु सिद्धन्तु।
कै दीपगु 'निरग्रंथ' गुरु, जिस गुणि लहिउ न अंतु ॥४॥

जैन धम्मु जिनि उद्धरया, कुगला धम्मु निवारि।
सो रिसहेसरु पणवियइ, तारै भव संसारि ॥५॥

चेयन गुणवंत जडस्यो, संगु न कीजै।
जड गलइरु पूरइ, तिस तिव दुख सहीजै ॥६॥

जड संगु दुहेला, जिस भमिया संसारो।
जिनि ममता छोडी, तिन पाया भवपारु ॥७॥

जित ससरायह तणा, मलिया मयण हसेउ ।
'अजितनाथ' पय पणमिमहि भावइ कमह छेउ ।।८।।

चेयन सुगु निरगुण जड, सिउ संगति कीजइ ।
इसु जड परसादिहि, मोखह सुखु बिलसीजै ।।९।।

जड सहइ परीसह काटै करमह भागे ।
जिसु जड न सरवाई, तिसु उरवार न पारो ।।१०।।

तनु साध्या मोखिहि गया, कीया करमह अंत ।
'संभव स्वामी' अंचियै, जिन्ह आराधि अनंतु ।।
चेयण गुणवंता जडाबो संगु न कीजै ।।११।।

कोगति तरि सिवपुरि गया, तरि सायर अथाहु ।
सोहउ ध्याऊ हियइ धरि, 'अभिनन्दनु' जिणनाहु ।।
चेयण सुगु निरगुण जड सिउ संगति कीजइ ।।१२।।

चहुसै धुणह पमाणु तनु, मेघरायह घरि चंदु ।
नामु लित पालिग छूडहि, वंदहु 'सुमति' जिणंद ।। चेयण गुण० ।।१३।।

चारितु धरि मोखिहि गया, माया मोहु निवारि ।
'पदमपह' जिण पद कवल, नमउ सदा सिरधारि ।। चेयण सुण० ।।१४।।

जिसु मुखु दीठे भवणा, तूटै करमह फासु ।
सो वंदहु तारण तरण, स्वामी देउ 'सुपासु' ।। चेयण गुण० ।।१५।।

जिसु लछंणि ससिहरु, 'अहइ राय' महसेणह तनु ।
चंद्रपहु जिणु आठमा, संध सयल सुपसन्नु ।। चेयण सुण० ।।१६।।

चौदह रजु सहु लोउ, जिन दीठा घटि अवलोइ ।
"पुहपि जिणेसरु" पणमियइ, पुनरपि जनमु न होइ ।। चेयण गुण० ।।१७।।

राइ खिलह तनु कुलि कवलु, मुकति रिउरि हारु ।
"सियल जिणेसरु" ध्याईयै, वंछित सुख दातारु ।। चेयण सुण० ।।१८।।

अस्सी धुणह पमाणु तनु, कंचणु वन्नु सरीरु ।
हउ पणउ "श्रीयांस जिणु", स्वामी गुणिहि गहीरु ।। चेयण गुण० ।।१९।।

"वसुसेणह" घरि अवतारया, छेद्या जिन भव कंदु ।
"वासुपुज" जिणु वंदियइ, जिसु वंदइ सुर इंदु ।। चेयण सुण० ।।२०।।

सहिय परीसह मोखिहि गया, मयण महाभड मोडि ।
"विमल जिणेसरु" 'विमलमति', हउ पणउ कर जोडि ।। चेयण गुण० ।।२१।।

आठ कम्म जिनि निरजरे, चितुवइ रागि धरेइ ।
अन करगु "श्री अनंत जिगु", भवियह वंछित देइ ।। चेयण सुगु० ।।२२।।

संवरु करि जो गुण पछ्या, भलिया मयगह मानु ।
"धम्मनाथ" धम्मह तिलउ, हौ पणवउ धरि ध्यानु ।। चेयण गुण० ।।२३।।

गढि हथिनापुरि अवतरचा, दिपइ अंगु कगकंति ।
सो संघह मंगलु करइ, "संति करगु जिगु" संति ।। चेयण सुगु० ।।२४।।

जासु धनुष पय तीस तनु, कुखि श्रीमति अवतारु ।
सो तुम्ह पापहि खिउ करइ, सवरहु "कुंथु" कुवारो ।। चेयण गुण० ।।२५।।

जो राम्ना सिव रणिमिउं, सव्वह कम्म निछेइ ।
आरति भंजगु "अरह जिगु", अजिय सु पदु हम देइ ।। चेयण सुगु० ।।२६।।

कुंभ नरिंदह राइ तनु, मिथलापुरि अवतारु ।
"मल्लि जिणेसरु" पणविपइ, आवागवगु निवारो ।। चेयण गुण० ।।२७।।

राजगिरिहि गढि अवतरचा, सोहइ कज्जल वन्नु ।
"मुणि सुव्वउ जिगु" वीसमा, संघ सयल सुपसंनो ।। चेयण सुगु० ।।२८।।

जिसुका नाउ जपंति यहं, छीजइ कम्म कलेसु ।
विजयराइ घरि अवतरचा, सवरहु "नमि सु जिणेसो" ।। चेयण गुण० ।।२९।।

चल्या सु नव भव नेहु, तजि पसु वचन सु विचारि ।
वंदहु स्वामी "नेमि जिगु", जो सीझइ गिरनारि ।। चेयण सुगु० ।।३०।।

आव भोगि जिन सउ वरिस, कीया मुकति सिउ साथु ।
सकल सूरति ह्उ वंदिसिउ, स्वामी "पारसनाथ" ।। चेयण गुण० ।।३१।।

करि करुणा सुगु वीनती, तिभुवण तारण देव ।
"वीर जिणेसर" देहि मुझ, जनमि जनमि पद सेव ।। चेयण सुगु० ।।३२।।

अरहंत सिद्धह चारअह, मउ अवझा पणमेहि ।
सव्वे साहु जे नमहि, ते संसार तरेहि ।। चेयण सुगु० ।।३३।।

पंच प्रमिष्ठी 'वल्ह कवि' ए पणमी धरि भाउ ।
चेतन पुद्गल दहुक, सावु बिबाउ सुणावो ।। चेयण सुगु० ।।३४।।

यह जड खिणिहि बिधंसिणी, ता सिउ संगु निवारु ।
चेतन सेती विरति करु, जिउ पावहि भव पारो ।। चेयण गुण० ।।३५।।

वारु वारु तुम्ह सिउ कहउ, किता कु पूछहि ऊड ।
जिसु जड ते तूं गुणि चल्या, तासि पिरतिम तोडि ।। चेयण सुगु० ।।३६।।

बहुली जूनिहु खाइ करि, ले नरकहु महि देइ ।
ऐसी जड़ मइ मीत सूणि, मूढ़ु विसासु करेइ ॥ चेयण गुण० ॥३७॥

सहीइ परीसह बीसदुइ, काटै करमहु भाइ ।
तिसु सिउ मूढ नविरचीयै, तारै भव संसारु ॥ चेयण गुण० ॥३८॥

जिनि कारि जाणी आपणी, निश्चै बूडा सोइ ।
खीरु[1] पड्या विसहरि मुखे तातै क्या फलु होइ ॥ चेयण गुण० ॥३९॥

चेतनु चेतनि चालइ, कहुउत मानै रोसु ।
आपे बोलत सो फिरै, जड़हि लगावइ दोसु ॥ चेयण गुण० ॥४०॥

जेरूपतीना हेतु करि, सिद्धूवा गहि रे घाट ।
कांजी पड़िया दूध महि, हूवा सु बारहु वाट ॥ चेयण गुण० ॥४१॥

छहु रस भोयण विविहि परि, जो जड़ नित सींचेइ ।
इंदी होवहि पखबडी, तउ पर धम्मु चलेइ ॥ चेयण गुण० ॥४२॥

सुणहु पियारे बोलती, देखहु चिति अवलोइ ।
बीजु जु कलिरि बीजीयै, तातै क्या फलु होइ ॥ चेयण गुण० ॥४३॥

चौबीस परिग्रहु पर तजै, पंद्रहु जोग धरेइ ।
जड़ परसादिहि गुणि चडै, सिव पुरि सुख भुगाए ॥ चेयण गुण० ॥४४॥

इसु जड़ तणा विसासु करि, जो मन भया निसंकु ।
काले[2] पासि बइट्ठियइ, निश्चै चडइ कलंकु ॥ चेयण गुण० ॥४५॥

खाजै पीजै विलसियइ, फुरइत दीजै दानु ।
यहु लाहा संसार का, भावै जाणु न जाणो ॥ चेयण गुण० ॥४६॥

मूरखु मूलु न चेतई, लाहै रह्या लुभाइ ।
अंधा बाटै जेवड़ी, पाछइ वाछा खाइ ॥ चेयण गुण० ॥४७॥

पखवन्ना पाले सदा, उत्तिम यहु परवाणु ।
अंकरि जा विसु संग्रही, तौ वन छूटै जाणु ॥ चेयण गुण० ॥४८॥

इसै भरोसै जे रहे, चेतै नाही जागि ।
डूबे ताकु बापुडे, भेजहु पूछडि लागि ॥ चेयण गुण० ॥४९॥

---

१. दूध ।
२. कोयला ।

पंचै इंदी दंडि करि, आपा आपुणु जोइ।
जिउ पावहि निरवाण पदु, चौदह जनमुन होइ ॥ चेयण सुणु० ॥५०॥

क्या जे इंदी वसि कीई, क्या साध्या अप्पाणु।
इकु परमपु न जाणिया, किउ पावै निरवाणु ॥ चेयण गुण० ॥५१॥

बिणु करमहु काटे आपणे जो नर को सीझेइ।
ता कि सेणकु नरक महि, अजहु दुख भूचेए ॥ चेयण सुणु० ॥५२॥

क्या जे सेणकु नरक महि, बहु बहु दुख भूचंतु।
भव्व जीयहमहि सो गण्या, निहचै हुव सीझंतो ॥ चेयण गुण० ॥५३॥

काया राखहु जतनु करि, चडहु जेंव गुण ठाणि।
बिणु मणुष जम्महो भविपणहु, गया न को निरवाणि ॥ चेयण सुणु० ॥५४॥

हूरंतु परतु दोनउ गया, नाउर वाह न पाइ।
जिनकरि जाणी आपणी, से डूबे काली धार ॥ चेयण गुण० ॥५५॥

जिउ वैसंदरु कटु महि, तिल महि तेलु भिजेउ।
आदि अनादि हि जाणियै, चेतन पुद्गल एव ॥ चेयण सुणु० ॥५६॥

तेहि वैसंदरु कटु तजि, तेहि तेल खलि राडि।
चेतहि चेतनु मेलियै, पुदगलु परहर आलि ॥ चेयण गुण० ॥५७॥

बालत्तण की बालही, गुणहि न पूजै कोई।
सा काया किव निंदियै, जिसहु परम पदु होइ ॥ चेयण सुणु० ॥५८॥

काया कर जलु अंजुली, जतनु करंतिहि जाइ।
उत्तिमु थिरता नित रहै, मूरिखु इमु पतियाए ॥ चेयण गुण० ॥५९॥

मनका हठु सभु कोइ करइ, चितु असि करइ न कोइ।
चढि सिखर हु जब लडहुई, तबह विगुचणि होइ ॥ चेयण सुणु० ॥६०॥

सिखर हु मूलि न खबहुई, जिणु सासण आधारु।
सूलि ऊपरि सीझिया, चोरि जपना नवकारु ॥ चेयण गुण० ॥६१॥

जइ साधण परिणाम उद, कालमि उइ थावीर।
इव साध फिरहि महि डोलते, तदि सीझै थे चोर ॥ चेयण सुणु० ॥६२॥

साधु न डोलइ मूलि हरि, जिसु महि ज्ञानु रतन्नु।
तेरह विधि चारितु धरै, पुद्गल जाणइ भन्नु ॥ चेयण गुण० ॥६३॥

पुद्गलु भन्नु न जाणियहु, देखहु मनि विवपाइ।
किरिया संजमु ता चलै, जा पुद्गल होइ सखाए ॥ चेयण सुणु० ॥६४॥

जिण पूजा सम्मत्त गुरु, साहामी सिउ नेहु ।
इन्ह सेवंतिहि सीजीयै, नाही अचिरजु एहु ।। चेयण गुण० ।।६५।।
जिसु संगि रुलंतह जम्मु गया, एको सुखु नहु लाधु ।
लोभी जीउ पतंग जिउ, फिर फिर मूरख दाधो ।। चेयण गुण० ।।६६।।
डाइणि मंतु अफीम रसु, सिखिन छोडण जाइ ।
को को कवणु न मोहिया, काया डवली लाइ ।। चेयण गुण० ।।६७।।
जो जो डवली लाइया, सोडविया गमारु ।
खांधु पिटारैं पालिया, तिनिक्या कीया उपगारो ।। चेयण गुण० ।।६८।।
जोखिणु काया वसि करहि, इंदी रहणु न जाइ ।
तजि तपु संसारिहि रुलहि, पाछैं लोक हसाए ।। चेयण गुण० ।।६९।।
से तप तिहि कहु किव सलहि, जिन्हि जीत्या संसारु ।
सत्तु मित्तु सम करि जाणिया, साध्या संजम भारो ।। चेयण गुण० ।।७०।।
पहिला आपणु देख कसि, लेहि संजमु भारु ।
जे ता देखहि ओढणा, तेता पाव पसारो ।। चेयण गुण० ।।७१।।
भला करंतिहि मीत सुणि, जे हुइ बुरहा जाणि ।
तौ भी भला न छोडियैं, उत्तमु यहु परमाणु ।। चेयण गुण० ।।७२।।
भला भला सहु को कहै, मरमु न जाणैं कोइ ।
काया खोई मीतरे, भला न किसही होए ।। चेयण गुण० ।।७३।।
हाडह केरा पंजरी, धरिया चम्मिहि छाइ ।
यहु नरकिहि सो पूरिया, मूरिख रहिउ लुभाए ।। चेयण गुण० ।।७४।।
जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरहु छांहु कराइ ।
तिउ इसु काया संगले, जीयडा मोखिहि जाए ।। चेयण गुण० ।।७५।।
काया नीचु कुसंगडा, वैसदर सरि जोइ ।
ताता पकडै जलिमरै, सीलइ काला होइ ।। चेयण गुण० ।।७६।।
जिसु विणु खिणु इकु ना सरै, भाव लियैं जिसु लागि ।
जे घर पुर पट्टण दहै, ता धरि कीजइ आगि ।। चेयण गुण० ।।७७।।
काइ सराहहि चेनहि, पुद्गलु वालहि राखि ।
खेतु बिसो अविणा सरु, जिसुकी सगली वाडी ।। चेयण गुण० ।।७८।।
वेस्वानेहु कसुंभरगु, अर जल उप्परि कार ।
इसासु पुद्गल मीत सुणि, विहडत होइ न वार ।। चेयण गुण० ।।७९।।

जिउ ससि मंडणु रयणिका, दिनका मंडणु भाणु ।
तिम चेतन का मंडणा, यहु पुदगलु तूं जाणि ॥ चेयण सुणु० ॥८०॥

इसु काया कै संगते, यहु जीउ पडइ जंजालि ।
हुई कचोला नीर कहु, कूटी जै घडियालि ॥ चेयण सुणु० ॥८१॥

जल कहु निवइ जीयडा, पुदगलु वालइ राडि ।
सेतु भिसो प्रविणा सरु, जिसुकी समती बाढि ॥ चेयण सुणु० ॥८२॥

काय कलेवरु बीस सुहु, जतनु करंतिहि जाइ ।
जिंव जिंव पाचे तु'बडी, तिव तिव प्रति कडवाइ ॥ चेयण सुणु० ॥८३॥

जो परमलु हुई कुसम महि, सो किव कीजै अंगि ।
पुदगल जीउ सलगनु तिव, इव भास्या................॥ चेयण सुणु० ॥८४॥

फूलु मरइ परमलु जीवइ, तिसु जाणै सहु कोई ।
हंसु चलइ काया रहइ, किवरु बराबरि होइ ॥ चेयण सुणु० ॥८५॥

कहा सकति सिव बाहुरी, सकति बिनसिउ काई ।
पुद्गलु जीउ सलगनु तिव, वासु दुइ इकठाए ॥ चेयण सुणु० ॥८६॥

काया संगिहि जीयडा, राख्या करमिहि बंधि ।
पछ्या कपुरु जुल्हे सणमहि, गयवर बत्तणु गंधि ॥ चेयण सुणु० ॥८७॥

इस काया कै संगते, जाण्या त्तत्तिम धम्मु ।
गुरख सा किव निंदियै, किया सफलु जिनि जम्मु ॥ चेयण सुणु० ॥८८॥

कुंजर कुंथू आदि दे, अंसे पुद्गलि लीय ।
सगति तै नहु बंधिए, जहा सुखी होइ जीय ॥ चेयण सुणु० ॥८९॥

काया तारइ जीय कहु, सतु संजमु व्रत धार ।
जिउ बेडी सगि उसरै, सउमणु लोहा पारि ॥ चेयण सुणु० ॥९०॥

जइ वेणी पोहुण तणी, इसा जाणि जिय चेतु ।
कोन तिरंता दीठु मइ, करि काया सु हेतु ॥ चेयण सुण० ॥९१॥

काया की निंदा करहि, आपुन देखहि जोइ ।
जिउ जिउ भीजइ कांवली, तिउ तिउ भारी होइ ॥ चेयण सुणु० ॥९२॥

इसी भरोसे जे रहे, चेते नाही जागि ।
फूटे ताट बापुडे, भेडहु पूछड लागि[1] ॥ चेयण सुणु० ॥९३॥

---

१. यहु पद्य पहिले ४६ संख्या पर भी आ गया है ।

तेतीस सागर वरष सुर, जिसु पसाइ सुख दीठ ।
तिसु जड सिउ इव राचियइ, जिउ कापडइ मजीठ ।। चेयण सुण० ।।९४।।

तेतीस सागर दुख नरक महि, ते भी चिति चितारि ।
इसु काया के एह गुण, रे जीम देखु सुहियइ विचारि ।। चेयण गुण० ।।९५।।

तेतीस कोडा कोडि कम, पोतै मोह निहाणु ।
ते सहि काटै तपु सहै, काया यहु परवाणु ।। चेयण सुण० ।।९६।।

काया कहु मुकलाइ करि, रह्या निचिंता सोइ ।
ते तपु डूबे लेइ करि, भजहू फिरहि निगोए ।। चेयण गुण० ।।९७।।

जिय विणु पुद्गल ना रहै, कहिया आदि अनादि ।
छह खंड भोगै चक्कवै, काया कै परसादि ।। चेयण सुण० ।।९८।।

देव नरय तिर्यंचन महि, अरु माणस गति चारि ।
जिसुका घाल्या तूं फिर्या, तिस सिउ हौस निवारि ।। चेयण गुण० ।।९९।।

तुझ कारणि वहु दुख सहै, इनि काया गुणवंति ।
चेतन ए उपगार तुझ, छोडि चला इसु प्रीति ।। चेयण सुण० ।।१००।।

कासु पुकारउ किसु कहउ, हीयडे भीतरि डाहु ।
जे गुण होवहि गोरडी, तउव न छाडै ताहु ।। चेयण गुण० ।।१०१।।

मानु महतु लोगी कुजसु, अरु वडि माकलि माहि ।
पंच रतन जिसु संगते, चेतन तू रुलह्याहि ।। चेयण सुण० ।।१०२।।

भला कहावै जगु मुसे सै, मगलु करे नट जेउ ।
जड कै संगिहि दिठु मैं, घणा मूर्खता एव ।। चेयण गुण० ।।१०३।।

माणिकु भीता अति भला, जा कंचणु तुम्ह पाहि ।
ता लगु सोभा चेतनहि, जा लगु पुद्गल माहि ।। चेयण सुण० ।।१०४।।

यहुनि कलमलु जीवडा, मुकति सरूपी आथि ।
आपा आपु विटंबिया, इसु काया कै साथि ।। चेयण गुण० ।।१०५।।

मोती उपना सीप महि, विछिमा पावै सोइ ।
तिउ जिउ काया संगते, सिउपरि वासा होइ ।। चेयण सुण० ।।१०६।।

जब लगु मोती सीप महि, तब लगु सभु गुण जाइ ।
जब लगु जीयडा संगि जड, तब लगु दुख सहाय ।। चेयण गुण० ।।१०७।।

रे चेतन तूं तावला, जा जड तुम्ह संगि होइ।
जे मद्दु भाजनि गुजरी, खीरु कहै सबु कोए ।। चेयण सुणु० ।।१०८।।
चेतन तूं नित ज्ञान मइ, यहु नित अशुचि सरीरु।
घालि गवाया कुंभ महि, गंगा केरा नीरु ।। चेयण सुणु० ।।१०९।।

उतु जमि न्यानु अराधिया, कीया वरतु अभंगु।
तिसु पुनिहि तै पाईया, इसु काया सिउ संगु ।। चेयण सुणु० ११०।।
सा जड मूढ न सीचियै, जिसु फलु फूलु न पानु।
सो सोना क्या फूकियै, जोरु कटावै कानु ।। चेयण सुणु० ।।१११।।

जोवनु लछि सरीरु सुख, अरु कुलवंती नारि।
सुरगु इच्छाई पाईया, जिन्ह कै एसो चारि ।। चेयण सुणु० ।।११२।।

तूं सात धातु नींदहि सदा, चितमहि करहि विसेषु।
तिन्ह साथि हिय नित भरी, रे जिय संभलि देखु ।। चेयण सुणु० ।।११३।।

आहारु मैथुना नींद जड, ए चारिउ जीय साथि।
तैसठि सलाका आदि दे, इन्ह विणु कोइ न आथि ।। चेयण सुणु० ।।११४।।
ए चारिउ संगि ताम लगु, जा जीउ करमह माहि।
छोडि करम जीउ मोखि गया, इनहु नेका जाहि ।। चेयण सुणु० ।।११५।।

कालु पंच माइहू यहु, चित्त न किसही ठांइ।
इंदी सुखु न मोखु हुइ, दोनउ खोवहि काए ।। चेयण सुणु० ।।११६।।

कालु पंचमा क्या करै, जिन्ह समकतु आधारु।
जदि कदि बोइ पुन्यात्मा, निश्चै पावहि पारु ।। चेयण सुणु० ।।११७।।

राजु करंता जे मुवा, ते भी राजु कराहि।
भीख भमंता जे मुवा, ते भीखडीय भमाहि ।। चेयण सुणु० ।।११८।।

तपु करि पावइ राज पदु, राजहु नरकुभि होइ।
जिनि सुहु असुहु निवारिया, सो वंदा तिहु लोए ।। चेयण सुणु० ।।११९।।

काइ विछोडहि थोथि कहु, जिकु कणु ए कुन होइ।
जो रयणायरु सहु मथहि, मसका चडइ न तोए ।। चेयण सुणु० ।।१२०।।
कणुं ता इकु सरवनि जमि, अमरु सभै रुपरालु।
जिसु होवस चौगय तणा, तूटै माया जालु ।। चेयण सुणु० ।।१२१।।

चेतन काइ तडफ्फडहि, कूडा करहि पसारु ।
जिसु फलि सकहि न पहुचि करि, तिसुकी हूवस निवारो ।। चेयण सुगु० ।।१२२।

काया किसियन आपणी, देखहु चिति अवलोइ ।
कूकरि वंकी पूछडी, सा किम सीधी होइ ।। चेयण गुण० ।।१२३।।

भोगहि भोग जि इंदपरि, भूपति सेवहि बारि ।
काया भीतरि आइकरि, सुख पाया संसारि ।। चेयण सुगु० ।।१२४।।

यहु सुखु विष अविणासरु, दिनु दिनु छीजतु जाइ ।
जो जल सिखरहु खडहडै, सो किउ सिखरि चडाए ।। चेयण गुण० ।।१२५।।

यहु संजमु असिवर अणी, तिसु ऊपरि पगु देहि ।
रे जीव मूढ न जाणही, इव कहु किउ सीभेइ ।। चेयण सुगु० ।।१२६।।

असिवरु लागै तिन्हु कहु, जे विषया सुखि रत्त ।
साधि संजमु दुल भञ्ज मैं, ते सुर लोइ पहुतो ।। चेयण गुण० ।।१२७।।

इसु काया परसादते, चेतन सोभा होइ ।
पंचहु महि वाडिमा चडै, भला कहै सबु कोइ ।। चेयण सुगु० ।।१२८।।

भला कहावै जगु मुसै, भगलु करै नट जेउ ।
जड कै संगिहि दीठु मइ, घणा बूडंता एव ।। चेयण गुण० ।।१२९।।

बहुता जूनि भमंति यह, लही मुनिष की देह ।
तिस सिउ भैसी पिरति करु, जिउ सिल ऊपरि रेह ।। चेयण सुगु० ।।१३०।।

सिलभि विणसै रेहसिउ, देहमि खिण महि जाइ ।
तिसु सिउ निश्चल पिरति करु, जोले दुख छोडाइ ।। चेयण गुण० ।।१३१।।

दुक्खहु मूलिन छूटइ, पडिया आरति भाणि ।
काया खोवइ आपणी, किउ पहुचे निरवाणि ।। चेयण सुगु० ।।१३२।।

उद्दिमु साहसु धीरु बलु, बुद्धि पराकमु जाणि ।
ए छह जिनि मनि दिढु किया, ते पहुंचा निरवाणि ।।१३३।।

चेयन गुणवंते जडसिउ संगु न कीजै ।
जड मलदरु पूरै, तिव तिव दुख सहीजै ।
जड संगु दुहेला चिरु भमिया संसारो ।।

जिनि ममता छोडी तिनि पाया भव पारो ।
पाया सुतिनि भव पारु निश्चै संगु जड मक्का जिणो ॥
तेरह प्रकारि हि सुद्ध चारितु, धर्या बिहु अप्पण मुणो ।
चहु गति तणा सहि दुख भाजहि, मुकति पंथ लगंतिया ॥
तिसु साथि जड नहु संगु कीजै, सुणु चेतन गुण वंतिया ॥१३४॥

चेतन सुणु निरगुण जड सिउ संगति कीजै ।
इसु जड परसादिहि मोखह सुखु विलसीजै ॥
जड सहइ परीसह काटै करमह भारो ।
जिसु जड न सखाई तिसु उरवारु न पारो ॥
उरवारु पारु न होइ किछुहू रिदुइय काइ गवावहे ।
इंदियां सुखु न मोखु होवइ फिरि सुमनि पछितावहो ॥
सुरलोइ चकवर्ति उच्च पदवी भोगतइ भोग्या घणा ।
तिसु साथि जड नित संगु कीजै सुण चेतन निरगुणा ॥१३५॥

दुख नरकि जि दीठे ते इव हीयइ संभाले ।
इसु जडके संगते चेतन आपनु घाले ॥
परताषि विष वेली सीच्यह वया फलु होए ।
मधु बिंद कए सुख तिन्ह लगि आपुन खोए ॥
ननु खोइ आपणु राखि दिढु करि तीर समकतु निश्चलो ।
जब लगै मंदिरि कालु पावकु धम्मु का लाभै जलो ॥
धनु पुत्त मित्तु कलत्तु काया, अंति नहु कोइ सखा ।
संभलहु इव चेतन पियारे, नरकि जे दीठे दुखा ॥१३६॥

जह पुहपु तह मधु जह गोरसु तह घीउ ।
जह काठ अगनि तह जह पुदगल तह जीउ ॥
मति मुगध सि भूली हूंढहि घरु घरु बारो ।
पाखंडी जगु डहकहे, सकहि न आप उतारे ॥
ते सकहि आपुन तारि मूरिख, सकति काया खोवहे ।
चारितु लेकरि विषय पोषहि पंक उरि मल धोवेहे ॥
सिव सकति सदा सलगनु जुगि जुगि मरमु नहु कि नही लषो ।
संभलहु इव चेतन पियारे पुहपु जह तह होइ मधो ॥१३७॥

जिय मुकति सरूपी तू निकल मलु राया ।
इसु जडकै संगते भमिया करमि भमाया ।।
चडि कमल जिवा गुणि तजि कद्दम संसारो ।
भजि जिण गुण हीयडै तेरा यहु विवहारो ।।
विवहार यहु तुझ जाणि जीयडे करहु इंदिय संवरो ।
निरजरहु बंधण कम्मं केरे जान तनि दुक्खाजरो ।।
जे वयण श्री जिण वीरि भासे तरहु निस धारहु हीया ।
इव भणइ 'बूचा' सदा निम्मलु मुकति सरूपी जीया ।।१३८।।

।। इति चेतन पुद्गल धमाल समाप्त ।।

□ □ □

५

नेमिनाथ बसंतु

प्रमृत अमुल उमवउ निमि जिण गढ गिरनारे ।
म्हारे मनि मधुकर तुह वसै संजम कुसुम मझारे ।
सखीय वसंत सुहावौ दीसइ सोरठ देसो कोइल कुहकै मधुरसरे ।
सावणह प्रवेसो विवलसिरी महमसै भंवरा रुणु झुणकारे ।।
गावहि गीत सुरासुर गंधप गढ गिरनारो ।
विजय पडहु जसु बाजइ आगम अविचल तालो ।
निमि जिण कीरति विलासिणि नचइ सुछन्द छंदवालो ।
प्रभय भंडार उघाडय पडइ संजम सिंगारो ।
अट्ठारह सहि प्रसील सहिलडा सरिसउ नेमि कंवारो ।
ध्यान कुसुम मइ गहकइ चरित चंदन अंगे ।
मुकति रमणि रंग रातउ निमि जिणु खेलइ फागो ।
सरस तंबोल समाणाइ रालइ रंग उगालो ।
समदविजय राइ लाडिलउ अपुर देस विसालो ।
नव रस रसियउ निमि जिणु नव रसु रहिउ रसालो ।
सिद्धि विलासिणि भोल थो समदविजय रइ बालो ।
नेमि छयल त्रिभुवण छलिउ मलियो मालणि माणो ।
राजल देखत दिन्नरमे संजम सिरिय सुजाणो ।
जणु जागे तछ सोवइ जागय सूते लोग ।
मोहि किवाड अजलै अनभखु नयण संजोग ।
सरस बडे गुण माडइ चुरि चुरि करइ अहारो ।
जाण पराइ जणु झगडइ सिवदेको अलियारो ।
कुंड ठाइन्द्र मै न्हाइजै पहिरिजइ निरमल चीरो ।
नेमि गंधोदकु वंदिजै निर्मल होइ सरीरो ।
चंदन कपूर कुंकु घसि चरचिजै सावल धीरो ।
अमल कमल सालि पुजि जै भव भव भंजण वीरो ।
दवणउ मरवउ सेवती सहुदल पाडल मालो ।
सलहि मनोरथ पूरवइ प्रभु पूज जइ त्रिकालो ।

नव नेवज रस गोरस पुज्जि जै त्रिभुवण माही ।
जनम जीवन फलु लाभइ रे निति रुन होइ उच्छाहो ।
आरत्यो प्रभु कीजइ विमल कपूर प्रजाले ।
अमर मुकति मगु दीसई मोह महातमु जाले ।
कृस्नागुरु धूप धूपिजइ जिन तनु सहजि सुवासो ।
अमर रमणि रंगि रमिअइ पाइजइ शिवपुर वासो ।
नव नारिंग कवली फल पुज्जि जै त्रिभुवण देवो ।
जनम जीवन फलु लाभइ होइ संसारह छेवो ।
काचीय कलीन विहसइ धोरा बाउ ।
भूलउ भवरा रुम फुण चंचल छपल सहाउ ।
भमरु कमल रस रसियउ केतुकि कुसुम लुभाइ ।
वंधण वेदु मुग्धि सहइ राह बंधै न सुहाइ ।
साजन छयल तिस लहि जाहि नित नवल वसंतु ।
सवम नवल परि विहसइ जाह नित रमणि हसन्तु ।
रामाइण रंगि रातउ भार धरहि तु पमाणु ।
परमाहथि पंथि भूलउ किउ पावहि गुण ठासो ।
अडली डाल डलामल मण खाधा फल खाये ।
आन्हवि धरवण सूवडउ सखीयण कंधण जाइ ।
मूलसंघ मुखमंडण पदम नन्दि सुपसाइ ।
बील्ह वसंतु जि गावइ से सुषि रलीय कराइ ॥

॥ इति नेमिनाथ बसंतु समाप्तो ॥

□ □ □

६

टंडाणा गीत

टंडाणा टंडाणा मेरे जीवडा, टंडाणा टंडाणावे ।
इहि संसारे दुख भंडारे, क्या गुण देखि लुभाणावे ।।
जिनि ठगि ठगिया अनादि कालहि, भी तिन्ह जोगु परयाणावे ।
पडया कुमारगि मिथ्या सेवहि, मेटहि जिणि की आणावे ।।
पाप करहि पर जीव सतावै, होसी नरका ठाणावे बाग ।
केती बारह रंकु कहाया, कित्ती बारह राणावे ।।
समइ समइ सुह असुह जो बांधै, लागो होइ सताणावे ।
बज्ज लेप वहु खोली नाही, लवहि अवर अयाणावे ।।
ए वहु भवि भवि चहुगति भीतरि, बांध्या करमहु धाणावे ।
तेरह विधि तै पालि न सकिया, चारितु खरि कृपाणावे ।।
केवल भाषित धरम अनुपमु, सो तुम चिति न सुहाणावे ।
ले संजम तै जीति न सकया, तीखे मनमथ बाणावे ।।
राग दोष दोइ वइरी तेरै, देहि न सिवपुरि जाणावे ।
आठ महामद गज जिम गरजै, तिन मिलि किया निताणावे ।।
मात पिता सुत सजन सरीरी, यहु सबु लोगि बिडाणावे ।
रयणि पंखि जिम तरवर वासै, दस दिस दिवसि उडाणावे ।।
जम्मण मरण सहे दुख अनंता, तौ नहुवउ सयाणावे ।
केते पुरिस निपुंसिक लिंगिहि, के ते नाम धराणावे ।।
नट जिम भेष कीये बहुतेरे, तिन्हको कहइ प्रवाणावे ।
आपणु पइ कारणि करि आरंभु, तू पीडहि षट प्राणावे ।।
कोह मान माया लोभ संगहि, नितिहि रहै अरमाणावे ।
चेतनु राव निबल तइ कीयो, मनु मंत्री सिउ लाणावे ।।
विषयहु स्वारथ पर जिय वंचहि, करि करि बुधि विनाणावे ।
छोडि समाधि महारस (अ)नूपम, मधुर बिंदु लपटाणावे ।।

आइ जरा जब गढ़ मैं पैसे जोबन करइ पयाणावे ।
औसर गुण तूटंहि जिम धाणुष घण पीछैं पछिताणावे ।।

करि उद्दिमु अप्पणु बलु मंडै, भोगहु अमर विमाणावे ।
आश्रव छेदि गह्यौ निज संवरु, काटहु करम पुराणावे ।।

पाखिहि मासि नीरसु भोयणु, ले करि सेवउ जाणावे ।
समकति ओहणि दस विधि पूरहु निम्मलु धम्म किराणावे ।।

सुद्ध सरूप सहजि लिव निसिदिन, झावउ अंतरि झाणावे ।
जंपति 'बूचा' जिम तुम्हि पावहु, वंछित सुख निवाणावे ।।

सुख निर्वाण निर्भय थाणं, सिव रमणी मस्तकि तिलयं ।
आत्मप्रतिबुद्ध जंभि कवि सुद्धं, बत्तीसो गुण पद निलयं ।।

।। इति टंडाणा गीत समाप्त[1] ।।

□ □ □

१. गुटका दि० जैन मन्दिर नागदी बूंदी ।

७

भुवनकीर्ति गीत

आजि बधाउ सुणहु सहेली, महु मनु पदुमनु विधसइ जिमकलीए ।
गोर्ट्ठि अनंद नित कोटिहि सारिहि, सुहु गुरु सुहु गुरु वेदहि सुकरि रलीए ।।
करि रली बन्दहु सखी सुहु गुरु लवधि गोइम सम सरै ।
जसु देखि दरसणु टलहि भवदुख, होइ नित नवनिधि घरै ।।
कपूर चन्दन अगर केसरि आणि भावन भावए ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण प्रणमोहु, सखी आज बधावहो ।।१।।

तेरह विधि चारित प्रतिपालइ, दिनकर दिनकर जिम तपि सोहइए ।
सर्वज्ञि भासिउ धर्म सुणावै वाणी हो वाणी भव मनु मोहइए ।
मोहन्ति वाणी सदा भवि मनु अरथ आगम भासए ।
षट् द्रव्य अरु पञ्चास्तिकाया सप्ततत्व पयासए ।।
बावीस परिसह सहइ अंगिह गहव मति नित गुणनिधो ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण पणमि सु चारितु तनु तेरह विधो ।।२।।

मूलगुणाहं अठाइसइ धारइए मोहए मोहु महाभडु ताडियो ए ।
रतिपति तिणु दंतिहि मंहिहउ पुणु कोवडुए कोवडुकरि तिहि रालीयो ए ।।
रालियो जिमि कोवंड करिहि बनउ करि इम बोलइ ।
गुरु सियलि मेरहु जिउ पवंगमु पवण भइ किम डोलए ।
जो पंच विषय विरतु चिंतिहि कियउ खिउ कम्महु तणु ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण प्रणमइ धरइ अठाइस मूलगुणु ।।३।।

दस लाक्षण धर्म निजु धारि कु संजमु भूसणु जिसु बनिए ।
सत्रु मित्रु जो सम किरि देखई गुरनिरगंथु महामुनीए ।।
निरगंथु गुरु मद अट्ठ परिहरि सवय जिय प्रतिपालए ।
मिथ्यात तम निर्द्धण दिन म जैणधर्म उजालए ।।
तेरैअव्रतहं अखल चित्तहं कियउ सकयो जम्मु ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण पणमउ धरइ दसलक्षिण धम्मु ।।४।।

[illegible]
गावहि ए कामणि मधुर सरे अति मधुर सरि गावति कामणि ।
जिणहं मन्दिर अवही अष्ट प्रकार हि करहि पूजा कुसममाल चढावहि ।।
बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटिउ वर्धासहु गुरो ।
श्री भुवनकीर्ति आसीरवादहि मंघु कलियो सुरतरो ।।

।। इति आचार्य श्रीभुवनकीर्ति गीत ।।

८

पार्श्वनाथ गीत

जाग सलोनडी ए सुण एक बाता ।
पार्श्व जिर्णंद सिवां एहु मन राता ।
राता यहु मन चरण जिणवर वामादेवी नंदनो ।
एक जगतगुरु जगनाथ वंदो, पुण्य का फल पावए ।
जिन कमठ बल तप तेज हारचो, मन चरणासि धरवणीए ।
कवि वल्ह परस जिणेंद वंदो, जाम रयण सलोनीए ॥१॥
कुंकम चंदन सवल करीजै, मउसर माल गले कुसम ठवीजे ।
कुसमे ठवीजे हार गुंथित, न्हाण पूज करावइए ।
एक जगत गुरु जगनाथ वंदो, पुण्य का फल पावए ।
जिन अष्ट कर्म्म विदार क्षय करि, मन धरघासि वरवणीए ।
कवि वल्ह परस जिणेंद्र वंदो, सवलि चंदन कीजिए ॥२॥
त्रिभुवणं तारण मुक्त नरेसो, सत फणातो णिकरे रहीया सेसौ ।
रहीया सेसो सात फणि, अंत किवही न पाइया ।
ध्याणिवइ कोडी भिरद, निभकरि पुरुष डिढ चित लाइया ।
धरि पुत्त संपइ लेइ लक्ष्मी, दुरति निकंदना ।
कवि वल्ह परस जिणंद वंदह, स्याम त्रिभुवन वंदना ॥३॥
जन्म बनारसे उतपते जासो, अलिवर विषम गढोलिय निवासो ।
लिया निवास थान अलवर, संघ आवइ वहु पुरे ।
एक अंग मंडित कनक कुंडल, श्रवन मुख हीरे जडे ।
दहु पंच सहसउ बद तरेसठ, माघ सुदि तिथि वारसी ।
कवि वल्ह परस जिणेंद वंदो जन्म लिया बनारसी ॥४॥[1]

॥ इति पार्श्वनाथ गीत समाप्तो ॥

□ □ □

---

१. प्रस्तुत पार्श्वनाथ गीत अभी एक गुटके में उपलब्ध हुआ है । गुटका आमेर शास्त्र भण्डार में २६२ संख्या वाला है । इसमें पार्श्वनाथ की स्तुति की गयी है । यह गीत संवत् १५६३ माघ सुदी १२ को लिखा गया था । कवि की अब तक उपलब्ध कृतियों में यह प्राचीनतम कृति है ।

६

राग वडहंसु

ए सखी मेरा मनु चपलु दसै दिसे ध्यावै वेहा ।
ए बहु पडियडा लोभ रसे खिणु सुभ ध्याने ना आवै वेहा ।।
आवै न खिणु सुभ ध्यानि लोभी पंच संगिहि रातवो ।
मोहिया इनि ठगि मोहि धूरति विषु भ्रमी करि जातवो ।
निगोद नर मह सहे बहु दुख किमो भ्रमणु घघोर वो ।
दस दिसिहि ध्यावै हरि न रहई सखी मनु मेरवो ।।१।।

एहड वरजे रही हरि न सुणै अचरु चरै दिन रयणे वेहा ।
ए यहु मातडा आठमदे ततु न चाहीयडा नयणे वेहा ।
चाहीया तत्तु न ग्यान नयणि हि सुमति चिति न धारिया ।
मिथ्याति पडिया नाद कालि हु जनमु एवइ हारिया ।
मुल्लिया तितु भव भमि सागरि धून ते आप्या सही ।
सो अचरु चर इन सुणइ कहिया वरजिहड तिसुको रही ।।२।।

एति तु निगुण सिवा चेतनो वया धूलि रहिउ लुभाए वेहा ।
ए निरंजनो पटल अजनि राख्या धूरतै छाए वेहा ।
छाइया धूरति पटल अंजनि राउ त्रिभुवन केरउ ।
दुख रोग सोग विजोग पंजरि किया आइ बसेरउ ।
अप्पणउ वस्तु तजि हुवउ परवसि लछि धरि कायर शिव ।
धुस रह्या निसि दिनु सगुण चेतनु निगुण तिसुनारी सिवा ।।३।।

ए रयणत्तउ वर तो भजो सुण सुण जीय हमारे वेहा ।
ए सरवनि धम्मो पालिनि जो औगुण मिटहि तुम्हारे वेवा ।
तुम मेटहि अवगुण जीय संभलि धम्मो जो सरवनि कह्या ।
मनि वचनि काया जिन्हिहि पाल्या सासुता सुख तिन्ही लह्या ।
दुख जरा जम्मण मरण केरे अब भागा भवो ।
बूचराज कवि मंजु जाय म्हारे वरतु यहु रयणत्तउ ।।४।।

× × ×

१०

राग धनाक्षरी

सुणिय पधानु मेरे जीयवे, की सुभ ध्यानि न आवहि ।
साचा धम्मु न पालिया फिरि फिरिता गति धावहि ।।
फिरि फिरि गति धाया सुख न पाया हंढयाए जतपंदा ।
इन्ह विरखया संगिहि पया कुंड गिहि काला आपुरि चंदा ।।
सुह असुह कमह किसुह समइ तू जाणहि आपु कमावही ।
सुणिय पधानु मेरे जीयवे की सुभ ध्यानि न आवहि ।।१।। टेर

खुभिया पंकज मोहनी सत्तिर कोडा कोडिवे ।
ललका सुक जिउ भासिया सश्या न वंण छोडिवे ।।
नहु बंधण छोड उडिया लोडं करै कलाप रे ।
रसु रसणिहि चाख्या मूलू न राख्या कीए गते हिं वसेरे ।।
ठगि ठगिया लोभे नडि मोहे जडिया घाल्या आपणु मोडिवे ।
खुभिया पंकज मोहनी सत्तिरि कोडाकोडिवे ।।२।।

संपति सजन सरीरि सुत पेखि न भुल्ला सभायवे ।
खेवट केरी ना वजिउ मिले सजोगिहि आइवे ।।
मिलिया संजोगिहि इन्हही लोगिहि पुव्वहि पुंन कमाणे ।
यहु रतनु चितामणि कवडी कारणि खोड न मूढ अयाणे ।।
पउरंगु सनेहु यहु सुखु एहु मधुविंदु रस सायवे ।
संपति सजन सरीरि सुत पेखि न भुल्ला सभाइवे ।।३।।

अरहंत देउ निरगंथ गुरु केवल भाषित धम्मजी ।
जिनि यहु निजु करि जाणीया कीया सफलु तिन्ह जम्मुजी ।।
तिन्ह जमणु सहला गयान अहला जिनही समकतु जाता ।
दुरगति दुखु टाल्या सीयलु पाल्या मिथ्या जालि न फाल्या ।।
जंपति 'बूचा' कहइ सरवनि जीति सुमति मानहु भरमु जी ।
अरहंतु देउ निरगंथ गुरु केवल भाषित धम्मजी ।।४।।

× × ×

११

राग घनाक्षरी

पट मेरी का चोलणा लालो लौंग ग मोती का हारवे लालो ।
पहिरि पटंवर कामिनी लालो, नौ सती कियउ सिगारु वे लालो ।।
सिगारु करि जिण भवणि आई, रहसु बहु मन महि घणा ।
सभ ईंध्र पुनी भया आनंदु देखि दरसनु तुम्हु तणा ।।
कप्पूर चंदनि अगरि केसरि अंगि चरची मेलया ।
सिरि संति जिणवर करहु पूजा पहिर पाटंम चोलया ।।१।।

राइ चंवा अरु केवडा लालो मालती मारुवा जाइवे लालो ।
कुंद मचकुंद अरु केवडा लालो, सेवती बहु महकाइ वे लालो ।।
महकाइ बहु [illegible] ।
सुनल सोवन कयस कवियरु नव निवली अति घणी ।।
ले आइ मालणि गुंथि नवसरू देखि विगसै हीयडा ।
माला चहोडैं सीसि जिणवर राइ चंवा केवडा ।।२।।

पंच कलस भरि निरमल लालो, स्वामी न्हवणु करेहि वे लालो ।
भावहो कामिनी भावना लालो, पुन्न तणा फलु लेहि वे लालो ।।
फलु लेहि भवियण पुन्न केरा, करि महोछा आवहो ।
नारिग तुरी जु जभीर नेवजु आणि सीमि चडावहो ।।
आरती लेकरि फिरहु आगैं गहिर शब्द वजावहो ।
सिरि संत जिणवर न्हवण कीजैं पंच कलस भराव हो ।।३।।

गढ़ु हथिनापुरु वंदियैं लालो, जिन्नु स्वामी अवतारु वे लालो ।
सफलु जनमु बहु जाणियैं लालो, तेय मुकति दातारु वे लालो ।।
मुकति दाता नयणि दीठा रोगु सोगु निकंदणो ।
अवतारु अचला देवि कुक्षिहि राइ विससेण नंदणो ।।
जगदीस तूं सुण भणइ 'बूचा' जनम दुखु दालिद हरो ।
सिरि संति जिणवरु देउ तूठा थानु गढ़ि हथिनापुरो ।।४।।

× × ×

१२

पद रागु गौडी

रंग हो रंग हो रंगु करि जिणवरु ध्याईयै ।
रंग हो रंग होइ सुरंगसिउ मनु लाईयै ।।
लाईयै मह्नु मनुरंग इस सिउ भवरु रंगु पतगिया ।
घुलि रहइ जिउ मंजीठ कपडे तेम जिण चतुरंगिया ।।
जिम लगनु वसतरु रंगु तिवलगु इसहि कानर गाव हो ।
कवि 'वल्ह' लालचु छोडु भूठा रंगि जिवरु ध्याव हो ।।१।।

रंग हो रंग हो पंच महाव्रत पालियै ।
रंग हो रंग हो सुख अनंत निहालियै ।।
निहालियहि सुख अनंत जीयडे आठ मद जिनि खिउ करे ।
पंचिदिया दिढु लिया समकतु करम बंधण निरजरे ।।
इय विषय विषयर नारि परधनु देखि व चित्त न टाल हो ।
'कवि वल्ह' लालचु छोडि भूठा रंगि पच व्रत पाल हो ।।२।।

रंग हो रंग हो दिढु करि सीयलु राखीयै ।
रंग हो रंग हो रान वचन मनि भाखीयै ।।
भाखियै निज गुर ज्ञान वाणि रागु रोसु निवार हो ।
परहरहु मिथ्या करहु संवरु हीयइ समकतु धार हो ।।
बाईस प्रीसह सहहु अनुदिनु देहसिउ मंडहु कलो ।
'कवि वल्ह' लालचु छोडि भूठा रंगु दिढु करि सीयलो ।।३।।

रंग हो रंग हो मुकति रवणी मनु लाईयै ।
रंग हो रंग हो भव संसारि न आइयै ।।
आइयै मह्नु संसारि सागरि जीय वहु दुखु पाइयै ।
जिसु बाभु चहुगति फिरघा लोडं सोइ मारगु ध्याइयै ।।
तिभुवणह तारणु देउ अरहुंत तासु गुण निजु गाइयै ।
'कवि वल्ह' लालचु छोडि भूंठा मुकति सिउ रंगु लाइयै ।।४।।

× × ×

१३

रागु दीपु

न जाणौ तिसु वेल कौ वे चेतनु रह्या लुभाई वे लाल ।
चित हमारी राजे परहरी वे सुद्धंतरि लिवलाइ वे लाल ।।
अंतरि लिवलागी आरति भागी जाण्या पूलु निराला ।
लोका अवलोक सभे जिनि दीपे हूवा सहजि उजाला ।।
निरमलु रसु पीवै जुगि जुगि जीवै जोतिहि जोति समाइवे ।
न जाण्यो तिसु वेल कौ वे चेतन रह्या लुभाइ वे लाल ।।१।।

जिथी रूपन गंधरसो थैं पयासु तिथि जाइ वे लाल ।
सरगुण थिधानि गुण सिवावे किती हेति सभाइ वे लाल ।।
किती सउभाए चिति चाए आपनडैं सुखि थीए ।
रंग महि नित अंछे कहि न गछइ अमिय महारस पीए ।।
जगु जाणइ सोवैं उहु समु जोवैं उनमनि रच्यौ मनु लाइवे ।
जिथी रूपुन गंधर सोवे पया मुतिथी तूं जाइवे लाल ।।२।।

बालत्तण की बालहीवे हौ रत्ती तैं नालि वे लाल ।
दुख सुख किती भोगवे वे संगि अनादी कालि वे लाल ।।
संगि नादी काले विषी वाले जोबन दैंगै वारे ।
जे जे सुखभाणे पापी भाणे तेइ वचित्ति चितारे ।।
हम साथि विरच्या अवरे रच्या साकि न बाचा पालिवे ।
बालत्तण की वालही वे हौ रत्ती तैं नालि वे लाल ।।३।।

जोया सोई सोहु वावे क्या अखातैं नालिवे लाल ।
पाली दरि जे बस रोवे जिवसर अदरि पालिवे लाल ।।
सर अंदरि पाले देसु निहाले आगमि ध्यातमि कहिया ।
जो परम निरंजणु सब दुख भंजणु इव जोगी सरि लहिया ।।
जंपति 'बूचा' गरु तरियैं सागरु ऐसी बुद्धि संभालिवे ।
जोया सोई सो हुवावे क्या अखातैं नालि वे लाल ।।४।।

× × ×

१४

रागु सूहउ

वाले वलिवेहु' भावे मनु माया भुलि रातावे ।
वाले वलिवेहु' भावे रहइ मठ मदि मातावे ।।
मादे हुंतै नाता धरमु न जाता जो सरवलि हि भास्या ।
धन पुत्त कलत्ता मित्ता हित्ता देखत हियै विगस्या ।।
सा विसरीकै व नरकि जा भोगी वेदन दुसहु असाता ।
करुणा करतारि कहै जन 'बूचा'..........................।
वाले वलिवेहु' भावे मनु माया भुलि रातावे ।।१।।

वाले वलिवेहु' भावे सवल मिथ्यातिहि मोह्यावे ।
वाले वलिवेहु' भावे पंच ठगिहि मिलि दोह्यावैं ।।
ठगि पंचिहि दोह्या तै नहु जोह्या साचा समकतु सारो ।
चौगति हींडतह कष्ट सहंतह भूलि न लद्धा पारो ।।
आगम सिद्ध'तह वचन सुणंतह तै नहु चितु पउ वोह्या ।
करुणा करुतारु कहै जन 'बूचा' ।
वाले वलिवेहु' भावे सवल मिथ्यातहि मोह्या वे ।।२।।

वाले वलिवेहु' भावे जो लोहा पारसु पर सैवे ।
वाले वलि हु' भावे ताहु कंचरणु दरसैवे ।।
हुइ कंचरणु दरसै संगति सरसै सुद्ध सरुउ पिछारणै ।
सहु अंदरु भीतरु एको होवे ता परमारथु सहु जारणै ।।
आनन्द रूपी नित रहइ निरंतरि कवलु हियै महि हरसै ।
करुणा करुतारुक कहइ जन 'बूचा' ।
वाले वलिवेहु' भावे जो लोहा पारसु परसैवे ।।३।।

वाले वलिवेहु' भावे सेवहु तिहुवरण राया वे ।
वाले वलिवेहु' भावे जिनि सांचा मग्गु दिखाया वे ।।
जिनि मग्गु दिखाया जिथ मनु लाया तिसु मन्यामहि रहियै ।
अविहडु अविनासी जोति प्रकाशी थानु मुकति जिम लहियै ।।
भीउ भागमउ संसारहु अति घोरहु पुनरपि जनमनु पाया ।
करुणा करुतारु कहइ जनु 'बूचा' ।
वाले वलिवेहु' भावे सेवहु तिहुवण रायावे ।।४।।

× × ×

१५

रागु बिहागडा

ए मेरैं अंगणे बाचवा बासो चवे कोवल कलिबावा ।
ए मइ गुंथि पइचा गा नवसर सो नव सरकरि मने रलिया वा ।।
मनि रलिय करि गुंथ्यासि नवसर जिणहु पूज रचावहे ।
सा सुता सुख तिव मिलहिं वंछित जमु न चौगय पावहे ।।
ईजिसु देखि दरसणु टरहिं भव दुख भाउ उपजै खिणु खिणो ।
जि अदिजिण कारणि नि पाया राइचंवा अंगणो ।।१।।

ए तेरे चरणे वा चरणे वा चरणि मेरा मनो मोह्यावा ।
ए बुद्द लोयणे वा मनदोसो मनदोसो जम्मो ओह्यावा ।।
ओह्यासु जा मुख देख केरा अवरु नहु सेवउ किसो ।
जिनि आठ मद निरजरे वलु करि हीयइ गुण वसिया तिसो ।।
बंधिया तूं दुन करमि कठिनिहिं भविउ बनम घणेरिया ।
मोह्या सु इन चितु आदि जिणवर चलणि इन दुहु तेरिया ।।२।।

पिरतिइ नेहडी कीजे वेसा कीजे जिणवर भाणीवा ।
ए षटु कायहा वा जाणी वा सो जाणी तिन्ह दिणे राखीवा ।।
तिन्ह राखि दिढु दे अभइन्हा परि करि नहि सेइकु खिणु ।
जिम जाणि वेयण किया निय तण तिम सुजयण पर तिणु ।।
इकु रहहु समकति सदा निश्चलु जिम सुमेरु न छीजए ।
इम कहइ आदि जिणंद स्वामी पिरतिन्हा परि कीजए ।।३।।

ए चंद निरमली वा वाणी वा सो वाणी भवियहु पारी वा ।
ए व्रत बारहा वा धारो वा सो धरि तरहुसए सारोवा ।।
संइसारु सागरु तरहु जिम जय पंचमहु वय दिढु रहो ।
बाईस प्रीसह सहहु दुग्गम तेइ अहि निसि सहो ।।
सव्वु देख पुर्णीय भणइ 'बूचा' जनमु सफला जाणियइ ।
बलस्यास मनु सुणि आदि जिणवर चंद निरमली वाणीया ।।४।।

× × ×

१६

रागु आसावरी

दोहा :—संजमि ग्रोहणि ना चडे भए अनंत संसारि ।
स्वामी पारे उत्तरे हमि थके उरवारि ।। छंदु ।।

हम थाके उरवारि स्वामी पारेगए ।
समकतु संवलो नाहते नरदीन भये ।।
ते भये दीन जहीन समकति मग्गि जिणवर ते खडे ।
गति चारि चउरासिय लख महि जनमु करि ते रूले ।।
बहु वारि दरसनु भया स्वामी धम्मु पालि न सकिया ।
तुम्हि पारि पहुते वीर जिणवर असे पतणि थकिया ।।१।।

इक्क लडेग्नक माहि देखे कष्ट वहो ।
आसत वेदन घोर सहारैं कवण कहो ।।
कहु को सहारइ घोर वेदन ताइ तावा पावहे ।
करि लोह थंभसि अग्गिवंने आणि अंगि लगावहे ।।
छेयणात भेयण डंड मुद्‌गर तनु पहारे सल्लिया ।
दुख कष्ट देखे सुणहु स्वामी नर माहि इकलिया ।।२।।

सेव्या कुगुरु कुदेउ पडियाक धम्म मते ।
पुदगल प्रवतिन काल कीती बहुत थुते ।।
थुति बहुल कीती सुणहु जीयडे आठ कम्मिहि तू नच्या ।
वलु करि डिगाया पंच थुत्तिहि एव मिध्यातिहि पच्या ।।
नित चड्यो मान गर्यंदि मय मति तत्तु चित्ति न वेहिया ।
पडिया कुधम्मिहि सुणहु जीयडे कुगुरु हेले सेविया ।।३।।

हम चातिगहु पियास दरिसन नीर विणा ।
अगतनि ताप वुझाउ सरवनि सरस घणा ।।
घणा सरस सरवनि करुणा भवहु पाक लयाव हो ।
दुख जरा जम्मण मरण केरे तिन्हहु वेगि छुडाव हो ।।
कर जोडि 'बूचा' भणइ सेवगु मेटि जिण अंतरि तम ।
तुम्ह नीर दरसण वाभु स्वामी भिसावहु चातिग हम ।।४।।

× × ×

१७

गीत

निस निस नवली देहडी नित नित अवह कम्मु ।
नित निस अनन्त सुख अमल. नित नित माणसु जम्म ।
नित नित न माणसु जम्मु लाभइ, नित नित न वांछित पावइ ।
निस निस न अरि जु खेतु लभै, नित्त न सुभ मति आवये ।
नित नित न सुभ गुरु होइ दंसणु, धम्मु जो जंप्पइ इहि ।
तो चेतना करि चेतन संभालउ, मणुव जम्म न नित्त नित्तो ।।१।।

जा लगु खिसियन जोवनग. जा लगु जरा न जणावै ।
जा लगु तनु न संकोचिये, जा लगु रोग न आवै ।
आवइ न जा लगु रोगु अंगइ, तेजु नहु जब लगु खलइ ।
जब्ब लग न मति श्रुति भई भिभल, जाम बल इन्द्री मिल्यो ।
जब लग न बिछुडे प्राण प्राकम ताम तन पसरी गुणो ।
जब्ब लग न चेतनु चढिउ आसणु, जाम खिलियन जोवणो ।।२।।

राजु दुबारह झल्लरी, अहि निसि सबद सुणावै ।
सुभ असुभ दिनु जो घटइ, बहुडि न सो फिरि आवइ ।
आवइ न सो फिरि घटइ जो दिनु आउ इणि परि छीज्जइ ।
पोरसहु सम्माइकु व्रत संजमु खिणु बिलम्ब न कीजिए ।
पंच परमेष्ठी सदा प्रणमउ, हियइ निज्ज समिकितु धरहु ।
खिण खिण चितावइ, चेत चेतन राजद्वारह झल्लरी ।।३।।

जो सरवनि निज्ज भाखियो सो उत्तिम्म धम्मु पालहु ।
थावर जंगमु जे जिया ते सम्मदिष्टि निहालउ ।
निहालि ते समदिष्टि जीवा, नंत न्यानि ये कह्या ।
षट् द्रव्य अरु पंचस्तिकाया, घृत घटवत भरि रह्या ।
इम भणइ बूचा व्रत उत्तिम तीनि रतन प्रकासिया ।
सुख लहउ वंछित सदा पालइ धरमु सरवनि भासिया ।।४।।

× × ×

गुटका संख्या मन्दिर बधीचन्द जी शास्त्र भण्डार—वेष्टन संख्या ९७१ ।

१८

गीत

ए मनुषि सियडा कवल विगस्सेवा ।
ए जिणु देखीयडा पापः पणास्सेवा ।।
सहि पाप पणासे जनम केरे देव दरसनु जोइया ।
सयल वंछित इस्त पुन्निय भावहा पति गोइया ।।
गहू गहिय अगि नमाइ सुंदरि रोरु कसमलु पिल्लिया ।
श्री वीर जिणवर भवणि आई सखी तनु मनु खिल्लिया ।।१।।

आजु दिनु मनो रयणि सुहाइवा ।
आई तउछरगि जिणहू मंदरि देव गुणसहू गाइया ।
संसारि सफला नमु किया धम्मसि मनु लाइया ।।
सिद्धथराइ नरिंद नंदनु दिपइ अति उज्जल तनी ।
श्री महावीरु जिणंदु स्वामी दिवसु आजु जाण्या घनो ।।२।।

ए गुंथि मालणे माल लिवाईया ।
एमंद भाव सिवा जिण चडाईया ।।
चडाइ जिणसिरि माल कुसमहू, महुमनिहि भावन भाईया ।
कप्पूरि चंदनि अगरि केसरि जिणहू पूज रचाईया ।।
त्रिभुवनाहू नाथु अनाथु स्वामी मुकति पंथ उजालणे ।
श्री वीर जिणवर भवण लाई माल गुंथी मालणे ।।३।।

ए सिव अनंत सुखादेण दातारावे ।
एनु म्हू बलणि मनो रचिउ हमारावे ।।
हम रचिउ मनु तुम्हू पयहू पंकज जरा मरणु निवारहो ।
दयाल इव किछु करहु करुणा भवहू सागरु तारहो ।।
बूचराज कवि चहूगति निवारणु, सिद्धरवणी रातवो ।
श्री महावीरु जिणंदु पणविउ अनंत सिव सुख दातवो ।।४।।

× × ×

१९

गीत

धम्मो दुग्गइ हरणो, कारणो सह धम्म मंगल मूलं ।
जे भास्यो जिण वीरो, सो धम्मो नरहु पालोह्नु ॥१॥

जिसो सुकुल विनु सीलु भणिज्जै, रुपु तिसो विणु गुणह धुणिज्जै ।
जिसो सु दीसै विणु पत्तहु तरु, तिसो सु जिण ध्रम्मह विणु जगि नरु ।
हेमु तिसो वली विनु जाणहु, पत्थ हीणु जिउ कामु बखाणहु ।
धर्म बिना जैसे दीसै दिनु, जती जोगु जिसो चारित विनु ॥२॥

चारित विनु जती तपी बिन मतवै, जोई विनु जो ध्यान धहै ।
पढ्या विनु सिद्धि बुद्धि विन पंडिय, विनु सिद्धहु जोवावहे ।
भन विनु जिउ भूह भूह विनु भोगी, कलपीगु विनु खिमा थुणु ।
जिण सासण वचन इव भास्यो, इसोसु नरु जिणधम्म बिना ॥३॥

सर्वीयरु विनु रैणि दिवस विनु दिनीयरु, विन परिमल जे कुसम भणे ।
विनु तेय सुरंग जलह विनु सरवर, विनु चातिक रुप बाघु घणां ।
पिक विणु तरु सुंड विणु गयवरु, जिउ दल विणपै संतरणां ।
जिण सासण वचन इव भास्यो, इसोसु नरु जिण धम्म बिना ॥४॥

छुलह विणु डंक गुण विणु जिउ धण, कंठहु विणु जे धुणहि गीयं ।
कर विणु जिउ ताल वेस विणु लावण, विणु लज्जु जे कुलतीयं ।
लक्ष्मी विणु लोल सुरह विणु खीरहि जिउ दल विणु पैसं तिरणां ।
वण विणु जिउ सिंघ मोर विणु गिरवर, हंस विणु जिउ मानसर ॥५॥

विस विनु जिउ उरग, लूण विणु भोयणु, जिसो सु विणु केवै भवर ।
मंती विणु नृपति सोम विणु पटणि सुक वल्हइ वसचुभणां ।
जिसी रैणि विनु जोति, तिसी चकवी विणु दिनीयरु ।
जिसी दीप विणु रैणि तिसी विहणि ने वरि ॥६॥

विरगु रुचि भोयण जिसा बन्धरसि तिसी कहाणी ।
जिसा भाव विरगु भगति तिसो मोती विरगु पाणी ।
तैसो जु बीजु कलस योगि रही संपै वा घातिउ ।
कवि कहै वल्हे रे बूहमणह जिण सासण विगुजम इव ॥७॥

लिखितं कल्याण संवत् १६४८ वरष कातग वदि अमावस्या ।

□ □ □

२

छीहल

१६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के जैन कवियों में छीहल सबसे अधिक चर्चित कवि रहे हैं। रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास से लेकर सभी इतिहासकारों ने किसी न किसी रूप छीहल का नामोल्लेख अवश्य किया है। छीहल राजस्थानी कवि होने के कारण राजस्थानी विद्वानों ने भी अपने अपने इतिहास में उनकी रचनाओं का परिचय दिया है।

सर्वप्रथम रामचन्द्र शुक्ल ने छीहल का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "ये राजपुताने के ओर के थे। संवत् १५७५ में उन्होंने पञ्च सहेली नाम की एक छोटी सी पुस्तक दोहों में राजस्थानी मिली भाषा में बनाई जो कविता की दृष्टि से अच्छी नहीं कही जा सकती। इसमें पांच सखियों की विरह वेदना का वर्णन है। इनकी लिखी बावनी भी है जिसमें ५२ दोहे हैं। उदाहरण के रूप में उन्होंने पञ्च सहेली के प्रथम दो एवं अन्तिम एक पद्य भी उद्धृत किया है।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने अपने "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" में कवि की पञ्च सहेली गीत के परिचय के साथ ही उनके सम्बन्ध में अपना अभिमत लिखा है कि "इनका कविता काल संवत् १५७५ माना जाता है। इनकी पञ्च सहेली नामक रचना प्रसिद्ध है। भाषा पर राजस्थानी प्रभाव यथेष्ट है क्योंकि ये स्वयं राजपुताने के निवासी थे। रचना में वियोग शृंगार का वर्णन ही प्रधान है।[2]

मिश्रबन्धु विनोद में छीहल का वर्णन रामचन्द्र शुक्ल एवं रामकुमार वर्मा के परिचय के आधार पर किया गया है। क्योंकि उद्धरण भी शुक्ल वाला ही दिया गया है। वे लिखते हैं कि इन्होंने संवत् १५७५ में पञ्च सहेली नामक पुस्तक बनाई जिसमें पांच अबलाओं की विरह वेदना का वर्णन है और फिर उनके संयोग का भी कथन है। इनकी भाषा राजपुताने ढर्रे की है और इनकी कविता में

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृष्ठ १९८।

२. रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ५४४।

छन्दोभंग भी है। इनकी रचना से जान पड़ता है कि ये मारवाड़ की तरफ के रहने वाले थे क्योंकि उन्होंने तालावों आदि का वर्णन बड़े प्रेम से किया है।[1]

डा० शिवप्रसाद सिंह ने अपनी पुस्तक "सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य" में छीहल का सबसे अच्छा मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।[2] यही नहीं उन्होंने रामचन्द्र शुक्ल एवं डा० रामकुमार वर्मा के मत का उल्लेख करते हुए कवि के सम्बन्ध में निम्न प्रकार अपने विचार लिखे हैं—"आचार्य शुक्ल ने छीहल के बारे में बड़ी निर्ममता के साथ लिखा, संवत् १५७५ में इन्होंने पञ्च सहेली नाम की एक छोटी सी पुस्तक दोहों में राजस्थानी मिली भाषा में बनाई जो कविता की दृष्टि से अच्छी नहीं कही जा सकती। इनकी लिखी एक बावनी भी है जिसमें ५२ दोहे हैं। पञ्च सहेली को बुरी रचना कहने की बात समझ में आ सकती है क्योंकि इसे रुचि भिन्नता मान सकते हैं। किन्तु बावनी के बारे में इतने निःसंदिग्ध भाव से विचार किया यह ठीक नहीं है। बावनी ५२ दोहों की एक छोटी रचना नहीं है बल्कि इसमें अत्यन्त उच्चकोटि के ५३ छप्पय छन्द हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने छीहल की पञ्च सहेली का ही जिक्र किया है। वर्मा जी ने छीहल की कविता की श्रेष्ठता-निकृष्टता पर कोई विचार नहीं दिया किन्तु उन्होंने पञ्च सहेली की वास्तविकता का सही विवरण दिया है।"

इसके पश्चात् 'राजस्थानी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में डा० हीरालाल महेश्वरी ने छीहल कवि का राजस्थानी कवियों में उल्लेखनीय स्थान स्वीकार करते हुए उनकी पञ्च सहेली और बावनी को काव्यत्व से भरपूर एवं बोलचाल की राजस्थानी में बहुत ही अनूठी रचनाएं मानी हैं।[3] इसके पश्चात् और भी विद्वानों ने छीहल के बारे में विवेचन किया है। डा० प्रेमसागर जैन ने छीहल को सामर्थ्यवान कवि माना है। तथा उनकी चार रचनाओं का परिचय एवं बावनी का नामोल्लेख किया है।[4] लेकिन जैन विद्वानों में डा० कामता प्रसाद, डा० नेमीचन्द शास्त्री आदि ने छीहल जैसे उच्च कवि का कहीं उल्लेख नहीं किया है।

जन्म परिचय

छीहल राजस्थानी कवि थे। वे राजस्थान के किस प्रदेश के रहने वाले थे

---

१. मिश्रबन्धु विनोद—पृ० १४३।
२. सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० १६८।
३. राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० २५५—५८।
४. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० १०१—१०६।

इसके बारे में उन्होंने स्वयं ने कोई परिचय नहीं दिया है। लेकिन पञ्च सहेली गीत में कवि ने जिस प्रकार कुए पर पानी भरने के लिए आने वाली पांच विरहिणी स्त्रियों का चित्र प्रस्तुत किया है। उनके परस्पर की वार्तालाप को काव्यबद्ध किया है। उससे ऐसा लगता है कि कवि शेखावाटी प्रदेश के किसी भाग के थे जो ढूंढाड़ प्रदेश की सीमा को भी छूता था। बावनी में दिये गए परिचय के अनुसार वे अग्रवाल जैन थे तथा दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में उत्पन्न हुए थे। कवि ने 'लघुवेलि' में जिस प्रकार जिन धर्म की महत्ता का वर्णन किया है उससे स्पष्ट है कि ये दिगम्बर अनुयायी श्रावक थे।[1] डा० शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है कि कवि के जैन होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।[2] इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने कवि का लघु गीत नहीं देखा। पंथी गीत का भाव नहीं समझा। पिता का नाम नाथू जी नाल्हिग वंश के थे।[3] इससे अधिक परिचय अभी तक नहीं मिल सका है। खोज जारी है और हो सकता है किसी अन्य सामग्री के उपलब्ध होने पर कवि के सम्बन्ध में पूरा परिचय ही प्राप्त हो जावे।

छीहल रसिक कवि थे। जब उन्होंने पञ्च सहेली गीत की रचना की थी तो लगता है वे युवावस्था में थे। और किसी के विरह में डूबे हुए थे। कवि पानी भरने के लिए कुए पर जाते होंगे और उन्होंने वहाँ जो कुछ सुना अथवा देखा उसे छन्दोबद्ध कर दिया। मालिन, छीपन, सोनारिन, तम्बोलिन, आदि जाति की युवतियाँ वहाँ पानी भरने आती होंगी। जब उसने उनसे अपने अपने विरह की बात सुनायी तो कवि ने उसे छन्दोबद्ध कर दिया। कवि की अब तक ७ रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं। यद्यपि बावनी को छोड़कर सभी लघु रचनाएं हैं। किन्तु छोटी होने पर भी ये काव्यमय हैं तथा कवि की काव्य-शक्ति को प्रस्तुत करने वाली हैं। सात रचनाओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

१. पञ्च सहेली गीत
२. बावनी
३. पंथी गीत
४. लघु वेली
५. आत्म प्रतिबोध जयमाल

---

१. श्री जिनवर की सेवा कीधी रे मन मूरख आपणा ॥१॥
२. सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य—पृ० १६८।
३. नाल्हिग वंसि नाथू सुतनु अगरवाल कुल प्रगट रवि।
बावनी वसुधा विस्तरी कवि कंकण छीहल कवि ॥५३॥

६. उधर गीत
७. वैराग्य गीत

१. पञ्च सहेली गीत

यह राजस्थानी भाषा की कृति है। डा० रामकुमार वर्मा ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि इसमें पाच तरुणी स्त्रियों ने मालिन, छीपन, सोनारिन, तम्बोलिन, प्रोषित पतिका नायिका के रूप में अपने प्रियतमों के विरह में, अपने करुण आवेगों का वर्णन अपने पति के व्यवसाय से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का उल्लेख और तत्सम्बन्धी उपमाओं और रूपकों के सहारे किया है।[1] डा० शिवप्रसाद सिंह ने पञ्च सहेली को १६ वीं शती का अनुपम शृंगार काव्य माना है। साथ में यह भी लिखा है कि इस प्रकार का विरह वर्णन उपमानों की इतनी स्वाभाविकता और ताजगी अन्यत्र मिला दुर्लभ है।"[2]

पञ्च सहेली में पांच विभिन्न जाति की स्त्रियों के विरह की कहानी कही गई है। ये स्त्रियां किसी उच्च जाति की न होकर मालिन, तम्बोलिन, छीपन, कलालिन एवं सुनारिन हैं जिनके पति विदेश गये हुए हैं। उनके विरह में वे सभी स्त्रियां समान रूप से व्यथित हैं। कवि ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि पति वियोग में प्रोषित पतिका कितनी क्षीणकाय म्लान मुख हो जाती है। उनके आंखों में कज्जल, मुख में पान नहीं होता। गले में हार भी नहीं पहना जाता और केश भी सूखे-सूखे लगते हैं। वह हमेशा अनमनी रहती है। तथा लम्बे श्वास लेती है। उनके अधरोष्ठ सूख जाते हैं तथा मुख कुम्हला जाता है।

छीहल कवि जिस किसी नगर के रहने वाले थे, वह सुन्दर था तथा स्वर्ग-लोक के समान था। वहां विशाल महल थे। स्थान-स्थान पर सरोवर थे तथा कुए और बावड़ियों से युक्त था। नगर में सभी ३६ जातियां रहती थीं। लोगों में बहुत चतुरता थी। वे अनेक विद्याओं को जानते थे। तथा वे एक-दूसरे का सम्मान करते थे। नगर की स्त्रियां रूपवती एवं रंभा के समान लावण्यवती थी। नये नये वस्त्रा-भूषण पहिन कर वे सरोवर पर पानी भरने जाती थी। एक दिन इसी प्रकार नगर की कुछ नवयौवना स्त्रियां वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर सरोवर के पास आई। उस समय बसन्त था। इसलिए उनमें और भी मादकता थी। उनमें से कुछ गीत गा रही थीं। कुछ झूलना झूल रही थी तथा एक-दूसरे से हास परिहास कर रही

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – पृ० ४४८।
२. सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य—पृ० १७०।

थी। लेकिन उनमें पांच सहेलियां ऐसी भी थीं जो न नाचती थी, न गाती थी और न हंसती थी। कवि के शब्दों में उनकी दशा निम्न प्रकार थी—

तिन महि पंच सहेलियां नाचइ गावइ न हसइ।
ना मुख बोलई बोल...... ....॥६॥

नयनह काजल ना दीउ, ना गलि पहिरयो हार।
मुख तम्बोल न खाईया, ना कछु किया सिंगार॥१०॥

रूखे केस ना न्हाईया, मइले कप्पड तास।
खिलखी बइसी उनमनी, लांबे लेहि उसास॥११

सुन्दरियों ने जब उन्हें उदास देखा तो उसका कारण जानना चाहा क्योंकि साथ की सहेलियों ने कहा कि वे यौवनवती हैं उनकी देह भी रूप वाली है। फिर इतनी उदासी का क्या कारण है। यह सुनकर उन्होंने मधुर स्वर से अपना-अपना सच्चा दुख निम्न प्रकार कहा—

उन्होने कहा कि वे एक ही घर की अथवा जाति की नहीं अपितु मालिन, तम्बोलिन, छीपन, कलालिन एवं सुनारिन जाति की हैं। लेकिन विरह का कारण सब का समान है। इसलिए एक-एक ने अपने दुख का कारण कहना आरम्भ किया— सर्वप्रथम मालिन जाति की यौवना स्त्री ने कहा कि उसका पति उसे छोड़कर परदेश चला गया है। जिसके विरह से वह अत्यधिक दुःखी है। उसका एक दिन एक वर्ष के बराबर व्यतीत होता है। यौवनावस्था में पतिदेव परदेश चले गये हैं। रात्रि दिन आंखों में से आंसू बहते रहते हैं। कमल के समान मुख कुम्हला गया है। सारा बाग सूख गया है। शरीर रूपी वृक्ष पर फूल लगने लगे हैं तथा दोनों नारंगियां रस से ओतप्रोत हैं लेकिन अब वे विरह से सूखने लगी हैं क्योंकि वन को सींचने वाला माली परदेश गया हुआ है।

पहिली बोली मालनी मुझको दुख अनन्त।
बालइ यौवन छांडि कइ, चल्यु दिसाउरि कंत॥१७॥

निस दिन बहयई पवाल ज्यु, नयनह नीर अपार।
विरहइ माली दुक्ख का सूभर भरया किवार॥१८॥

कमल वदन कुमलाईया, सूकी सुख वनराइ।
बाभू पीयारइ एक खिन, बरस बराबरि जाइ॥१९॥

तन तरवर फल लागिया दुइ नारिंग रसपूरि।
सूखन लगा विरह झल, सींचन हारा दूरि॥२०॥

दूसरी विरहिणी तम्बोलिन थी। वह पति के विरह में इतनी दुर्बल हो गयी थी कि चोली मात्र से ही पूरा शरीर ढक जाता था। वह हाथ मरोड़ती, सिर धुनती और पुकारती। उसका कोमल शरीर जलता। मन में चिन्ता छाये रहती और आंखों से अश्रु धारा कभी रुकती ही नहीं। जब से उसके पिया बिछुड़े तब से ही उसके मुख का सरोवर सूख गया---

हाथ मरोरउ सिर धुनउं, किस सउ करूं पुकार।
तन दाभई मन कलमलइ, नयन न खंडइ धार ॥२५॥
पान झडे सब रूंख के, बेल गई तनि सुकि।
दूभरि रति बसंत की, गया पियारा मुकि ॥२६॥
हीयरा भीतरि पइसि करि, विरह लगाइ आगि।
प्रीय पानी बिनि ना बुझवइ, बलीसि सबली लागि ॥२७॥

छीपन आंखों में आंसू भर कर कहने लगी कि उसके विरह का दुःख वही जानती है, दूसरा कोई नहीं जानता। तन रूपी कपड़े को दुःख रूपी कतरनी से वह दर्जी (प्रियतम) एक साथ तो काटता नहीं है और प्रतिदिन देह को काटता रहता है। विरह ने उसके शरीर को जला कर रख दिया है। उसका सारा रस जला कर उसको नीरस कर दिया है।

तन कपडा दुक्ख कतरनी दरजी बिरहा एह।
पूरा ब्योंत न ब्योंतई, दिन दिन काटइ देह ॥३२॥
दुःख का तागा बीटीया सार सुई कर लेइ।
चीनजि बंधइ प्रविकाम करि, नाम्हा बखीया देई ॥३३॥
विरहइ गोरी प्रसि दही, देह मजीठ सुरंग।
रस लियइ प्रवटाइ कइ, बाकस कीया अंग ॥३४॥

चौथी कलालिन थी। वह कहने लगी कि उसका शरीर तो भट्टी की तरह जल रहा है। आंखों में से आंसू बरस रहे हैं जो मानों अर्क बन रहा है। उसका भरतार बिना अवगुन के ही उसको कस रहा है। एक तो फागुन का महिना फिर यौवनावस्था, लेकिन उसका प्रियतम इस समय बाहर गया हुआ है इसलिए उसकी याद कर करके वह मर रही है।

मो तन माटी ज्यूं तपइ, नयन चुवइ मद धारि।
बिन ही अवगुन मुझ सूं, कसकरि रहा भरतार ॥३६॥
माता योवन फाग रिति, परम पियारा दूरि।
रली न पूर्जे जीव की, मरउ विसूरि विसूरि ॥४२॥

पांचवी विरहिणी सुनारिन थी। वह तो विरह रूपी समुद्र में इतनी डूब गई थी कि उसका थाह पाना ही कठिन था। उसके अंगों को मदन रूपी सुनार ने हृदय रूपी अंगीठी पर जला जलाकर कोयला कर दिया था। उसके विरह ने तो उसका रूप ही चुरा लिया जिससे उसका सारा शरीर सूना हो गया।

हूं तउ बूडी विरह मइ, पाउं नाहीं थाह ।।४५।।

हीया अंगीठी ससि जिय, मदन सुनार अभंग ।
कोयला कीया देह का मिल्या सवेह सुहाग ।।४६।।

इस प्रकार पांचों विरहिणी स्त्रियों से छीहल कवि ने जब उनके विरह दुःख का वर्णन सुना तो संभवतः वे भी दुःखी हो गये। अन्त में कवि को भी कहना पड़ा कि विरहावस्था ही दुःखावस्था है। जिसमें पल भर को सुख नहीं मिलता।

छीहल बयरी विरह की घडी न पाया सुख ।
हम पंचइ तुम्हसउं कह्या, अपना अपना दुःख ।।५१।।

कुछ दिनों पश्चात् फिर वे पांचों मिली। वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के साथ-साथ उनके पति भी परदेस से वापिस आ गये थे। इसलिए वे हंसने लगीं, गाने लगीं। उस दिन वे पूरे शृंगार में थीं। छीहल ने जब उन्हें हंसते हुए देखा तो उन्होंने फिर उन स्त्रियों से पूछा--

विहसी गावइहि रहिसमूं कीया सइ सिंगार ।
तब उन पंच सहेलियां, पूछी दूजी बार ।।५४।।

मइ तुम्ह आमन दूमनी देखी थी उतवार ।
अब हूं देखूं विहसती, मोसउ कहउ विचार ।।५५।।

उनका सांई आ गया था। वियोगिन बसन्त ऋतु जा चुकी थी। मिलन की वर्षा ऋतु आ गई थी। मालिन के मुख रूपी पुष्प को पति ने मधुकर बनकर खूब पी लिया था। तम्बोलिन ने चोली खोल कर अपार यौवन भरी देह को निकाला और अपने पति के साथ बहुत प्रकार से रंग किया। आंखों से आंख मिली और अपूर्व सुख का अनुभव किया।

मालिन का मुख फूल ज्यउं बहुत विगास करेइ ।
प्रेम सहित गुन्जार करि, पीय मधुकर सलेइ ।।५८।।

चोली खोल तम्बोलनी काढया गात्र अपार ।
रंग कीया बहु प्रीयसुं, नयन मिलाई तार ।।५९।।

रचना काल

पञ्च सहेली गीत का रचना काल संवत् १५७५ फागुण सुदि पूर्णिमा है। उस दिन होली थी और कवि भी होली के उन्मुक्त आनन्द में ऐसी सरस रचना लिखने में सफल हुए थे। इसलिए स्वयं ने लिखा है कि उसने अपने मन के मधुर भावों से इस रचना को निबद्ध किया है।

मीठे मन के भावते, कीया सरस बखाण।
अण जाण्या मूरिख हसइ, रीझइ चतुर सुजांण ॥६७॥

भाषा

छीहल राजस्थानी कवि हैं। उनकी कृतियों की भाषा के सम्बन्ध में डा० शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है कि कवि की कुछ पाण्डुलिपियाँ ब्रजभाषा के निकट है जबकि कुछ पर राजस्थानी प्रभाव ज्यादा है। आमेर शास्त्र भण्डार वाली पाण्डुलिपि को उन्होंने राजस्थानी प्रभावित कहा है। लेकिन अन्त में वे यही निष्कर्ष निकालते हैं कि पञ्च सहेली गीत की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है।[1] अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में इसकी चार प्रतियां हैं जिनमें तीन का नाम तो "पञ्च सहेली री बात" दिया हुआ है।[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रतिलिपिकार उसे राजस्थानी भाषा की कृति मान कर चलते थे। वैसे कृति की अधिकांश शब्दावली राजस्थानी भाषा की है। न्हाईया (११) प्रवालीयां (१२) बालीयां (१३) चल्यु (१७) कुमलाईया (१६) नंणाकेरी (२२) बीछुडया (२६) आदि शब्द एवं क्रिया पद सभी राजस्थानी भाषा के हैं।

पञ्च सहेली गीत एक लोकप्रिय कृति रही है। राजस्थान के कितने ही शास्त्र भण्डारों में इसकी प्रतियां संग्रहीत है।

१. दि० जैन शास्त्र भण्डार मन्दिर ठोलियान — गुटका संख्या ६७।
२. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर — गुटका संख्या १३८।
३. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर चौधरियों का मालपुरा (टोंक) — गुटका संख्या ११।
४. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी केटलाग राजस्थानी सेक्सन न० ७८ छंद सं० ६६ पत्र १६-२२ लिपि काल सं० १७१८।
५. ,, ,, ,, नं० १४२ पृ० ७६-७७।

---

१. सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—पृ० १७०-७१।
२. वही।

६. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी केटलाग राजस्थानी सेक्सन नं० २१७—ग्रन्त में संस्कृत श्लोक भी दिये हुए हैं।

७. ,, ,, ,, नं० ७७ पत्र सं० ९८–१०२ लिपिकाल संवत् १७४९।

मूल्यांकन

पञ्च सहेली गीत राजस्थानी भाषा की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें श्रृंगार रस का बहुत ही सूक्ष्म तथा मार्मिक वर्णन हुआ है। वियोग श्रृंगार में विरहिणी नायिकाओं के अनुभावों का चित्रण उन्हीं के शब्दों में इतना संवेद्य और अनुभूतिपरक है कि कोई भी सहृदय विरह की इस दंशकारी वेदना से व्याकुल हुए बिना नहीं रहता।[1] कवि ने उसमें वियोग तथा संयोग दोनों का ही चित्रण कर के साहित्य में एक नयी परम्परा को जन्म दिया है। उन्हीं पांचों स्त्रियों की संयोग में मनोभावों की दशा एकदम बदल जाती है। एक तम्बोलिन की मनोदशा वर्णन में तो कवि ने सब सीमाओं को लांघ दिया है। वास्तव में विरह में और मिलन में यौवना स्त्री की क्या दशा रहती है कवि ने इसका बहुत ही सूक्ष्म हृदय ग्राही वर्णन करके पाठकों को आश्चर्य चकित कर दिया है। भाषा एवं शैली दोनों दृष्टियों से भी पञ्च सहेली गीत एक उत्कृष्ट रचना है। राजस्थानी भाषा साहित्य में इस लघु काव्य को एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिये।

२. बावनी

छीहल कवि की यह दूसरी बड़ी रचना है जिसमें कवि ने कितने ही विषयों को छुआ है। प्रो० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' के शब्दों मे बावनी में वर्णित नीति और उपदेश के विषय हैं तो प्राचीन पर प्रस्तुतीकरण की मौलिकता, प्रतिपादन की विशदता एवं दृष्टान्त चयन की सूक्ष्मता सर्वत्र विद्यमान है। कवि संस्कृत के सुभाषितों एवं नीतियों का ऋणी है। पर उनके अनुवादन अनुधावन मात्र नहीं है।[2] प्रस्तुत कृति भाषा एवं भाव दोनों के परिपाक का उत्तम उदाहरण है। यद्यपि नीति और उपदेशात्मक विषयों का वर्णन बावनी का मुख्य विषय है फिर भी कवि कभी भी काव्य से दूर नहीं हुआ। उसने अपने विषय को नये ढंग एवं नये भावों के साथ अभिव्यक्त किया है।

---

१. सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—पृ० २०७।

२. मरुभारती–वर्ष १५ अंक २—पृ० ९।

जैन विद्वानों ने बावनी संज्ञक काव्य लिखने में प्रारम्भ से ही रुचि दिखाई है। ये बावनियां किसी एक विषय पर आधारित न होकर विविध विषयों का वर्णन करती हैं। बावनी लिखने वाले कवियों में डूंगरसी, बनारसीदास, जिनहर्ष, दयासागर, ब्र० माणक, मतिशेखर, हेमराज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जैन कवि न तो अपने पौराणिक कथानकों में ही बंधे रहे और न उन्होंने सामन्तों के चित्रण में जन सामान्य को भुलाया। जैन काव्य में विराग और कष्ट सहिष्णुता पर बहुत बल दिया गया है। यह भी सत्य है कि इस प्रकार सदाचरण के नीरस उपदेश काव्य को उचित महत्त्व नहीं देते किन्तु यह केवल एक पक्ष है। अपने अध्यात्म जीवन को महत्त्व देते हुए तथा पारलौकिक सुखों के लिए अति सचेष्टा दिखाते हुए भी जैन कवि उन लोगों को नहीं भुला सका जिनके बीच वह जन्म लेता है। उसके मन में अपने आस-पास के लोगों के सुखी जीवन के लिए अपूर्व सदिच्छा भरी हुई है। वह सृष्टि की सारी सम्पत्ति जनता के द्वार पर जुटा देना चाहता है।[1]

बावनी का एक-एक छप्पय नीति के रत्न हैं जो अपनी प्रभा से उद्भासित और प्रकाशित हैं। कवि ने बड़ी सभ्यता से मर्यादा, नीति और न्याय के पक्ष का समर्थन करते हुए पाखंडियों और स्वार्थियों की खबर ली है। जगत का स्वभाव प्रस्तुत किया है तथा उसमें मानव को अच्छे कार्य करने की प्रेरणा दी है।

प्रस्तुत बावनी का हिन्दी की बावनियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य शुक्ल ने यद्यपि इसमें ५२ दोहे होना लिखा है पर इसमें ५३ छप्पय छन्द हैं जो ओम से प्रारम्भ होकर नगराक्षर क्रम से निबद्ध हैं। क्रम निर्वाह के लिये ओ, औ, क्ष, त्र वर्ण छोड़ दिये गये हैं तथा ङ, एवं ञ के स्थान पर न का तथा ऋ, ॠ, लृ, ॡ, य, व, श, के स्थान पर क्रमशः रि, री, लि, ली, ज, बो, स, का प्रयोग किया गया है। कई अन्य कवियों द्वारा रचित बावनियों में भी वर्णमाला का यह परिवर्तित रूप पद्य क्रम के लिये प्रयुक्त हुआ है।[2] बावनी के प्रारम्भिक पांच पदों में आदि अक्षरों के द्वारा ॐ नमः सिद्ध' बनता है जो कवि के जैन होने का द्योतक है।

बावनी का प्रथम पद्य मंगलाचरण के रूप में तथा अन्तिम पद्य में कवि ने बावनी का रचना काल एवं स्वयं का परिचय दिया है। इसके शेष छन्द नीति एवं उपदेश परक हैं। कवि ने बावनी में विषय का अथवा नीति एवं उपदेशों का कोई क्रम नहीं रखा है किन्तु जैसा भी उसे रुचिकर प्रतीत हुआ उसी का वर्णन कर दिया।

---

१. सूर पूर्व ब्रज भाषा और साहित्य—पृ० २८१।

२. मरु भारती वर्ष १५ अंक—२ पृ० ६।

विषय प्रतिपादन

प्रारम्भ में पांच इन्द्रियों के विषयों में यह जीव किस प्रकार उलझा रहता है और अपने मन को अस्थिर कर लेता है। हाथी स्पर्शन इन्द्री के वशीभूत होकर, हरिण श्रवण इन्द्री के कारण अपनी जान गंवा देता है। यही नहीं रसना इन्द्री के कारण मछलियां जाल में फंस जाती हैं। भंवरा एवं पतंग भी इसी तरह काल में फंसकर अपने जीवन का अन्त कर लेते हैं—

नाद श्रवण धावन्त तजइ मृग प्राण ततख्यिण।
इन्द्री परस गयन्द बास अलि मरइ बिचख्यण।
रसना स्वाद विलग्गि मीन बज्झइ देखन्ता।
लोयण लुबुध पतंग पडइ पावक पेखंता।
मृग मीन भंवर कुंजर पतंग, ए सब विणासइ इक्क रसि।
छीहल कहइ रे लोइया, इन्दी राखउ अप्प वसि।।२।।

कवि ने समस्त जगत को स्वार्थमय बतलाया है। मनुष्य जगत् में आता है और कुछ जीवन के पश्चात् वापिस चला जाता है। यह सब उसी तरह है जैसे फलों से लदे वृक्ष पर पक्षी आकर बैठ जाते हैं और फल समाप्त होने तथा पत्ते झड़ने पर सब उड़ जाते हैं। उसी तरह मनुष्य जगत् से स्वार्थ के लिए अथवा धन के लिए मित्रता बांधता है और वे मिल जाने के पश्चात् उसे वह भुला बैठता है।

छाया तरुवर पिख्खि आइ, बहु बसै विहंगम।
जब लगि फल सम्पन्न रहै, तब लगि इक संगम।
निहवसि परि अवध्ध, पत्त फल झरै निरन्तर।
खिण इक तथ्थ न रहइ, जाहि उडि दूर दिसंतर।
छीहल कहै द्रुम पंखि जिम महि मित्र तणु दब्ब लगि।
पर कज्ज न कोऊ वल्ल हौ, अप्प सुवारथ सयल जगि।।२६।।

मनुष्य को थोड़े-थोड़े ही सही लेकिन कुछ अच्छे कार्य करने चाहिए। दूसरों के हित के लिए विनयपूर्वक धन दिन भर देते रहना चाहिए अर्थात् भलाई एवं दान के लिए कोई समय निश्चित नहीं होता। कवि कहता है कि जब तक शरीर में श्वास है तब तक अपने ही हाथों से अपनी सम्पत्ति का उपयोग कर लेना चाहिए क्योंकि मरने के पश्चात् वह उसके लिए बेकार है। कवि ने बीसल राजा की उपमा दी है जो १६ करोड़ का धन जोड़ कर छोड़ गया और उसका जीवन पर्यन्त भोग और दान किसी में भी उपयोग नहीं किया।

थोरो थोरो मांहि, समय कछु सुकृति कीजइ।
विनय सहित करि हित्त, वित्त सारूं दिन दीजइ।
जब लगि सांस सरीर मूढ विलसहु निज हत्थहि।
मुवा पछै लंपटी, लच्छी सग्गं नहि सत्यहि।
छीहल कहइ बीसल नृपति संचि कोडि उगणीस दब्ब।
लाहो न लियो भोगविम, करि अंतकाल गो छांडि सब्ब ।।३६।।

मनुष्य जीवन भर भविष्य की कल्पना करता रहता है और मृत्यु की ओर जरा भी सचेत नहीं रहता लेकिन जब मृत्यु आती है तो उसकी सब आशाएँ धरी की धरी रह जाती हैं और वह कुछ भी नहीं कर सकता। जिस प्रकार मधुकर कमल पुष्प में बन्द होने के पश्चात् सुखद प्रातःकाल की कल्पना करता है लेकिन उसे यह पता नहीं कि उसके पूर्व ही कोई हाथी आकर उसकी जीवन लीला समाप्त कर सकता है इसलिए भविष्य की आशाओं की कल्पना छोड़कर वर्तमान में अच्छे कार्य कर लेना चाहिए—

भ्रमर इक्क निसि भ्रमें, परो पंकज के संपुटि।
मन महि मंडै आस, रयणि खिण मांहि जाइ वटि।
करि हैं जलज विकास, सूर परभाति उदय जब।
मधुकर मन चितवै, मुक्त ह्वैहैं बन्धन तब।
छीहल द्विरद ताही समय, सर संपत्तउ दइव वसि।
अलि कमल पत्र पुंडरिग सहित, निमिष माहि सो गयो ग्रसि ।।४३।।

इस प्रकार पूरी बावनी सुभाषितों एवं उपदेशात्मक पद्यों से भरी पड़ी है। उसका प्रत्येक पद्य स्मरणीय है तथा मानव को विपत्ति से बचा कर सुकृत की ओर लगाने वाला है। सभी सुभाषित सम्प्रदाय भावनाओं से दूर किन्तु मानवता तथा विश्व सेवा का पाठ पढ़ाने वाले हैं। मानव को राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान एवं माया के चक्कर से बचाने वाले हैं। यही नहीं जगत का वास्तविक स्वरूप को भी प्रस्तुत करने वाले हैं। कवि ने इन पद्यों में अधिक से अधिक भावों को भरने का प्रयास किया है। इसलिए कवि की प्रस्तुत बावनी हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा की सुन्दरतम कृतियों में से है।

भाषा

भाषा की दृष्टि से बावनी राजस्थानी भाषा की कृति है। इसमें अपभ्रंश शब्दों की जो भरमार है वे इसके राजस्थानी रूप को ही व्यक्त करने वाले हैं। डा० शिवप्रसाद सिंह ने बावनी को ब्रजभाषा के विकास की कड़ी के रूप में माना है

जो सूरदास के ब्रजभाषा का परिवर्ती रूप है लेकिन बावनी में ब्रज का ही नहीं अपभ्रंश एवं राजस्थानी का भी परिस्कृत रूप देखा जा सकता है।

> छीहल कहइ गल गज्जि करि, जो जल उलहरि देइ घन।
> चातक्क नीर ते परि पियै, ना तो पियासो तजै तन ॥३४॥

रचना काल

बावनी की रचना संवत् १५८४ कातिक सुदी अष्टमी गुरुवार के दिन सम्पन्न हुई थी। कवि ने अपने श्री गुरु का नाम लेकर रचना प्रारम्भ की थी और सरस्वती की कृपा से उसकी यह रचना सानन्द समाप्त हुई थी।

> चउरासी अग्गला सइ जु पनरह सवच्छर।
> सुकुल पख्ख अष्टमी मास कातिग गुरुवासर।
> हृदय उपनी बुद्धि नाम श्री गुरु को लीन्हो।
> सारद तणइ पसाइ कवित संपूरण कीन्हो।

कवि का परिचय

बावनी के अन्तिम पद्य में कवि ने अपना परिचय दिया है। वह नाथू का पुत्र था। अग्रवाल जैन जाति में उत्पन्न हुआ था तथा उसका वंश नाल्हिग कहलाता था।

> नाल्हिग वंससि नाथू सुतनु अगरवाल कुल प्रगट रवि।
> बावन्नी वसुधा विस्तरी, कवि कंकण छीहल्ल कवि ॥५३॥

बावनी अपने समय में लोकप्रिय कृति रही है तथा उसका संग्रह गुटकों में मिलता है जिससे पता चलता है कि पाठक इसे चाव से पढ़ा करते थे। अब तक राजस्थान के जैन ग्रंथागारों में बावनी की निम्न पाण्डुलिपियां उपलब्ध हो चुकी हैं—

१. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरणजी पांडे, जयपुर	गुटका संख्या १४० लेखन काल सं० १७१६ (इसमें २२ से ५३ तक के पद्य हैं)
२. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर डोलियान	गुटका संख्या १२५ (इसमें ५० पद्य हैं)
३. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर	गुटका संख्या ३५ (इसमें ५३ पद्य हैं)

४. उक्त कृतियों के अतिरिक्त, अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर तथा अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर में भी बावनियों की पाण्डुलिपियां मिलती हैं।[1]

---

१. सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य पृ० ३७७।

इस प्रकार बावनी राजस्थानी भाषा की एक उत्कृष्ट रचना है जिसकी पाण्डुलिपियां राजस्थान के और भी भण्डारों में उपलब्ध हो सकती हैं।

वैराग्य गीत मानव को जीवन में अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरणा स्वरूप है। बचपन, यौवन एवं वृद्धावस्था तीनों ही ऐसे ही निकल जाते हैं और जब मृत्यु आती है तो यह मनुष्य हाथ मलने लगता है इसलिए अच्छे कार्य तो जितना जल्दी हो कर लेना चाहिए। यही गीत का सार है जिसको कहने के लिए कवि ने प्रस्तुत गीत निबद्ध किया है।

उदर गीत में कवि कहता है कि सारा जीवन यदि उदर पूर्ति में ही व्यतीत कर दिया और अगले जन्म के लिए कुछ नहीं किया तो यह मनुष्य जीवन धारण करना ही व्यर्थ जावेगा। कवि की भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में ऐसा कोई सुकृत कार्य अवश्य करले जिससे उसका भावी जीवन भी सुधर जावे।

इस प्रकार छीहल कवि की कृतियां राजस्थानी काव्यों में उल्लेखनीय कृतियां हैं। सभी कृतियां जन कल्याण की भावना से लिखी हुई हैं। इनमें शिक्षा है, उपदेश है, नीति और धर्म का पुट है तथा लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों की कहानी प्रस्तुत की गयी है।

□□□

१. पंच सहेली गीत

नगर वर्णन—

देखा नगर सुहावणा, अधिक सुचंगा थान।
नाउं चंदेरी परगट, जन सुर लोक सुजान ॥१॥

ठाइ मिंदिर सत खिने, सो नइ लिहिया लेहु।
छीहल तन की उपमा कहत न आवइ छेहउ ॥२॥

ठाइ ठाइ सरवर पेखीया, सू सर भरे निवाए।
ठाइ कुवा बावरी, सोहइ फटक समान ॥३॥

पवन छतीसी तिहां वसइ, अति चतुराई लोक।
गुण विद्या रस आगला, जानइ परिमल लोग ॥४॥

तिहा ठइ नारी पेखीयइ, रंभा केउ निहारि।
रूप कंत ते आगली, अवर नहीं संसार ॥५॥

पहरि सभाया आभरण, अर दख्यण के चीर।
बहुत सहेली साथि मिलि, आई सरवर तीर ॥६॥

चोवा चंदन थाल भरि, परिमल पहुप अनंत।
खंडहु बीडी पान की, खेलहु सखी बसंत ॥७॥

केइ गावइ मधुर धुनि, केइ देखहि रास।
केइ हींडोलइ हीडती, इह विधि करइ विलास ॥८॥

तिन मांहि पंच सहेलियां, नाचइ गावहि ना हसइ।
ना मुखि बोलइ बोल.............. ....॥९॥

नयनहु काजल ना दीउ, ना गलि पहिन्दो हार।
मुख तंबोल न खाईया, ना कछु कीया सिंगार ॥१०॥

रूखे केस ना न्हाईया, मइले कप्पड तास।
बिलखी बइसी उनमनी, लावे लेहि उसास ॥११॥

सूके अहर प्रवालीयां, अति कुमलाणा मुख।
तउ मइ बूझी जाइ कहु, तुम्ह कहउ केतउ दुख ॥१२॥

दीसय योवन बालिया, रूप दीपंती देह ।
मोसउं कहउ विचार, जाति तुम्हारी केह ॥१३॥

तउ ऊमि सब भाखीया, मीठा बोल अपार ।
ना वह मारी जाति की, छीहल्ल सुनहु विचार ॥१४॥

मालन अर तंबोलनी, तीजी छीपनि नारि ।
चउथी जाति कलालनी, पंचमी सुनारि ॥१५॥

जाति कही हम तम्ह सउ, अब सुनि दुख हमार ।
तुम्ह तउ सुगना आदमी, कहउ विराणी सार ॥१६॥

मालिन की विरह व्यथा—

पहिली बोली मालनी, मुझ कू दुख अनंत ।
बालइ योवन छंडि कइ, चल्यु दिसाउरि कंत ॥१७॥

निस दिन बहइ पवालज्यु, नयनह नीर अपार ।
विरहउ माली दुक्ख का, सूभर भरया किनार ॥१८॥

कमल वदन कुमलाईया, सूकी सुख वनराइ ।
वाभू पीया रइ एक दिन, वरस बराबरि जाइ ॥१९॥

तन तरवर फल लग्गीया, दुइ नारिंग रस पूरि ।
सूकन लागा विरह फल, सींचन हारा दूरि ॥२०॥

मन बाडी गुण फूलडा, प्रीव नित लेता बास ।
अब वह थानकि रात दिन, पीडइ विरह उदास ॥२१॥

चंपा केरी पंखडी, गूंथ्या नव सर हार ।
जइ हुं पहिरउ पीव विन, लागइ अंग अगार ॥२२॥

मालनि अपना दुःख का, विवरा कह्या विचार ।
अब तूं वेदन आपनी, आखि तंबोलन नार ॥२३॥

तम्बोलिन की विरह व्यथा—

दूजी कहइ तंबोलनी, सुनि चतुराई बात ।
विरहइ मार्‌या पीव विन, चोलो भीतरि गात ॥२४॥

हाथ मरोरउ सिर धन्यु, किस सउं कहु पोकार ।
जउती रासा नालहा, करइ न हम विस भार ॥२५॥

पान झडे सब रूंख कै, बेल गई तनि सुक्कि ।
ढूंभरि रति बसंत की, पया पीयरा मुक्कि ॥२६॥

हीयरा भीतरि पइसि करि, बिरह लगाई आगि ।
प्रीय पानी बिनि नां बूझवइ, बलीसि सबली लागी ॥२७॥

तन बाली बिरहउ दहइ, परीया दुक्ख असेसि ।
ए दिन दुभरि क्यउं भरइ, छाया प्रीय परदेसि ॥२८॥

जब थी वालम बीछुड्या, नाठा सरिसरि सुख ।
छीहल मो तन बिरह का, नित्त नवेला दुख ॥२९॥

कहुउ तंबोलनि आप दुक्ख, अब कहि छीपन एह ।
पीव चलंतइ तुझसउं, बिरहइ कीया छेह ॥३०॥

छीपन का बिरह वर्णन—

बीजी छीपनि आखीया, भरि दुइ लोचन नीर ।
दूजा कोइ न जानही, मेरइ जीय की पीर ॥३१॥

तन कपडा दुक्ख कतरनी, दरजी बिरहा एह ।
पूरा ब्योंत न ब्योंतइ, दिन दिन काटइ देह ॥३२॥

दुक्ख का तागा वाटीया, सार सुई कर लेइ ।
चीनजि बंधइ प्रवि काम करि, नान्हा बखीया देइ ॥३३॥

बिछुहए गोरी प्रतिवही, देह मजीठ सुरंग ।
रस लीया अवटाइ कइ, बाकस कीया अंग ॥३४॥

माड मरोरी निचोरि कइ, खार दिया दुख अंसि ।
इहु हमारे जीव कहुं, मइ न करी इहु भंति ॥३५॥

सुख नाठा दुख संचरया, देही करि दहि छार ।
बिरहइ कीया कंत बिनि, इम अम्ह सु उपगार ॥३६॥

कलालिन का बिरह—

छीपनि कह्या विचार करि, अपना सुख दुख रोइ ।
अबहि कलालनि आखि तुं, बिरहइ याई सोइ ॥३७॥

चउथी दुख सरीर का, लागी कहन कलालि ।
हीयरइ प्रीयका प्रेम की, नित्त खटूकइ भालि ॥३८॥

मोतन माठी ज्यु' तपइ, नयन झुवइ मद वारि ।
विनही अवगुन मुझ सु', कस कर रह्या भरतार ।।३९।।

देखिइ केली तरु दई, विरह लगाई आइ ।
वालंभ उलटा हुइ रह्या, परजप छारी खाइ ।।४०।।

इस विहरइ के कारणइ, धन बहु वारू कीय ।
चित्त का चेतन टाहुस्या, गया पीयरा लेय जीय ।।४१।।

माता योवन फाग रिति, परम पीयारा दूरि ।
रली न पूरी जीयकी, मरउ विसूरि विसूरि ।।४२।।

हीयरा भीतरि झूर रहु', कहु' घणेरा सोस ।
बइरी हुआ बालहा, विहरइ किसका दोस ।।४३।।

मोसउ' ब्युरा विरहु का, कह्या कलालन नारि ।
इहु कुछ दुख सरीर महि, सो तु आखि सुनारि ।।४४।।

सुनारिन की व्यथा—

कहइ सुनारी पंचमी, अंग उपना दाहु ।
हु' तउ बूडी विरहु मइ, पाउ' नाही थाहु ।।४५।।

हीया अंगीठी सुसि जिय, मदन सुनार अभंग ।
कोयला कीया देह का, मिल्या सवेइ सुहाग ।।४६।।

टंका कलिया दुख का, रेती न देइ धीर ।
मासा मांसा न मूकीया, सोष्या सब सरीर ।।४७।।

विहरहु रूप चुराइया, सूना हुआ मुझ जीव ।
किस हइ पुकारू' जाइ कइ, अब घरि नाही पीव ।।४८।।

तन तोले कंटउ धरी, देखी किस किस जाइ ।
विरहा कुंड सुनार ज्युउ', घडी फिराय पिराइ ।।४९।।

खोटी बेदन विरह की, मेरो हीयरो माहि ।
निसि दिन काया कलमलइ, ना सुख धूपनि छांह ।।५०।।

छीहल वयरी विरहु की, घडी न पाया सुख ।
हम पंचइ तुम्ह सउ' कह्या, अपना अपना दुख ।।५१।।

कहि करि पंचउ सखीयां, अपने दुख का छेह ।
बाहुरि वइ दूजी मिली, जबह धडूक्या मेह ॥५२॥

मुइ नीली घन पुंबरि, गुनिहि चमकी बीज ।
बहुत सखी के झूड मई, खेलन आइ तीज ॥५३॥

विहसी गावइ हि रहिसमुं, कीया सह संगार ।
तब उन पंच सहेलीयां, पूछी दूजी बार ॥५४॥

छीहल का पांचों स्त्रियों से पुनर्मिलन—

मइं तुम्ह आमन दूमनी, देखी थी उतबार ।
अब हुं देखुं विहसती, मोसउं कहुउ विचार ॥५५॥

छीहल हम तउ तुम्ह सउं, कहती हुइ सतभाइ ।
सांई आया रहसमुं, ए दिन सुख माहि जाइ ॥५६॥

गया वसंत वियोग मइ, अर धुप काला मास ।
पावस रिति पीय आवीया, पूगी मन की आस ॥५७॥

मालनि का मुख फूल ज्यउं, बहुत विगास करेइ ।
प्रेम सहित गुंजार करि, पीय मधुकर सलेइ ॥५८॥

चोली खोल तंबोलनी, काढ्या गात्र अपार ।
रंग कीया बहु प्रीयसुं, नयन मिलाई तार ॥५९॥

छीपनि करइ वधाईयां, जउ सब आए दिठ्ठ ।
अति रंगिराती प्रीयसु, ज्यउं कापडइ मजीठ ॥६०॥

योवन कालइ लटकती, रसि कसि भरी कलालि ।
हसि हसि लागइ प्रीय गलि, करि करि बहुली आलि ॥६१॥

मालनि तिलक दीपाईया, कीया सिंगार अनूप ।
आया पीय सुनारि का, चढ्या सवगणा रूप ॥६२॥

पी आया सुख संपज्या, पूगी सबइ जगीस ।
तब वइ पंचइ कांमिनी, लागी दयन असीस ॥६३॥

हुंउ वारी तेरे बोलकुं, जहिं वरणवी सुहाइ ।
छीहल हम जग मांहि रही, रह्या हमारा नाव ॥६४॥

धनिस मंदिर धन्न दिन, धनस पीवस एह ।
धन्न बल्लभ घरि आईया, धनस वुट्ठा मेह ।।६५।।

निस दिन जाइ आनंद मइ, विलसइ बहु विध भोग ।
छीहल्ल पंचइ कामिनी, पाई पीय संजोग ।।६६।।

मीठे मन के भावते, कीया सरस बखाण ।
अण आण्या मूरिख हसइ, रीझइ चतुर सुजाण ।।६७।।

संवत् पनर पचहुत्तरइ, पुंनिम फागुण मास ।
पंच सहेली वरणवी, कवि छीहल्ल परगास ।।६८।।

।। इति पंच सहेली गीत सम्पूर्ण ।।

लिख्यतं परोपकाराय ।। श्री रस्तु ।।

□ □ □

गुटका संख्या ६६ । पत्र संख्या ११–१२ । शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरणजी पांडे, जयपुर ।

२. बावनी

ओंकार आकार, रहित अविगति अपरम्पर ।
अलख अजोनी संभु, सृष्टिकरता विश्वम्भर ।
घट घट अन्तर बसइ, तासु चीन्हइ नहि कोई ।
जल थलि सुरगि पयालि, जिहां देखो तिहँ सोई ।
जोगिन्द सिद्ध मुनिवर जिके, प्रबल महातप सद्धयो ।
छीहल्ल कहइ अस पुरुष को, किण ही अन्त न लद्धयो ।।१।।

नाद श्रवण ध्यावन्त, तजइ मृग प्राण ततखिण ।
इन्द्री परस गयन्द, बास अलि मरइ विचष्यण ।
रसना स्वाद विलग्गि, मीन अरुझइ देषन्ता ।
लोयण लुबुध पतंग, पडइ पावक पेषन्ता ।
मृग मीन भंवर कुंजर पतंग, ए सब विणसइ इक्क रसि ।
छीहल कहइ रे लोइया, इन्द्री राखउ अप्प बसि ।।२।।

मृग बन मज्झि चरंति, डरिउ पारधी पिक्खि तिहि ।
जब पाछिउ पुनि चल्यो, वधिक रोपियउ फंद तिहि ।
दिसि दाहिणी सु स्वान, सिंह ज्युं सनमुख आवै ।
वाम अगिनि परजलिय, तासु भय जाण न पावै ।
छीहल्ल गमण चहुं दिसि नहीं, चित चिंता चिंतउ हरण ।
हा हा देव संकट पर्यो, तुझ बिन अवर न को सरण ।।३।।

सबल पवन उतपन्न, अगिनि उडि फंद दहे सब ।
ततखिण घन बरसंत, तेज दावानल गौ तब ।
दिसि दाहिणी जु स्वान, पेषि जंबुक को धायउ ।
जब जान्यो मृग जात, चित्त पारधी रिसायउ ।
तारणंत[1] धनुष[2] गुण तुट्टिगो, दिसि च्यारउ मुगती भई ।
छीहल न को मारवि सकै, जिहि रष्यण हारा दई ।।४।।

---

१. अनचिन्त
२. बाण

धन्य ति नर सलहिजैं, जे हि परकज्जु संवारण।
भीर सहै तन आपु, सामि संकट्ट उवारण।
कंधो धर कुल भज्झि, सभा सिंगार सुलक्खण।
विनयवंत बड-चित्त, अवनि उपगार विचक्खण।
आचार[1] सहित अति हित सौ, धरम नेम पालै घणो।
पर तरुणि पेषि छीहल कहै, सील न षंडइ आपणो ॥५॥

अवनि अमर नहि कोई, सिद्ध साधक अरु मुनिवर।
गण गंधर्व मनुष्य, जिष्य किन्नर असुरासुर।
पन्नग पावक उदधि, भार तरुवर अष्टादस।
ध्रुव[2] नषित्र ससि सुर, अन्त सब षपै काल बस।
प्रस्ताव पिषि रे नर चतुर, तां लगि कीजइ ऊंच कर।
तिहु भुवन मज्झि छीहल कहइ, सदा एक कीरति अमर ॥६॥

आवति जाचक[3] पेखि, द्वार सम देहु मूढ नर।
मिष्ट वयण बुल्लियइ, विनय कीजइ बहु आदर।
दिन दस अवसर पेखि, वित्त विलसियै सुजस लगि।
षिण रीती षिण भरी, रहिटी घटी सारिस लगि।
चिरकाल दसा निहचल नहीं, जिमि ऊगई तिमि आथमण।
पलटियै दसा छीहल कहइ, बहुरी बात पुच्छै[4] कवण ॥७॥

इन्द्री पंचिय अथिर, सकति जब लगि घट निर्मल।
जरा जंजीरी दूरि, षीण न हुवै आयुबल।
तब लगि भल पण, दान-पुण्य करि लेहु विचष्यण।
जब जम पहुंचइ आइ, सबै भूलिहइ तत्ष्यिण।
छीहल कहइ पावक प्रबल, जिमि घर पुर पट्टण दहइ।
तिणि काल कूप जो खुद्दियइ, सो उद्यम किमि निरवहइ ॥८॥

ईस ललाटहं मज्झि, मेहु कीयौ सु निरन्तर।
चहु दिसि सुरसरि सहित, वास तसु कीजइ अन्तर।

---

१. आधार
२. ध्रू नभ ग्रह
३. संपत्ति बार बार
४. बूभइ

पावक प्रबल समीपि, रहइ रखवाल रयणि दिन ।
प्रतिहार विसहर बलिष्ट, सोवइ नहि इकु छिन ।
अति जतन्न छीहल कहै, हर मस्तक हिमकर रहइ ।
पूर्व लेख चूकै नहीं, तऊ राहु ससि कौ ग्रहइ ॥९॥

उदरि मज्झि दस मासु, पिड पाश्र्व[1] बहुत दुख ।
उर्ध होइ दुइ चरण, रयणि दिन रहइ अधोमुख ।
गरभ अवस्था अधिक आधि, चिंता चिंतै चित्त ।
जो छूटौ इहि बार, बहुरि करहौं निज सुकृत ।
बोलइ जु बोल संकट पडइ, बहुरि जन्म जग महि भयौ ।
लागी जु बाउ छीहल कहइ, सबै मूढ़ नीसरि गयौ ॥१०॥

ऊसरि फागुण मास, मेह बरसइ घोरंकरि ।
विधवा पतिव्रत तणौ, रूप जोवण आनन परि ।
कवियण गुण विस्तार, नृपति अविवेकी आगे ।
सुपनन्तर की लच्छि, हाथ आवइ नहि जागे ।
करवाल कृपण कायर करहं, सुभ्र[2] गेह दीपक ज्यु ।
कवि छीहल अकारथ एह सब, विनय जु कीज्यै नीच स्यु ॥११॥

रितु ग्रीषम रवि किरण, प्रबल आंगइ निरन्तर ।
पावक सलिल समूह, मधर झिल्लत धारा धर ।
सीतकाल सीतल तुषार, दूरन्तर टाल्यउ ।
पत्त सही दुखत्थ, अधिक मितप्पण पाल्यउ ।
रे रे पलास छीहल कहै, धिक धिक जीवन तुम तणौ ।
फुल्लयौ पत्त अब मूढ तजि, ए अजुत्त कीधौ घणौ ॥१२॥

रीति होइ सो भरै, भरी खिण इक वै ढालै ।
राई मेर समाणि, मेर जड सहित उपालै ।
उदधि सोषि थल करै, थलहि जल पूरि रहै अति ।
नृपति मंगावइ भीख, रंक कूं थपै छत्रपति ।
सब बिधि समर्थ भजन घडन, कवि छीहल इमि उच्चरै ।
इक निमिष माहि करता, पुरुष करण चहै सोई करै ॥१३॥

---

१. वेखिये
२. सुनि मेह दीपक ज्यु

लिषा लखइ परमाणि, राम लष्मण बनवासी ।
सीय निसाचर हरी, भई द्रौपदि पुनि दासी ।
कुंती सुन वैराट गेह, सेवक होइ रहिया ।
नीर भरयौ हरिचंद, नीच घर बहु दुख सहिया ।
आपदा पड़ी परिग्रह तजि, भमे[1] इकेलउ नृपति नल ।
छीहल कहइ सुर नर असुर, कर्म रेख व्यापइ सकल ।।१४।।

लीन्ह कुदाली हत्थ प्रथम, षोदियउ रोस करि ।
करि रासभ आरूढ, घालि घाणियउ गूण भरि ।
देकरि लत्त प्रहार, मूठ गहि चक्क चढायौ ।
पुनरपि अग्गहि पुनि, घूप करि अधिक सुकायौ ।
दीन्हीं जु अगिनि छीहल कहइ, कुंभ कहइ हउं सहिउं सब ।
पर तरुणि आइ टकराहणी, ए दुख सालइ मोहि अब ।।१५।।

ए जु पयोहर जुगल, अबल उरि मज्झि उपन्ना ।
अति उन्नत अति कठिन, कनक घट जेम रवन्ना ।
कहि छीहल षिण इक्क, दृष्टि देषतां चतुर नर ।
धरणि पडइ मुरझाइ, पीर उपजत चित अन्तर ।
विधना विचित्र विधि चित्त करि, ता लगि कीन्हउ कृष्णमुख ।
होय श्याम वदन तिह नर तणो, जो पर हृदय देइ दुख ।।१६।।

ए ए तूं द्रुमराइ, न्याइ गरुवत्तण तेरो ।
प्रथम विहंगम लच्छ, आइ तहं लीयो बसेरो ।
फल भुंचै रस पिये, अवर संतोषइ काया ।
दुष्य सहै तन अप्प, करइ अवरन कूं छाया ।
उपकार लगै छीहल कहइ, धनि धनि तू तरुवर सुयण ।
संचइ जिमि संपइ उदधि पर, कज्जि न आवै से कृपण ।।१७।।

अमृत जिमि सुरसाल, चवति धुनि वदन सुहाई ।
पंषिन मंहि परसिद्ध, लहै सो अधिक बडाई ।
अंब वृक्ष मंहि बसए, ग्रसइ निर्मल फल सोई ।
ये गुण कोकिल अंग, पेषि बंदहि नहि कोई ।

---

१. भम्यौ ।

पापिष्ठ नीच खंजन सुती, करम सदा कमि मल सुगति ।
छीहल ताहि पूजइ जगत, करम तणी विपरीत गति ।।१८।।

अहनिस मज्जै मच्छ, कच्छ जल मज्झि रहै नित ।
मौन सहित बक ध्यान, रहै लयलीन इक्क चित ।
ऊदर गुफा निवास, भसम गादहो चढावइ ।
पवन अहारी सर्प, अंग भावरी मुडावइ ।
इनि मांहि कहउ किण पद लह्यौ, कहा जोग सांचे जुगति ।
छीहल कहै निष्फल सबै, भाव विना न हुवै मुगति ।।१६।।

कबहू सिर धरि छत्र, चढवि सुखासन धावइ ।
कबहू इकेलो भ्रमै, पाइ पाणही न पावइ ।
कबहि अठारह भष्य, करइ भोजन मन बंछित ।
कबहि न चलु संपजइ, पुधा पीडइस कलपे चित ।
सभै न कबहू तृण सथ्थरो, कबहि रमइ तिय भाव रसि ।
बहु भाइ छंद छीहल कहइ, नर चित नच्चइ देव वसी ।।२०।।

खत्तिय रणि भंज्जनो, विप्प आचार विहीणो ।
तपीयै जीति कइ अंगि, रहै चित लालच खीणो ।
तीय जु अति निलंज्ज, लज्ज तजि घरि घरि डोलइ ।
सभा मांहि मुखि देखि, साखि जउ कूडी बोलइ ।
सेवक स्वामी द्रोह करि, संग रहइ न इक्क खिए ।
छीहल कहइ सो परिहरि, नृपति होइ विवेक बिए ।।२१।।

गरब न कर गुणहीन, भरे कंचन के गिरवर ।
तो समीपि पाषाण, अथ्थि तरुवर ते तरुवर ।
किये न अप्प समांन, वृथा गुरुवत्तण तेरउ ।
मलयाचल सलहिजै, सुजस तस संगति केरउ ।
कटु तिक्त कुटिल परिमल रहित, तरु अनंत जे वन भया ।
श्री चंड संगि छीहल कहइ, ते समस्त चंदन भया ।।२२।।

घरी घरी नृप द्वार[1], एह घडिमालउ वज्जै ।
कहै पुकारि पुकारि, आउ दिणही दिण छीज्जै ।

---

१. गेहि

संपति सांस सरीर, सदा नर नाहीं निसचल ।
पुरइणि पत्र पतत बुंद जल लव जिमि चंचल ।
इमि जानि जगत जातो, सकल चित चेतो रे मूढ नर ।
ऊवरै जु तो छीहल कहइ, दीजिइ दाहिण उप्पकर ।।२३।।

ग्यान वंत सुकुलीण, पुरुष जो हो धनहीनो ।
विषम अवस्था पडइ, वयण नहीं भाखै दीनो ।
नीच करम नहिं करइ, रोरु जो अधिक सतावइ ।
वरि मरिवौ अंग वै, निमिष सो नाक न नावइ ।
छीहल कहै मृगपति सदा, मृग आमिष्य भष्यन करै ।
जो बहुत दिवस लंघण परै, तऊ न केहरि तृण चरै ।।२४।।

चैत मास बनराइ, फलहि फुल्लहि तरुवर सहि ।
तो[1] क्यों दोस बसन्त, पत्त होवइ करीर नहु ।
दिवस उलूक ज्युं अंध, ततो रवि को नहि अवगुण ।
चातक नीर न लहइ, नत्थि दूषण बरसत घण ।
दुष सुष दईव जो निर्मयो, लिषि ललाटा सोइ सहइ ।
विषमाद न करि रे मूढ नर, कर्म दोष छीहल कहइ ।।२५।।

छाया तरुवर पिष्षि, आइ बहु वसै विहंगम ।
जब लगि फल सम्पन्न, रहैं तब लगि इक संगम ।
विहवसि परि अवथ्य, पत्त फल झरैं निरन्तर ।
षिण इक तथ्थ न रहइ, जांहि उडि दूर दिसंतर ।
छीहल कहै द्रुम पंषि जिम, महि मित्त तणु स्वारथ लगि ।
पर कज्ज न कोऊ वल्लहो, अप्प सुवारथ सयल जगि ।।२६।।

जलज बीज जल मज्झि, तरुणि[2] रुप्पसि किहि कारण ।
मो मन इच्छा एह, अमरवल्ली विस्तारण ।
सुंदरि इहि संसार, किया कोइ किरत न जाणइ ।
जे गुण लषड करोरि, सुतौ अवगुण करि मानइ ।
अबला अयानि इक सिष्य सुनि, जौ फुल्लैं उल्लास भरी ।
छीहल कहै एह कमल, तब करि हैं तुम्ह वदन सरि ।।२७।।

---

१. ता किम
२. वरणतरर्पिसि

खीण लंक पदमिणी, सेजि नहीं रमी सुरति रस ।
अरियण असिवर धार, त्रास कीन्हैं न अप्प बस ।
सुज्जण कज्ज संसार, दब्ब दीनों न सुपत्तह ।
बोरे अप्पणइ चहुत, भाव मिल्लियो न चित्तह ।
कर्‌यो न सुकृत के करम मन, कलि अवतरि छीहल्ल भनि ।
उद्यान मज्झि जिमि मालती, तिमि नर जनम अकिअथि गिनि ॥२८॥

निरमल चित्त पवित्त, सदा अच्छै उत्तम मति ।
जो उह बसइ कुठाइ, तासु नहि भिदै कुसंगति ।
तिह समीपि सठ बहुत, मिलिब जौ करइ कुलच्छण ।
सुभ सुभाव आपणो, तऊ मुक्कइ न बिचच्छण ।
श्रीखंड संग जिम रयणि दिन, अहि असंपि बेढ्‌यो रहै ।
तहपि सुबास सीतल मलय, बिष न होय छीहल कहै ॥२९॥

टलै न पुब्ब निबद्ध, मित्त मत दीनो भाये ।
जब आयुर्बल घटै, पिनक तब कोइ न राखै ।
बिनय न करि अनकाज, मूढ जन जन के आगैं ।
गुरुवत्तन मम हारि, लोभ लिषमी के लागैं ।
आवैं अवसर अनपार थी, जेम मीचु तिम जानि धन ।
छीहल्ल कहै द्रिढ संग्रहो, मान न मुक्को निज रतन ॥३०॥

ठाकुर मित्त जु जाणि, मूढ हरषइ जे चित्तह ।
निज तिय तणउ बिसास, करइ जिय महि जे मित्तह ।
सरप सुनार रु पारस रस, जे प्रीति लगावहि ।
वेस्या अपणी जाणि, छयल जे छन्द उछावहि ।
बिरचंत बार इन कहु नहीं, मूरिख नर ये रूचिया ।
छीहल्ल कहइ संसार महि, ते नर अति बिगूचिया ॥३१॥

डरपइ दादुर सद्द, बांह घालै केहरि गलि ।
बूडइ कुंडह नीर, तिरै नद जाइ अथगि जल ।
मरइ फूल कै भार, सीस धरि पर्वत टालइ ।
कंपई ऊंदरि देखि, पकरि धरि कुंअर रालइ ।
सौंदरी देखि संकै सदा, बिषहर को बल वद ग्रहइ ।
छीहल सुकवि जंपइ वयण, तिरिय चरित्र को नवि लहइ ॥३२॥

छोलि कुंभ जे धमी, सोइ पूरंति सुरा जलि ।
कसतूरी परिहरइ, नीच संग्रहइ कष्पू षलि ।
कंचण पीतलि तणौ, जहाँ कोइ भेद न जाणौं ।
तरुवर अंब उपारि, अरंड रोपै तिहि थाणौं ।
गुण छांडि निगुण जड मानियै, जस तजि अपजस संचियै ।
सो थान सुकवि छीहल कहै, दूरन्तर ही बंचियै ।।३३।।

णिसि वासर जिय आस, बसै उन बूंदन केरी ।
चंचु न बोरइ अवर, ठांव नहि तिश्य घनेरी ।
आदर विण घर सलिल, विग्घि परिहरइ ततक्खण ।
सरवर निर्झर कूप, सीस नावइ न विचक्खण ।
छीहल्ल कहइ गल गज्जि करि, जो जल उलहरि देइ घन ।
चातक्क नीर ते परि पियै, न तो पियासौ तजै तन ।।३४।।

तरु [illegible] कुहकंत, [illegible] ऊंची [illegible] दिठ्ठो ।
कोमल फल तजि मूढ, जाइ नालेर बइठ्ठो ।
क्षुधा प्रबल तनि भइ, असन कंह ठुंकज दिन्नी ।
आसा भइ निरास, चंचु विधना हर लिन्नी ।
मति हीण पंषि छीहल कहइ, सिर धुनि रोवइ भरि नयण ।
सुक जेम सु नर पछिताइ है, जे होइहि संतोष बिण ।।३५।।

थोरो थोरो माँहि, समय कछु सुकृति कीजइ ।
विनय सहित करि हित, वित्त सारै दिन दीजइ ।
जब लगि सांस सरीर, मूढ विलसहु निज हत्थहि ।
मुवा पछै लंपटी, लच्छि लग्गै नहि सत्थहि ।
छीहल कहइ बीसल नृपति, संचि कोडि उगणीस दव्व ।
लाहो न लियौ भोगवि करि, अंतकाल गो छांडि सव्व ।।३६।।

दरबु गाडि जिन धरहि, धरो किछु काम न आवइ ।
विलसि न लाहो लेइ, सु तो पाछै पछतावइ ।
नर नरिंद नर भुवनि, संचि संपइ जे मूवा ।
तैं वसुधा मैं बहुरि, जनमि सुकर कै हूवा ।
धनकाज अधोमुष दसन सिउं, धरणि विदारहि रयणि दिन ।
छीहल्ल कहइ सोचत फिरै, कहुं न पावहि पुण्य विण ।।३७।।

जं जहुं ललाटहिं लिख्यौ, तुम्हइ अंकुं विधि अक्खर ।
सो न मिटै सुनि मूढ झंप दीजइ रयणायर ।
रचि करि कोडि उपाय, सकल संसारहिं धावइ ।
पौरुष जाणि विनाणि कियैं कछु अधिक न पावइ ।
छीहल्ल कहै जहं जहं फिरइ कर्म बंध तहं तहं लहै ।
पिख्यौ यह कूअ समुद्र महं घट प्रमाणि जल संग्रहै ।।३८।।

नीच सरिस नहीं प्रीति, बैर कीजइ न अवस करि ।
मध्य भाइ भाखियैं, संग छांडिय दूरंतरि ।
हित अथवा अनहित, चित चितवै बुरि मति ।
निसचय सुख की हानि, दुख उपजै दहूं गति ।
छीहल कहै पिख्यहु प्रगट, कर अंगारहिं कोउ धरै ।
दाझै निबद्ध तातो लियै, सीरो कारो कर करै ।।३९।।

पत्त सुतौ अति तुच्छ काज नहिं आवै कत्थहु ।
फल वाकस रसहीण, छांह निदोस कियच्छहु ।
साखा कंटक कोटि, लेइ पंषी न बसेरउ ।
छीहल गुणियन कहइ, कौन गुण वरणौ तेरउ ।
र रे बबुलनि लच्छण निलज, पापी परहु न उपगरै ।
जो देहि फूल फल अवर तरु, तिनहु की रख्या करै ।।४०।।

फिर चउरासी लख्ख, जोणि लद्धौ मानुष जम ।
सो निसफल न गंवाइ, मूढ कीजइ सुकृत क्रम ।
कनक कचोली मज्झि मूढ भरि छारिन नाखिसि ।
कल्पवृक्ष उखेलि, मूढ एरण्डम रखिसि ।
वायस्सि उडावण कारणौ, चिंतामणि क्यों रालियै ।
छीहल कहै पीयूष सौं, नाऊ पाँव पषालियै ।।४१।।

वसुधा विश्वामित्र, सरिस जे तपिय गरिट्ठा ।
संपति ते भोगवैं, रहै वनखंडहि बैठा ।
लोभ मोह परिहरैं, किया इन्द्री पंचे वस ।
तरुणि वदन निरषंत, लेइ पुनि परइ काम रस ।
आहार करहिं षटरस सहित, पंचामृत जुगति सिम ।
छीहल्ल कहै तिहि पुरुष को, इन्द्री निग्रह होइ किम ।।४२।।

भ्रमर इक्क निसि भमैं, परौ पंकज के संपुटि ।
मन मंहि मंडै आस, रयणि खिण मांहि जाइ घटि ।
करिहूँ जलज विकास, सूर परभाति उदय जब ।
मधुकर मन चिंतवै, मुक्त हूँ हैं बन्धन तब ।
छीहल द्विरद ताही समए, गय संपत्तउ सरल तरि ।
अलि कमल पत्र पुडइणि सहित, निमिष मांहि सो गयौ ग्रसि ।।४३।।

मग्गि चलहु कुलवहि, जेणि विकसै मुख[1] सज्जन ।
होइ न जस की हाणि, पिख्खि करि हंसइ न दुज्जन ।
जप तप संजम नेम, धर्म आचार न मुक्कइ ।
परमप्पर निज एहु, क्रिया आपनी न चुक्कइ ।
पर तरुणि पाप अपवाद परि दूरन्तर ही परिहरउ ।
मन वचन काय छीहल कहै, पर उपकारहि चित धरउ ।।४४।।

जब लगि तरुवर राइ, फुल्लि करि फलिय विवह परि ।
तब लगि कंटक कोटि, रहै चहु दिसा वेढि करि ।
पंथी आसा लुद्ध, खिप्प तक्कवि जो आवइ ।
फल पुनि हथ्थ न चढै, छांह विश्राम न पावइ ।
छीहल्ल कहै हो अंब सुणि, यहु अवगुण संपति थियैं ।
तो सदा काल निरफल फलौ, जिहि सुख छांह विलंबियैं ।।४५।।

रे रे दीपक नीच, लष्ष अवगुण तुझ अंगहु ।
पत्तहि करइ कुपत्त, प्रकृत्ति सुभाव मलिन रंगहु ।
खत्तिय गुण निरदहण, तैल सनेह घटावन ।
जिहि थानक तू होइ, तिहां कालिमा लगावन ।
छीहल्ल कहै वासर समय, मान न लम्भै इक्क चुप ।
जौ सहस किरण रवि अथ्थवइ, तौ जग जोवै तुज्झ मुष ।।४६।।

लच्छण ससि कहं दीन्ह, कीन्ह अलि षार उदधि जल ।
सफल एरण्ड धतूर नागवल्ली सो नीफल ।
परिमल बिणु सोवन्न, बास कस्तूरी विविध परि ।
गुणियन संपत्ति हीण, बहुत लच्छीय कृपण धरि ।

---

१. मन

तिय तरुण वयस[1] विरघा पराउ, सज्जन सरिस वियोग दुष ।
इत्तनं ठाम छीहल्ल कहइ, किया विवेक न विधि पुरुष ॥४७॥

ओछो सज्जन प्रीति, अवर पुनि छाया बद्दल ।
वासी सरिष सनेह, अवर बरषइ जु ओस जल ।
सरवरि छीलरि पानि, अगिनि तृण केरउ तप्पन ।
विदंहु सरिस मंड वाउ, पिंडिय[2] गज्जहु जिनि अप्पन ।
का पुरुष बोल वेस्याविसन, एता अंत न निरवहै ।
विस्वास करइ ते हीण मति, साचि वयण छीहल कहै ॥४८॥

ससि उगवनि जो कंवल मज्झि मकरंद पियो जिहि ।
विकसित चिस उल्हास, वास केतकी लई तिहि ।
कुंभस्थल गय मय प्रवाह, भख्यो कदली वन ।
सरस सुगन्ध जु पुहुप, विहसि[3] पुज्जइय रली मन ।
छीहल्ल विविहु वणराइ, जिहि रितु मान्यो अप्पन समै ।
सो भमर अबहि विधि पुरुष बसि, अक्क करीरहि दिन गमै ॥४९॥

षल दुज्जन मुष-विवर, मज्झि निवसंहि जे कुवचन ।
तेई सरप समान, होइ लागहि षटि सज्जन ।
सोषइ सकल सरीर, लहरि आवइ जोवंतहं ।
मूलो गद गारूडो, गिनै नहि तंत न मंतहं ।
उपचार इक्क छीहल कहै, सुणिय विचष्षण उत्तमा ।
विष दोष निवारण कारणै, निज औषध साधउ षिमा ॥५०॥

समय जु सीत वितीत, वृथा वस्तर बहु पाए ।
षीण षुधा घटि गई, वृथा पंचामृत षाए ।
वृथा सुरति संभोग, रयणि कै अंत जु कीजइ ।
वृथा सलिल सीतल सु तासु, विण तृषा जु पीजइ ।
चातक कपोत जलचर मुए, वृथा मेघ बहु जल दए ।
सो दान वृथा छीहल कहै, जो दीजइ अवसर गए ॥५१॥

---

१. वेस
२. जम जे आपन
३. विलसि

हइ धनवंत आलसी, ताहि उद्यमी पयम्पइ ।
क्रोधवंत अति चपल, तऊ थिरता जग जम्पइ ।
पत्त कुपत्त न लखइ, कहइ तसु इच्छाचारी ।
होइ बोलण असमथ्थ, ताहि गुरु वत्तन भारी ।
श्रीवन्त लच्छ अवगुण सहित, ताहि लोग करि गुण ठवइ ।
छीहल्ल कहै संसार महि, संपति को सहु को नवइ ।।५२।।

चउरासी अगला, सइ जु पनरह संवच्छर ।
सुकुल पष्य अष्टमी, मास कातिग गुरुवासर ।
हृदय उपन्नी बुद्धि, नाम श्री गुरु को लीन्हो ।
सारद तणइ पसाइ, कवित संपूरण कीन्हो ।
नाल्हिग बंस सिनाथू सुतन, अगरवाल कुल प्रगट रवि ।
बावन्नी वसुधा विस्तरी, कवि कंकण छीहल्ल कवि ।।५३।।

इति छीहल कृत बावनी संपूर्ण समाप्त । संवत १७१६ लिखितं पांडे वीरू लिख्यापितं व्यास हरिराम महला मध्ये । राज श्री स्योत्रसिंघ जी राज्ये संवत १७१६ का वर्षे मिती वैसाख सुदी ५ शनिसरवार ।। शुभं भवतु ।।[1]

□ □ □

१. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरण जी पांडे जयपुर गुटका संख्या १४० ।

३. पंथी गीत

इक पंथी पंथ चलंतौ, बन सिंहनि मांहि पहुंतौ ।
भूलौ ऊबट दह दिसि धावै, वह मारग कहियन पावै ।
पावै न मारग विषम बन मैं, फिरै भ्रमि भटकंत ह्वौ ।
देखियौ तहा सांमहौं आवत, गरुव गज मयमंत हो ।
सो रौद्र रूप प्रचंड सुंडा, दंड फैरै रिस भर्यौ ।
भयभीत होइ कंपिया लागो, पथिक चित्त अंतरि डर्यौ ॥१॥

सो देखि कु पंथी भागो, जाकै पूठेहिं कुंजर लागो ।
जीव कै डरि आतुर धायौ, आगै कूप हुतौ तिण छायौ ।
तिण छयौ कूप जुहु तो आगै, बिचि बेलि छवि रह्यौ ।
तिहि मांहि पथिक पड्यौ अजानत, भेद भौंदू ना लह्यौ ।
चंहि गह्यौ अवलंबि आकारणि, और कछु न पाइयौ ।
कूचडौ एक सरकनौ केरौ, पडत हाथें आइयौ ॥२॥

तब सरकन दिढ करि गहियौ, झूलत दारुण दुख सहियौ ।
सिर ऊपरि गदौ गयंदा, दिसि च्यार्यौ चारि फुणिंदा ।
चहुं दिसि हि चारि फुणिंद न्यौली, बंधे करि बैठे जहां ।
तलि मुख पसारि बिरह्यौ अजिगर, ग्रसन कै कारणि तहां ।
सित असित द्वै देखिया मूषक, जड खणै सरकन तणी ।
संकट पड्यौ अब नहिं उबरण, करै चिंता चितै घणी ॥३॥

कूवा ढिग इक बिरख बडे रो, तहां छातौ लग्यौ महुके रो ।
नंहि हलती हलाई डाली, मोखी अगनित उडी बिसाली ।
मोखी बिसाली उडिवि अगनित, लगि उडी वंहि नर तणैं ।
उपसर्ग अंगि करै घणैरी, तास को संख्या गिणै ।
वंहि समै मधुकण पडह ऊपरि, पडत रस रसना लियौ ।
या बिन्दु कै सुखि लागी लोभी, सबै दुख बीसरि गयौ ॥४॥

मधु बिन्दु जु सुख संसारो, दुख बरणत लहु न पारो।
जीव जाणौं पथिक समानो, अग्यान निबड उद्यानो।
उद्यान घन अग्यान गिनिजै, जम भयानक कुंजरो।
भव वंश कूप चारी गति, माहि पसिय व्याधि निरंतरो।
अजिगर सु एहु निगोद वोयम, भखत जगत न धापये।
द्वै पक्ष उज्जजल किसन मूषक, आयु खिण खिण क्षा पये ॥५॥

संसार को यहु व्यवहारो, चित चेत हु क्यों न गवारो।
मोह निद्रा में जे सूता, ते प्राणी अंति विगूता।
प्राणी विगूता बहुत ते जिनि, परम ब्रह्म विसारीयौ।
भ्रमि भूलि इंद्री तणै रसिनर, जनम वृथा गंवाइयौ।
बहुकाल जाना जोनि दुख, दीरघ सह्या छीहल कहै।
करि धर्म जिन भाषित जुगति स्यौं, त्यौं मुकति पदवी लहै ॥६॥

॥ इति पंथी गीत समाप्ता ॥

□ □ □

४. वेलि गीत

रे मन काहे कूं भूलि रहे विषया वन भारी।
इह ममता में भूलि रहे मति कुंण[1] तुहारी।
मति कुंण तुहारी देखी विचारी, अति अधिक दुख पावो।
चिण[2] इक मृग तिसना जल देखत, बहुडि न प्यास बुझावो।
गृह सरीर संपति सुत बंधौ, एतैं थिरि किरि जाण्या।
श्री जिणवर की सेव न कीधी, रे मन मूरिख अयाणा ॥१॥

बहु जूणी में भ्रमता माणस जन्म जु पायौ।
है[3] देवन कूं दुर्लभ सो कत बादि गवायौ।
कत बादि गवायो मुंड मुंडाले, काहै पाव परखालै।
काग उडावणि कारिणि कर थे, च्यंतामणि कांइ रालै।
इवकु जिनवर सेव बिना सब भूला, ज्यों सुपना की माया।
मृषा[4] जन्म खोय माणस को, बहु जूंणी भ्रमि आया ॥२॥

उतिम धर्म्म है जीव दया, सो दिढु करि गहिए।
अरहंत ध्यानु धरिज्यो सत, संजमस्यो रहिये।
रहिये संजमस्यो परधन पर रमणी पर निंदा पर हरिये।
पर उपगार सार है प्राणी, बहुत जतन स्यौं करिये।
जब लग हंस अभित काया में, कुछ सुकृत उपावो भाइ।
अति कालि तुहि मरती बेला, हो हो धर्म्म सहाइ ॥३॥

कलि विष कोट विणासैं, जिनवर नाम जु लीया।
जै घट निर्मल नाही, का तपु तीरथ कीया।
का तप तीरथ कीया, जै पर द्रोह न छांडे।
लंपट इंद्री लघु मिथ्या भ्रमु, जनमु आपणी भांडै।
छीहल कहै गुणी मन बौरे, सीख सीयाणी करिये।
चितवत परम ब्रह्म कै[5] ताई, भव सायर कूं तिरिये ॥४॥

॥ इति वेलि गीत समाप्त ॥

---

१. कवण (ख प्रति) २. खिणु सुख (ख प्रति)
३. हुय (ख प्रति) ४. वृथा न खोइ जनम माणस कउ (ख प्रति)
५. ब्रह्म स्यो रहिये जिव भव दुतर तिरिये (ख प्रति)

५. वैराग्य गीत

ऊन्दर उदक में दश मास रह्यौ, पडिवि ग्रोमुखि बहु संकटु सह्यौ ।
कहु सहिव संकटु उदर अंतरि, चितवै चिंता घणी ।
ऊबरौ अबकी बार जेहौं, भगति करिस्यों जिण तणी ।
ए बोल संकट पड़ै बोलै, बहुडी जगि जामण भयौ ।
संसार का जम भुमालि लागी, मूढ तब वीसरि गयौ ।।१।।

बालक थिकइ अचेत·········भखि अभखि रा कछु अंतरु लहै ।
लहै ना भखि अभखि अंतरु, लाल मुखि अरिल चुवै ।
पडइ लोटै धरणि उपरु, रोइ करि अमृत पिवइ ।
तनु मूत विष्टा रहै वेढ्यौ, सुकृत ना कायौ कियौ ।
वीसरयौ जिन भक्ति प्राणी, बाल पणौ ह्यौ हा गयौ ।।२।।

जोबनि मातौ नर बहु दिशि भवै, परधन परतीय ऊपरि मनु रचै ।
रचै परधनु देखि परतीय, चित्तु अहुण राखए ।
छांडि मनीफल सेव जिनकी. विषय विष फल भाखए ।
काम माया मोह व्याप्यौ प्रमत हुम विसार ।
पूजइ न जिणवर स्वामि वकरो, अथिरथा जोबन गालए ।।३।।

जरा बुढापा वैरी आइयौ सुधि बुधि नाठी तब पछिताइयौ ।
पछिताइयौ तब सुधि नाठी, सयण[1] जगतु न बूझए ।
जियन कारणि करै लालच नयन जगत्तु न सूझए ।
मनु[2] कहइ छीहल सुणहि रे मन भरमि भूलौ काइ फिरै ।
करि सेव जिणवर मति सेती, जो भव समुद बूलरु तिरै ।।४।।

गुटका संख्या ६५, पाटोदी का मन्दिर जयपुर ।

□□□

---

१. श्रवणा सबद न बूझए ।
२. अन कहइ छीहल सुणौ रे नर भ्रमि भूलि काई फिरै ।
   करि भगति जिनकी कुगति स्यौ रयौ मुकति लीलइ वरौ ।।४।।

६. गीत

राग सोरठा

संसार छार विकार परहरि, सुमरि श्री जिण आण ।
रे जीव जगत सुपनो जाणि ।।१।।

एक रंक सारो सहर जाच्यो, सुतो द्रुम तलि आणि ।
जाणिक सह भूपाल पोढ्यो, छत्र धारी सोक ।
खवासी विजणा वहालि ढोले, सेक रह्यो कहि थोकि ।
एक आणि रंभा पाव चुंबै, सह्यो विधि भावै भेंट ।
ए ताही में जागि तौ ठीकरो सिर हेठि ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।२।।

एक बांझ कै घरि सुवर बागा, आणिक जनम्यो बाल ।
बुलाइ पण्डित बुभै जोशी होसी वह भूपाल ।
मेरो पुत्र कुमाइसी लिया बहुत बंधी आस ।
ए ताही मैं जागि देखे तौ नाखिया रानिसास ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।३।।

एक निरधन जानैं हुवो धनवंत सो भी गभी पूरि ।
अर्थ दर्व बहुभर्या भण्डा बहु निधि बांधी आस ।
एता में ही जागि देखे नहीं कोडी पासि ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।४।।

एक मूरिख जानै हूवौ पण्डित मुखा चारयौ वेद ।
माग आगम सबही सूझ्यो तीन भवन सम भेखि ।
एता में ही जागि देखे तो नहीं आखिर रेख ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।५।।

संसार सुपनो सर्व जाण्यो जाण्या कछु न होइ ।
कहै छीहल सुमरि जीवडा जिण भज्या चलो होइ ।[1]
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।६।।

□ □ □

---

१. गुटका संख्या ८, शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधान जयपुर ।

३

चतुरुमल

१६ वीं शताब्दि के अन्तिम चरण में होने वाले जितने हिन्दी जैन कवि अल्प ज्ञात हैं उनमें चतुरुमल अथवा चतुर कवि भी है। राजस्थान के जैन ग्रंथागारों में अभी तक ऐसे सैकड़ों कवि पोथियों में बन्द हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा में कितनी ही सुन्दर रचनाएं लिखी थी और अपने युग में प्रसिद्धि प्राप्त की थी। लेकिन समय के अन्तराल ने ऐसे कवियों को पर्दे के पीछे धकेल दिया और फिर वे सामने आ ही नहीं सके।

कुछ बड़े कवि तो फिर भी प्रकाश में आ गये और उनका अध्ययन होने लगा लेकिन कितने ही कवि जिन्होंने लघु रचनाएं लिखी, पद एवं सुभाषित लिखे तथा पुराणों के आधार पर चरित व रास लिखे, बावनी व बारहमासा लिखे, ऐसे पचासों कवि अभी तक भी गुटकों में बन्द हैं और उन्होंने हिन्दी की जो अमूल्य सेवाएं की थी वे अभी तक हमारे से ओझल हैं।

जैन कवियों के हिन्दी में केवल चरित एवं रास संज्ञक प्रबन्ध काव्य ही नहीं लिखे किन्तु साहित्य के विविध रूपों में अपनी कृतियों को प्रस्तुत करके हिन्दी के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने स्तोत्र, पाठ, संग्रह, कथा, रासो, रास, पूजा, मंगल, जयमाल, प्रश्नोत्तरी, मंत्र, अष्टक, सार, समुच्चय, वर्णन, सुभाषित, चौपई, शुभमालिका, निशाणी, जकड़ी, व्याहलो, बधावा, विनती, पत्री, आरती, बोल, चरचा, विचार, बात, गीत, लीला, चरित्र, छंद, छप्पय, भावना, विनोद, काव्य, नाटक, प्रशस्ति, धमाल, चौढालिया, चौमासिया, बारामासा, बटोई, वेलि, हिंडोलणा, चूनड़ी, सज्झाय, बाराखड़ी, भक्ति, वन्दना, पच्चीसी, बत्तीसी, पचासा, बावनी, सतसई, सामायिक, सहस्रनाम, नामावली, गुरुवावली, स्तवन, संबोधन, एवं मोड़लो संज्ञक रचनायें निबद्ध करके अपने विशाल ज्ञान का परिचय दिया। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में इन विविध साहित्य रूपों में से किसका कब प्रारम्भ हुआ और किस प्रकार विकास और विस्तार हुआ यह

शोध के लिए रोचक विषय है। इन सब की बहुमूल्य सामग्री देश के जैन ग्रन्थागारों में उपलब्ध होती है।[1]

लेकिन साहित्य के उक्त विविध रूपों के अतिरिक्त अभी तक और भी बीसों रूप हैं जिनकी खोज एवं शोध आवश्यक है। अभी हमें साहित्य का एक रूप "उरगानो" प्राप्त हुआ है। जिसके रचयिता हैं कविवर चतुरुमल अथवा चतुरु।

कवि परिचय

चतुरुमल १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे। यद्यपि इनकी अभी तक अधिक रचनाएं उपलब्ध नहीं हो सकी हैं लेकिन फिर भी उपलब्ध कृतियों के आधार पर कवि श्रीमाल जाति के श्रावक थे। दि० जैन धर्मानुयायी थे तथा गोपाचल ग्वालियर के रहने वाले थे।[2] कवि के पिता का नाम जसवंत था।[3] अपने पिता के वे इकलौते पुत्र थे। कवि ने अपने परिचय में लिखा है कि जन्म लेते ही उसका नाम चतुरु रख दिया गया। कवि की शिक्षा दीक्षा कहां तक हुई इसकी तो विशेष सूचना प्राप्त नहीं है किन्तु नेमिपुराण सबसे अधिक प्रिय था और उसी के आधार पर उसने 'नेमीश्वर का उरगानो' काव्य की रचना की थी। क्योंकि उसने अनेक पुराणों को सुना था तथा स्वाध्याय की थी लेकिन हरिवंश पुराण में उसका सबसे अधिक आकर्षण हुआ। उस समय वहां धवल पण्डित रहते थे। वे साहसी एवं धैर्यवान थे।[4] उन्हीं के पास कवि ने पुराणों का अध्ययन किया था। और उसी अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत कृति की रचना की थी।

रचनाएँ

कवि ने हिन्दी में कब से लिखना प्रारम्भ किया इसकी तो अभी खोज होना शेष है लेकिन संवत् १५६९ में उसने गोपाचल गढ़ में आकर के गीतों की रचना

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची—भाग चतुर्थ पृ० ४।

२. मधि देसु सुख सयल निधान, गढ़ु गोपाचलु उत्तिम थानु ।।४४।।

३. श्रावगु सिरमलु धरु जसवंत निहचै जिय धर्म धरंत।
चर चल नभवि चंवती, पुत्र एकु ताके घर भयो।
जनमत नाम चतुरु तिनी लियो, जैनधर्म विधु जीवहु धरो ।।४३।।

४. सुनि पुराणु हरिवंस गम्हीर, पंडित धवलु जु साहस धरि।
तिनिसु तरया मिथु रचि कियो, कलि केवलि को त्रिभुवन साद ।।२।।

प्रारम्भ की थी ।[1] अभी तक हमें कवि के चार गीत उपलब्ध हो सके हैं और चारों ही एक गुटके में संग्रहीत हैं ।

कवि की सबसे बड़ी रचना "नेमीश्वर को उरगनौ" है । इस को कवि ने ग्वालियर में संवत् १५७१ में भादवा बुदी पंचमी सोमवार को समाप्त की थी । उस दिन रेवती नक्षत्र था ।[2] इसमें ४५ पद्य हैं । तथा नेमिनाथ एवं राजुल के विवाह की घटना का प्रमुखतः वर्णन है ।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त कवि ने और कौन कौनसी कृतियां निबद्ध की इसका अभी पता नहीं चल पाया है लेकिन यदि मध्य प्रदेश के शास्त्र भण्डारों में खोज की जावे तो संभवतः कवि की और भी रचनायें उपलब्ध हो सकती हैं ।

कवि ने ग्वालियर के तोमर शासक महाराजा मानसिंह के शासन का अवश्य उल्लेख किया है तथा ग्वालियर को स्वर्ण लंका जैसा बतलाया है । महाराजा मानसिंह की उस समय चारों ओर कीर्ति फैली हुई थी तथा अपनी भुजाओं के बल से वह जग विख्यात हो चुका था । ग्वालियर में उस समय जैन धर्म का प्रभाव चारों ओर व्याप्त था । श्रावकगण अपने षट्कर्मों का पालन करते थे तथा उनमें धर्म के प्रति अपार श्रद्धा थी ।

कवि के कुछ समय पूर्व ही अपभ्रंश के महाकवि रइधू हो चुके थे जिन्होंने अपभ्रंश में कितने ही विशालकाय काव्यों की रचना की थी । रइधू ने जिस प्रकार ग्वालियर का, वहां के श्रावकों का, तोमर वंशी राजाओं का वर्णन किया है लगता है ग्वालियर दुर्ग का वही ठाट बाट कवि चतुरुमल के समय में भी व्याप्त था । लेकिन चतुरु ने न रइधू का नामोल्लेख किया और न नगर के साहित्यिक वातावरण का ही परिचय दिया ।

कवि के जिन रचनाओं की अब तक उपलब्धि हुई है उनका परिचय निम्न प्रकार है—

१. गीत—(ना जानो हो को को पैरे ढीलरीया कत जाई)

---

१. चतुरु श्रीमाल वासुदेव वंशी । गति नारि की आइ कीयो गढ नर संवत् १५६६ को । गुटका – शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथियों का, जयपुर । वेष्टन संख्या २४८७ ।

२. संवतु पन्द्रहसै वो गनें, गुन गुनुहत्तरि ता ऊपरि भवे ।
भादौ वदि तिथि पंचमी वार, सोम न षित्त् रेवती सार ।

यह लघु गीत है जो पद रूप में है। जिसमें मानव को भगवान की पूजा आदि करके निर्वाण मार्ग पर बढ़ते जाने को कहा गया है। पद की अन्तिम पंक्ति में "संसारह श्रावग कुलि साह भगई चतुश्रावगु श्रीमारु" कह कर अपना परिचय दिया है।

दूसरा गीत—इस गीत का शीर्षक है 'गाडी के गडवार की'। यह भी आध्यात्मिक पद है जिसमें दशधर्म को जीवन में उतारने तथा सातों व्यसनों को त्यागने की प्रेरणा दी गई है। पद का अन्तिम चरण इस प्रकार है—

"श्रावग सुणहु विचारु, चतुरु यो गावहिगें"

तीसरा गीत—इस गीत का शीर्षक है "आईति आवा यारी कै जईयी" यह भी उपदेशात्मक पद है जिसमें श्रावक को मानव जीवन को सफल बनाने का अनुरोध किया गया है। कवि ने पद के अन्त में "भनई चतुरु श्रीमारु" से अपने नाम का उल्लेख किया है।

४. क्रोध गीत—यह भी लघु गीत है जिसमें क्रोध, मान, माया और लोभ की निन्दा करके उन्हें छोड़ने का उपदेश दिया गया है। इसमें चार अन्तरे हैं। मान कषाय का पद निम्न प्रकार है—

> मानु न कीजै जीईवरा, तिसु मानहि हो मानहि जीयरा दुख सहे।
> अप्पु सराहे हो भलो, पुणि पर की हो पर की निंत करई।
> पर करेई निंदा नित प्रानी, इसोइ मन गरबै भरो।
> हउ रूप चतुरु सुजानु सुंदरु, ईसोप भनो मद भरै।
> अहमेव करि करि कर्म्म बंधो, लाख चौरासी महि फिरै।
> ईम जानि जियरा मानु परिहरि, मानु बहु दुखह करो ॥२॥

५. नेमीश्वर का उरगानो—प्रस्तुत कृति कवि की सबसे बड़ी कृति है। अब तक काव्य के जितने भी नाम आये हैं उनमें 'उरगानो' संज्ञक रचना प्रथम बार प्राप्त हुई है। 'उरगानो' का अर्थ स्वयं कवि ने 'गुन विस्तरो' अर्थात् गुणों को विस्तार से कहने वाले काव्य को उरगानो कहा है। इसमें नेमिनाथ के जीवन को विवाह के लिए तोरण द्वार को छोड़कर वैराग्य धारण करने की घटना का वर्णन किया गया है। उरगानो की कथा का संक्षिप्त सार निम्न प्रकार है—

मंगलाचरण के पश्चात् उरगानो नारायण श्रीकृष्ण के पराक्रम की प्रशंसा से प्रारम्भ होता है जिसमें कहा गया है कि द्वारिका में ५६ कोटि यादव निवास करते थे जो सब प्रकार से सुखी एवं सम्पन्न थे। नारायण श्रीकृष्ण ने जरासंध पर

विजय प्राप्त करके शंखनाद के साथ द्वारिका पहुंचे। एक दिन पूरी राज्य सभा जुड़ी हुई थी। विविध खेल हो रहे थे। राजा एवं रानी दोनों ही प्रसन्न थे। उसी समय नेमिकुमार आए। सभी ने उनका आरती उतार कर स्वागत किया। नारायण श्रीकृष्ण ने सभी सभासदों को नेमिनाथ का परिचय दिया तथा कहा कि वर्तमान समय में नेमिनाथ से बढ़कर कोई साहसी एवं धैर्यवान है। बलभद्र ने नेमिनाथ के बारे में और भी जानना चाहा। श्रीकृष्ण जी ने नेमिनाथ का चित्र लिया तथा राजा उग्रसेन के पास गये और उनसे नेमिनाथ के लिये राजुल को मांग लिया। उन्होंने कहा कि हम सब यादव नेमिनाथ की बारात में आयेंगे। उग्रसेन ने अत्यधिक प्रसन्न होकर राजुल से नेमिनाथ के विवाह की स्वीकृति दे दी। लेकिन साथ में उन्होंने चुपचाप ही कुछ पशुओं को एकत्रित करने के लिए कह दिया।

कुछ समय के पश्चात् नेमिनाथ बारात लेकर वहां पहुंचे। उन्होंने वहां चारों ओर देखा और पशुओं को एकत्रित करने का कारण जानना चाहा। लेकिन जब उन्हें मालूम पड़ा कि ये सब बरातियों के लिए आये हैं तो उन्हें एकदम वैराग्य हो गया और विवाह कंकण तोड़कर तथा रथ को छोड़कर गिरनार पर्वत पर जा चढ़े। नेमिनाथ के वैराग्य से राजुल के माता पिता एवं परिजनों सबको दुःख हुआ और वे विलाप करने लगे। जब राजुल को उनके वैराग्य लेने का पता चला तो वह मूर्छित हो गई। वह कभी उठती कभी बैठती और कभी चिल्लाती। वह अपने पिता के पास जाकर रुदन करने लगी। पिता ने सारा दोष श्रीकृष्ण जी पर डाल दिया। लेकिन उसने राजुल से यह भी कहा कि उसका विवाह किसी दूसरे राजकुमार से कर दिया जावेगा जो नेमि के समान ही रूपवान एवं धैर्यवान होगा। तथा विद्याओं का आगार होगा। राजुल को पिता के शब्द सुनकर अत्यधिक दुःख हुआ। और नेमिनाथ के अतिरिक्त दूसरे किसी से भी बात नहीं करने के लिए कहा।

राजुल भी नेमि के पीछे-पीछे शिखर पर जा चढ़ी और नेमि से ही उसे छोड़कर चले आने का कारण जानना चाहा। नेमिनाथ ने स्वयं के लिए संयम लेने की बात कही तथा राज्य, हाथी, घोड़ा एवं अन्य सभी परिग्रह छोड़ने की बात कही। लेकिन उन्होंने राजुल से वापिस घर जाकर विवाह करने के लिए कहा क्योंकि तपस्वी जीवन अत्यधिक कठिन जीवन है। इसमें साथ-साथ रहना परित्याज्य है। राजुल ने नेमि को छोड़कर घर लौटने से इन्कार कर दिया और कहा कि चाहे उसके प्राण ही क्यों न चले जायें वह तो उन्हीं के चरणों में रहेगी। घर जाकर क्या करेगी। इसके बाद राजुल ने दो-दो महिनों को लेकर बारह महिनों में होने वाले ऋतु जन्य संकट का वर्णन किया तथा कहा कि ऐसे दिन में उनको छोड़कर कैसे जा सकती है। वह तो उनही की सेवा करेगी। राजुल ने कहा सावन भादों में

तो घनघोर वर्षा होगी । बिजली चमकेगी तथा मयूर एवं पपीहा की रट लगेगी । ऐसे दिनों में वह नेमि को छोड़कर कैसे जावेगी । आसोज एवं कार्तिक मास में शरद ऋतु होगी । सरोवर एवं नदियों में स्वच्छ जल भरा होगा । आकाश में चन्द्रमा भी निर्मल हो जावेगा । चारों ओर गीत एवं नृत्य होंगे ऐसी ऋतु में नेमि बिना वह कैसे रह सकेगी ।

मंगसिर एवं पोष में खूब सर्दी पड़ेगी । शरीर में काम रूपी अग्नि जलेगी । घर घर में सभी मस्ती में रहेंगे लेकिन नेमि के बिना वह किस घर में रहेगी और उसका हृदय पत्ते के समान कंपित होता रहेगा । एक ओर काली रात्रि फिर बर्फ का गिरना । लेकिन उसका मन तो पिया के बिना ही तरसता रहेगा ।

अघन पुषु ससि सीत अपारु, जाडौ विपु व्यापे संसारु ।
काम अगिनि बहु पर जलु, घर घर सुख करै सब कोई ।
तुम बिनु हमहि कहा रस होई, जिउ नी पंखे नाग ज्यो ।
निसि अंध्यारी परतु तुसारु, काम लहरि अति होइ अपार ।
यहु मनु तरसै पीउ बिना, सबु संसार करै अति भोग ।
राजल रटै करै पीय सोगु, नेमि कुंवर जिन वन्दिहो ।।३०।।

माघ और फाल्गुण ऋतु में तो बसन्त की बहार रहेगी । सभी बसन्त का आनन्द लेंगे । कामिनियां अपने प्रियतम के साथ विलास करेंगी । वे अपने अंगों में चन्दन का लेप करेंगी तथा माथे पर तिलक भी करेंगी । घर घर वन्दनवार होंगी । राजुल भी ऐसी ऋतु में अपने पिया के साथ परिहास करना चाहती है तथा दिन में अपने कंत की सेवा करना चाहेगी ।

चैत्र और वैशाख में सभी वनस्पतियां खिल जावेंगी । नन्दन वन के सभी पुष्प भी खिले होंगे । भौंरे फलों का रस पीते होंगे । वन में कोयल कुहू कुहू के प्रिय शब्द सुनाई देगी । विरहिणी स्त्रियां अपने प्रिय के बिना तड़फती रहेंगी लेकिन वह स्वयं बिना नेमि के क्या करेगी ।

इसी तरह जेठ और आषाढ़ में गर्मी खूब पड़ेगी । सूर्य भी तपेगा । कुछ लोग चन्दन लगा कर शरीर को शीतल करेंगे । लू चलेगी । लेकिन उसे तो प्रिय के बिना और भी उष्णता सतावेगी । इसलिए वह रात्रि दिन नेमि पिया नाम की माला जप कर उनके शीतल वचनों को सुनती रहेगी ।

इस प्रकार राजुल बारह महिनों के विरह दुःख को नेमि के सामने रखती है और चाहती है कि विवाह न किया तो न सही किन्तु वह उनके चरणों में रहकर

ही उनकी सेवा करती रहे। यह कह कर वह रोने लगी और उसकी आंखों से अश्रुधारा बह चली।

नेमि ने राजुल की बात सुनी। उन्होंने कहा कि वे तो वैरागी हो गये हैं संयम धारण कर लिया है इसलिए अब राजुल की सेवा कैसे स्वीकार कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने राजुल से वापिस अपने परिजनों में लौटने की सलाह दी। जिससे वह राज्य सुख भोग सके। लेकिन राजुल तो आगे बढ़ी थी। उसने फिर अनुनय विनय किया। रोयी और नेमि से उसे भी व्रत देने की प्रार्थना की। अन्त में नेमिनाथ को उसकी प्रार्थना को स्वीकार करना पड़ा और उसे आर्यिका की दीक्षा दे दी। इसके साथ ही नेमिनाथ ने आवश्यक व्रतों को पालने का उपदेश दिया।

इस प्रकार 'नेमीश्वर का उरगानो' एक शान्त रस प्रधान काव्य है जिसमें विरह मिलन की अद्भुत संरचना है। नेमि द्वारा तोरणद्वार पर आकर वैराग्य धारण कर लेने की इतिहास में अकेली घटना है। फिर उनसे राजुल का घर वापिस लौटने के लिए अनुनय विनय, पति के विरह में होने वाले कष्टों का वर्णन और वह भी आमने सामने। जहां एक वैरागी हो और एक नयी नवेली बनी हुई उसी की दुल्हिन। भगवान शिव को तो पार्वती की तपस्या के सामने झुकना पड़ा लेकिन नेमिनाथ के वैराग्य को राजुल नहीं डिगा सकी। उसने भी नेमि से अधिक से अधिक आग्रह किया, रोई विलाप किया, लेकिन वे कब अपने वैराग्य से वापिस लौटने वाले थे। अन्त में राजुल का ही संयम धारण करना पड़ा।

भाषा

प्रस्तुत कृति ब्रज भाषा की कृति है जिस पर राजस्थानी का प्रभाव है। अखारे (६), कोरि (४), भीतरे (७), कन्हइ (६), जोवहि (११), मोरि (११), तोरि (१३), होइ है (१६), तिहारे (२२) आदि शब्दों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। ड और ट के स्थान पर र का प्रयोग किया गया है।

रचना काल

प्रस्तुत कृति संवत् १५७१ की रचना है। रचना समाप्ति के दिन भादवा सुदी पंचमी सोमवार था। रेवती नक्षत्र एवं लगन में चन्द्रमा था।[1]

---

१. संवतु पनरहसं वो गनी, गुन गुनहत्तरि ता उपरि धंन।
भादौ सदि तिथि पंचमी वार, सोम नखितु रेवती सार।
लगुन भलौ सुभ उपजी मति, चन्द्र अगम बसु पाइयौ॥

रचना स्थान

'नेमीश्वर का उरगानो' का रचना स्थान गोपाचल दुर्ग (ग्वालियर) रहा। उस समय वहां के शासक महाराजा मानसिंह थे जिनके सुशासन की कवि ने प्रशस्ति में प्रशंसा की है। महाराजा मानसिंह तोमर वंशी शासक थे। वहां जैन धर्म का पूरा प्रभाव व्याप्त था तथा उसके अनुयायी गण प्रायः गुरु सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान जैसे कार्यों का प्रति दिन पालन करते थे।

पाण्डुलिपि

उरगानो की एकमात्र पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर तेरह पंथियान् के एक गुटके में संग्रहीत है। पांडुलिपि संवत् १८२""माह सुदी १५ शुक्रवार के दिन समाप्त हुई थी। संवतोलेख वाला अन्तिम अंक नहीं है इसलिए यह पाण्डुलिपि संवत् १८२० से १८२९ के मध्य किसी समय लिखी गयी थी। प्रतिलिपि करने वाले थे आचार्य देवेन्द्रकीर्ति थे जिन्होंने इसे अपने शिष्य के लिए लिखा था।

□□□

१. नेमीश्वर को उरगानो

अथ उरगानो लिखितं नेमी कुंवर को ।

मंगलाचरण—

प्रथम चलन जिन स्वामी जुहारु, ज्यौं भवसायरु पावहि पारु ।
लहइ मुकति दुति दुति तिरी, पंच परम गुर त्रिभुवन सार ।
सुमिरत उपजै बुधि अपारु, सारद मनाविऊं तोहि ।
गुरु गोतमु मो देउ पसाउ, जो गुन गाउं जादु राइ ।
उरगानै गुन किन्नरी, प्रगट किंवैं सिव देवी कुवार ।
जाके नाम तिरे संसारु, चहुर गति गमनु निवारियौ ।
राजमति तजि जीव मिलाई, चढ़ि गिरनेरि लियो तपु जाई
नेमि कुवरु जिन वंदि हौ ।।१।।

सुनि पुराणु हरिवंस गम्हीरु, पंडित धवलु जु साहस धीरु ।
तिनि मुत रयनि जु रचि कियो, कलि केवलि जो त्रिभुवन सारु ।
सुनि भाविय भव उतरे पारु, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ।।२।।

नारायण श्रीकृष्ण का वर्णन—

वरनौ आदि जु होइ पसारु, जादौ कुल इतनौ ब्यौहारु ।
जो नाराइनु भीतरे, अरु जो जानौ नेमि कुंमारु ।
जाके नाम तिरै संसारु, नेमि कुंवरु जिन वंदि हौ ।।३।।

छप्पन कोरि सु जादौ वीरु, रहइ द्वारिका सायर तीरु ।
भोग भाइ बहु विधि रहै, राजु करै हित सौ परवारु ।
बाढै हय गय प्रभु भंडारु, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ।।४।।

जीति जुरासिंधु संपु बजाई, पुनि द्वारिका पऊते आइ ।
चक्र नाराइन कर चढै, करहि बीभा ए मंगलचार ।
पंच सबद बाजहि पनिवार, नेमि कुंवरु जिन वंदि हौ ।।५।।

सभा पूरि बैठे हरि राउ, चऊंपा सयनु न सुझै ठाउ ।
होइ अचारे पेषनै, रानी राइ भइ मनोहारी ।
नाराइन आरते उतारी, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ।।६।।

नेमीश्वर का परिचय—

तब वसुदेव कहे सतभाव, यहु नेमीसुरु त्रिभुवन राउ।
समद विजै घर औतरे, छत्रु देहु यों ज्यों नर नाहा।
बांदि चरन भरत्ते कराउ, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ॥७॥

तब हरि भनै सुनै वसदेउ, नेमि तिनो तुम जानो भेउ।
सो कारन हम सौ कहौ, विद्या बलु धा पासन माहि।
जीत्यौ कहै जुरासिंधु ताहि, मैं मारौ करि जानियौ।
तब हि कहै समिमद कुमारु, मो पहि सुनौ यांको ब्यौहार।
गुपित रूप गुन आगरौ, नेमि कुंवरु यहु गरुवो वीरु।
या समान नहि साहस धीरु, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ॥८॥

दूत का उग्रसेन के पास आकर राजुल के विवाह का प्रस्ताव—

सुनत अचंभौ हरि मन भयौ, पटतरौ नेमी कुंवर कोलियौ।
तब बलु आवत देखियौ, बिलख वदन माहरौ मन जाम।
कर हौ उपाउ विसो ताम, दूतु तब हि तिन पाठयौ।
उग्रसेनि धिया राजकुमारि, राजुल देवी रूप कि धारि।
देहु राइ कन्हरु भनौ, नेमि कुंवरु या ब्याहे आइ।
आवौ सयल साथ समुहाइ, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ॥९॥

उग्रसेनि तब हरखिय गात, परियन बोलि कही तिनि बात।
सौज करौ बहु अति धनि, जादौं आवहि स्यौ परिवार।
काला हमारी रहै अपार, मनु नाराइन रंजियौ।
बधिक बुलाइ राइ यौ कह्यौ, बन मा जीउन एकु रहै।
सो निग्रहु तुम सौ करौ, हिरन रोझ बहु जीव अपार।
आनहु घेरि न लावो वार, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ॥१०॥

बारात—

छपन कोरि जो जादौ असमान, पहुंचे उग्रसेन के थान।
पंच सबद बाजैहि घनै, छायहु सुर गगन आकासु।
सुरपति सेसु करौहि काविलास, तीनि भुवन मन कंपियौ।
नेमि कुंवर जोवहि बहु पास, जीव देखि चितु कियो उदास।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ॥११॥

नेमिकुमार का प्रश्न—

नेमी भनैं हरि सुनहु विरास, जीव कहाए बहुत अपार।
कौन काज ए घेरियौ, कारनु कवनु सुनौ बलवीर।
बहुत चिता मो भईय सरीर, सांचउ बयनु प्रगासियो।

नारायण का उत्तर—

भनहि नाराइनु सुनहु कुवार, जो नर सोइ होइ संधार।
बहु ज्यौंनार रचाइवीयो, वधिए जीउ सहु लईहि काज।
भोजन करांहु तुम्हारे काज, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ॥१२॥

नेमिकुमार का वैराग्य—

भयौ विरागी सुनत हरि वयनु, अैसो ब्याहु करैं अब कवनु।
कंकन मुकट जु परिहरे, छाडौ सर्य भंडार जु राजु।
जीव सइल मुकराऊ आजु, ब्याहु छौडि लपु सुंगह्यौ।
रथ तै उतरि चले बन मोरि, कर कंकन सब डारे टोरि।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ॥१३॥

जानिउ सयल ससार असारु, छांडि चाले सवु राजु भंडारु।
चित वैरागु जु दिढ धरौ, गो गिरनैरि सिषिरि वर वीरु।
चौथा ओयैं साहस धीरु, भुवनु ज्ञानु देखियौ।
उत्तिम ठाऊं जु आसनु देहि, लोभु मानु जे दुरि करेहि।
निहचल मनु करि सोइ रहे, पंचम महाव्रत संजमु धरैं।
कष्ट सरीर बहुत विधि करे, सील सुमति जिहि जिय बसी।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ॥१४॥

जोग जुगति सौं ध्यानु कराइ, चौगैं गमनु कि वारियौ।
मनु इन्द्र पंचौ निगेहे, कर्म तारासु परम पदु लहे।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ॥१५॥

नेमि कुंवर गिरनयरिहि, जादौ सगल विलखित भए।
कन्हर मनु आनंद भए, उग्रसेनि दुख करहि अपारु।
कियौ हमारौ सुखु भयौ असारु, नेमिकुंवर जिन वंदि हौ ॥१६॥

राजुल का विलाप—

राजुल देवी तवि सुधि लही, दासी बात जाइ तब कही।
नेमि सुनौ गिरि को गए, सुनत बासु मुछिय जाइ।

कौन पाप हम कीनै माइ, खिन खिन मुरछि भौ परिआइ।
थिन थिन उठि जोवइ चहुं पास, धरीय थिरका लेइ उसास।
को मनु मेरो धीरसै, कोनु वहोरै नेमि कुंवारु।
कोयहु आइ करै उपगारु, नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।१७।।

राजुल का अपने पिता के पास जाना—

तब उठि कुंवरि पिता पहिं जाहि, बात करत वे धरीय लजाइ।
नेमि सुने गिरि धौ भये, कहहु पिता तुम जानउ भेउ।
कौनु बहोरै जादौ देव, गवहु भरि चिरु न संहारौ।
सुनत बात सो मुरछी जाइ, व्याहु छांडि संजम लिया।
उनि वैराग कियौ किहि काज, छांडिउ छत्र संधानु राजु।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ।।१८।।

उग्रसेन का उत्तर—

उग्रसेनि यो कहि विचार, यहु सबु जानै कन्हु मुरारि।
जिन ए जीव दिराईयो, देखि तिन्हहि मनु भो वैरागी।
बोलउ कुंवरि तुम्हारो भाग, कन्हर कुरम कमाइयो।
लेन गये हम करि मनोहारि, जादौ अचल रहे पचिहारि।

दूसरे राजकुमार के साथ विवाह का प्रस्ताव—

वे दिढु संजमु लै रहे, अवहि कवरि हम करिहै काजु।
व्याहु तुम्हारा होइ है आजु, वर चोखौ ले आइ हैं।
अति सरूप सो राजकुंवारु, चौदह विद्या गुनहनि धानु।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।१९।।

राजुल का उत्तर—

यह सुनि राजुल उठी रिसाइ, ऐसौ बोलु कहै कतराइ।
व्याहु जनम औरै करो, एही जनम भो नेमि भरतारु।
उग्रसेनि सौ सबु संसारु, चढि गिरिनयरिहि जासीउ।
उनहि साथ हौं संजमु धरौ, सहऊ परीसहि सेवा करौ।
कर्म कुचित सब टारिहै, अरु नित रहहुं पिया के साथ।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।२०।।

राजुल की पुनः चिंता करना—

मारगु जोवै करै संदेहुऊ, नेन भरे जनु भावौ मेहु।
कंत कवन गुन परिहरी, गढ़ी होइ सो चलति तुरन्त।
दुद्धरु दुषु दियो मो कंत, तुम बिनु को ममु धीरवै।
जगु अध्यारौ मेरे जान, श्रौर न देषौ तुमहि समान।
नेमि कुंवर जिन बंदि हौं ।।२१।।

झुरवै कारन करै बहुतु, बर्नन जाइ तासु गुन रूपु।
रुदनु करत मारगु गहै, तुम बिनु जन्मु जु बाहायौ।
पुर्व्व जन्म बिछोही नारि, पाप पराचित हम किए।
पंथ अकेली चलति अनाहु, श्रैसो तुमहि न बुझिए नाहु।
हमहि छांडि गिरि तुम गये, पिय बिनु सुंदरि करवि काह।
रहै समीप तिहारै नाहु, नेमि कुंवर जिन बंदि हौं ।।२२।।

गिरिनार पर राजुल का पहुंचना—

करति विषादु गई सो नारि, पहुंची जाइ सिषिरि गिरनेरि।
चरन लागि सो बीनवै, कर जोरै सो बात कहाइ।
दासी वर मो जानौ राइ, सेवा बहु दिन दिन करौं।

नेमिकुमार से निवेदन—

हम परिय कवन तुम काज, छांडो व्याहु माई मो लाज।
तुम गिरनेरिहि आइयौ, दोसु कवन पीय लागो मोहि।
सो कहि स्वामी पुछु तोहि, नेमि कुंवर जिन वंदि हों ।।२३।।

नेमिनाथ का उत्तर—

नेमि भनै सुनि राज कुंवारि, हमि संजम लियौ चढ़ि गिरनारि।
राज रीति सब परिहरि, हय गय विभव छत्र धन राजु।
परियन व्याहु नही मो काजु, जीव दया प्रतिपालिहौ।
यहु संसारु जु सादह भव भवनु, बहुरिउ भ्रमि भ्रमि बूडै कौनु।
नेमि कुंवर जिन बंदि हौं ।।२४।।

अब तुम कुंवरि बहु घर जाहु, कंकन बंधौ करहु विवाहु।
हम नांहि नु करि बावरी, राजधिया तु अति सुकुमाल।

भोग विलास करो तुम बाल, तपु न करि सकौ सुन्दरि।
हम जोगी दि जोगु धराइ, ध्यान जुगति सौं कष्ट सहाइ।
हम तुम साधु न बुझिय, जाऊ कवरि हम छाडौ साथ।
करहु बहु विधि भोग विलास, नेमि कुंवरु जिन वंदि हौं।

राजुल एवं नेमिकुमार का उत्तर प्रत्युत्तर—

राजुल भनै सुनीहु जदु राइ, तुम धौ छांडि घरै हम जाइ।
पापु कौन हम कौं परै, तुम जु कहौ हम सौं घर जान।
जीव कहु तु हौं तजौ परान, चरन कमल दिन सेई है।
अरु करि हौ तुम नामु अधार, जिहि भजि भइ भव उतरै पार।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ॥२६॥

तब हि कुंवर तै उतरु दयौ, घर को अरु तुम्हारें लेहु।
वन हु अकेली तपु करौ, हम बहु कष्ट सहे चितु लाइ।
तुम हि कुंवरि सहौ कत आइ, नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ॥२६॥

उग्रसेनि धिय चतुर सुजान, कुंवर सुनहु यौ उत्तर ठानि।
पास रहौ सेवा करौ, जाउ घरें हौ कैसे रहौ।
गरुवो दुख बहु तू क्यों सहौं, अंइर तु मान को हाथि है।

बारह महिनों का विरह वर्णन, सावन भादों—

सावन भादौ वर्षा काल, नीरु अपवलु बहुल असराल।
मेघ घटा अति नऊ नई, लहु लहु वीजुरी चमकंति राति।
तब मर रयनि सह्मारे कंति, परदेसी चितु बहु भरै।
दादुर मोर रढे दिन रैनि, पपीहा पिउ पिउ करै।
को झील करौउ महै नेश, तुम बिन को जिउ राखिहै कंत।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ॥२८॥

आसोज कार्तिक—

कातिक क्वार सरद रितु होइ, नरि हुलासु करै सबु कोई।
निर्मल नीर सुहावनो, रिएसि निर्मल ससि अति सोहंति।
भरि जलि नैन सम्हारै कंति, विरह व्यथा अति ऊपजै।
गीत नाद सुनि मैं चहुं पास, हम तुम बिनु पिय धरी उनास।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ॥२६॥

मंगसिर पोष —

अघन पुषु अति सीत अपारु, जादौ बिंषु व्यापै संसार ।
काम अगिनि बहु पर जलु, घर घर सुख करै सब कोई ।
तुम बिनु हमहि कहा घर होइ, हिरदौ कंपै पात ज्यौं ।
निसि अंध्यारी परतु तुसारु, काम लहरि अति होइ अपार ।
यहु मनु तरसै पीउ बिना, सबु संसार करै अति भोग ।
राजुल रटै करै पीय सोगु, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३०।।

माघ फाल्गुन —

माघ पवनु फागुन रितु होइ, रितु बसंत खेलै सब कोई ।
कंत सतवर कामिनी, दिन दिन रागु करै अनसरै ।
संजोग सिगारु बहुत विधि करे, फागुण फागु सुहावनी ।
सोहै सरिसु करै दिनु खेलु, गावहि गीत करे पिय मेलु ।
परि मेधुरि उडावसी, हूंज, सबनि सिर उडई सीहु ।
चोवा चन्दन अगर कपूरु, तिलकु करै कर सुन्दरी ।
घर घर बांधे बन्धन वार, पंच सबद बाजही अति भार ।
पिय परिहसु राजुल करै, दिन खिन तुम्ह ही संह्यारै कंत ।
राखि सकै को हस उडात, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३१।।

चैत्र बैशाख —

चैतु सुहावो अरु बैशाख, वनसपती सब भई हुलासु ।
भार अठारहु मौरियौ, सब फुलै नन्दन बन फूल ।
तासु सुगंध भौर रस भुलि, फलहिते अमृत फल घनै ।
वन कोयल कुहु कुहु सुर करहि, गहु गहु मोर सुहावनै ।
विरहिनि जम म्हारै कंत, पिय बिनु जनमु अकारथ जंत ।
रइनि निरासी क्या गमैं, हमहि पिया अनि करहु निरास ।
चौसर रैनि सु म्हारी आस, नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।३२।।

जेठ आषाढ —

जेठु असाढु गरम रितु होइ, धाम घरे व्यापै सब कोइ ।
तपा तपै तनु अति तपै, पेम अगिनि तन डहै सरीरु ।
लुवल वहि झर सघन परही, सीतल जतन ते सघल करही ।
श्रीखंड घसि तनु मंडहि, अरु वीच गरम पसी जैं देह ।

होइ बिथा अति पिय के नेहु, बाढ़ सरीरु सुहावानो ।
तपती अधिक पिय तुम बिनु होय, हंस उडत न राखे कोई ।
निसि वासर गुन तुम्हेरो, सीतल अवन तुम्हारे कंत ।
सुनत हमहि सुखु होइ तुरन्त, नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ।।३३।।

ए षट् रितु को सकै सह्यारि, उपजै दुषु तुमहि सम्हारि ।
यहाँ करियहु मनु राखि है, रहि है पास तुम्हारे देव ।
करिहैं चरन कमल नित सेव, नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ।।३४।।

जादौ राइ भनै सुनि बैन, रुदनु करहु कंत भरि जल नैन ।
हम मनु संजमु दिढु धरै, तुम अति गाढु कत करौ बहूत ।
राजु करहु घर सखिनि संजुत्त, नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ।।३५।।

तब सुनि राजुल बिलखी होई, तुम बिनु स्वामी गैहै कोइ ।
साथ सहित संजमु धरौ, अरु श्रावक व्रत कर उपवास ।
और सबै छाडी हम आस, कष्ट बहु विधि हौं सहौ ।
करहु दया मो दे उपदेसु, ज्यो तिरिए संसारु असेसु ।
नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ।।३६।।

यह सुनि बोलैं त्रिभुवन नाथ, धर्म सनेहु रहै हम पास ।
मनु निहचलु करि राखौ, सुनहु कुंवरि संसारु असारु ।
भव सायरु जलु गहीर अपारु, चतुर्गति गमनु निवारियौ ।
जीव छौ चौरासी जाति, सहइ बहुत दुषु अंत अन भांति ।
भ्रमतनि अंतु न पाइऐं, रहट माल ज्यौं यहु जीव फिरैं ।
रूप अनेक बहुत विधि करैं, नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ।।३७।।

अब समिकितु धारियौ दिढ चितु, मोख सुगति जो लहइ तुरन्त ।
पर परिहरि सुनि सुन्दरी, चेतनि सुन्दरी सम करहु गुन जासु ।
ध्यानु धरहु जानौ दीनौ तासु, मिथ्या मोहनि परिहरौ ।
पंच परम गुरु जपु पाहु, जीव दया जीवहु तप राहु ।
नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ।।३८।।

पालउ आठ मूल गुन सारु, सात बिसन तजि तिरि संसारु ।
वर अनोवत दिन करहु, अरु ग्यारह प्रतिमा जिय धरौ ।
त्रेपन क्रिया करि भव तिरौ, गुन अस्थान चौदह चढौ ।
ए श्रावक व्रत कीजहि सारु, जिहि तैं कुंवरि तिरौ संसारु ।

पंच मंगल धुपाइये, यहु तजि कुंवरि निवारी मोहु ।
दीक्षा धरऊं मोहि व्रत देउ, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३६।।

लै संजमु व्रत ध्यानु धराहि, जो परुजानि ते हारि कराइ ।
अगम गुनु गहि निर्मलौ, इहि विधि कर्म दसन सो करे ।
राजल नेमी चलत नित धरें । नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।४०।।

नेमि कुंवर राजमती नारि, दुहु संजमु लियौ चढि गिरनेरि ।
तीनि भुवन जसु मंडियो, अरु तिन उपजौ केवल ग्यानु ।
सुरनि सहित सुरपति अकुल्यानु, करन महोछो आयौ इन्द्रु ।
पूजा नित सेवा कराइ, पंच सबद तल रसी बजाइ ।
कलश अठोत्तर धरियौ धाई, करि आरती धर भुज वंदियौ ।
समोसरनु स्वामी को कियौ, सुर नर केतिक आईयो ।
गन गंध्रर्व वीद्याधर जछि, जादौ सयलति राइ संधि ।
नेमि कुंवर वंदिहौं ।।४१।।

बनी इन्द्रु तवही तिनि कियो, सुनतई नु जग मन भयौ ।
शीव निदा नदि ते भाऐ, जै जैस वदु तिहु लोकहू भए ।
जै जै सवद तिहु लोकहू भए, पंचम गति सीद्धत सुभयौ ।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।४२।।

प्रशस्ति--

श्रावगु सिरीमलु अरु जसवंत, निहचै जिय धर्म धरंत ।
चरु चलम भवि वंदती, पुत्र एकु ताके घर भयौ ।
जनमत नाउ चतुरु तिनि लियौ, जैन धर्म दिढु जीयहू धरौ ।
नेमि चरितु ताके मन रहै, मुनि पुरानु उरगानौ कहै ।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।४३।।

मधि देसु सुख सयल निधान, गढु गोपाचलु उतिम ठानु ।
एक सोवन की लंका जिसि, तौवरु राउ सवल बर वीर ।
भुवबल आप जु साहस धीर, मान सिंधु जग जानियें ।
ताके राजु सुखी सब लोगु, राज समान करहि सब भोगु ।
जैन धर्म बहु विधि चलै, श्रावग दिन जु करे षट् कर्म ।
निहचै चितु लावहि जिन धर्म, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।४४ ।।

संवतु पन्द्रहसै बो गनै, गुन गनुहत्तरि ता उपरि भनै।
भादो वदि तिथि पंचमी वारु, सोम नखितु रेवती मास।
लगुन भलौ सुभ उपजी मती, चन्द जन्म वलु पाइयौ।
चतुर भनै भखौ समलनि वासु, मुनिय सुनत जिय करहि न हासु।
लद्धि उपसमै बुधि हीनु, मैं स्वामी को कियो बखानु।
पढत सुनत जां उपजैं ग्यानु, मन निहचल करि जिय धरऊ।
राजमती जिन संजमु लियौ, नेमि कुंवर नेमि सयल कीनयौ।
नेमि कुंवर नेमि जिन वंदिहौं ।।४५।।

।। इति नेमिसुर को उरगानो समाप्त ।।

संवत् १८२""वर्ष सव माह वदी १४ व सेरो गुरु। लीखीतं श्री देवेन्द्रकीति आचरज सीसल के पठ।

□ □ □

२. गीत (गारि)

[१]

गा आनो हो को को चेरैं ढोलरीया कस जाई ।।
मन चेतहु हो अमुका सबई सुणहु विचारु ।। मन ।।
चहु गति भवकत भमहु, संसारु, धरु परविणु सवु भयो है जारु।
जगतारनु जिन नामु अधारु, जीवदया विनु धरम्मु ण सारु ।। मन ।।
जिनवर पूजा रचहु करि भाउ, आठ दव्व लेई पूजा साहु ।। मन ।।
पर परम गुरु जाय अपाहु, समिकतु निहचलु चितह धराहु ।। मन ।।
मवति जिलधु पंचम गति जाहु, संसारह श्रावग कुलि सारु ।। मन ।।
भनई चतु श्रावगु श्रीमारु, मन चेतहु हो अमुका सबई सुणहु विचार ।।

[२]

गाडी के गडवार की पइया धर कहिगै ।। इहि मायति ।।
गनधर गोतम स्वामी, सुमिरि जिणु वंदहुगैं।
भव संसारु अपारु, भविक गण ऊतरहिगैं ।

चौगं गवणु निवारि, मुकति सिरी सौ जैगी ।
तुम्ह लईय भविक जन लेहु, कहा भव की जैगी ।
श्रावग कुलि अवतार, बहुरि पर लीजैगें ।
धर्म्म दया जग सारु, सुनिह यैको जैगे ।
दस लखणि जिन धम्मु, दिनहु किन कीजैगे ।
सातौ विसन नीवारि, कर्म्म क्यो कौ जैगै ।
तिजि मिथ्यातु अपारु, सुमति जी घरि जैगी ।
क्रोधु मान मदु लोभु न मया की जैगी ।
परु परिहरि भव दूरि कवन सुखु पावहिगें ।
परमात्मा मन ध्यानु परिवि चितु लावहिगो ।
जा ते तिरिहु तुरंत संसारु मोख पद पावहिगें ।
श्रावग सुणहु विचारु, चतुरु यों गावहिगें ।।

[२]

आइ तिवा वावारी के जईयो ।।
बावा वारी क्यो जइयो, भवियण वंदहु करि जोरि ।
जिनवर चलन जुहारी, चं गें गमनु निवारि ।
भव ससारहु तारं, संभलि जीव अजाणा ।
माया मोहु भुलाना, बहु मिथ्यातु भरीई ।
श्रावग कुलि कत आयो, अहलं जन्मु गवायो ।
ऊतिम कुलि कत अवतरीया, सात विसन मद भरिया ।
मोहु महा मद राच्यो, मूलगुना नरु जाणें ।
ईन्द्री पाचो सुखु मानो, आई तिवा बावारी कं जइयो ।।
भवीयहु लाख चोरासी, बंध्यौ मोहु की पासि ।
जिणवर चलन जुहारी, आवागमनु निवारी ।
यहु जीय लोकु भमाई, सर्व देय जुहारे ।
को भव पार उतारौ, जीव दया नरु पारे ।
सिवपुरि गमनु निवारै, आई तिवा बाबारी के जईयो ।
भोजनु राति कराई, बहु संसार भमाही ।
औषिधि दानु न दीणां, सुधो भाउ न कीणे ।
मिथ्या मोहु भुलाणा, जिनवर धम्मु न जाण्यो ।
लहियो श्रावग कुलि जन्मु करि दिन जिणवर धम्मु ।
ज्यों जीय लहै सुख ठाऊ, तो धरि निहचलु भाऊ ।

आतमा ध्यानु करीजै, लहि पंचम गति लीजै।
श्रावग सुणहु विचारु, भनई चतुरु श्रीमारु ॥

क्रोध गीत [४]

क्रोध—

क्रोध न कीजै जीयरा, करहु उपसमु हो।
इसउ बुद्धि परि[illegible] धरहि, क्रोध दविगिनि जाव [illegible] जोरी।
तब अप्पो हो मप्पो तापई परतवै।
परतवै मप्पा गुननि जारई, क्रोध हीयरा जव धरै।
सुमति करनए बीसरई, ईही सील संजमु सबु अविरया।
जव सुरिस मन संचरेई, इम जानि जिवड़ा गहहि उपसमु।
क्रोधु जिणमत कोई करै, क्रोध न कीजै जीवरा ॥१॥

(२)

मान—

मानु न कीजै जोईवरा।
तिसु मानहि हो मानहि जीयरा दुखु सहै।
अप्पु सराहै हो भलो, पुणि पर की हो पर की निंत करई।
पर करेइ निंदा नित प्रानी, इसोह मन गरवं खरो।
हुउ रूप चतुरु सुजानु संदरु ईसोप भनै मद भरै।
बहुमेव करि करि कम्म बंधो, लाख चौरासी महि फिरै।
इम जानि जियरा मानु परिहरि, मानु बहु दुखह करी ॥२॥

(३)

माया—

माया परिहरि जीवडा, जीऊ सुर्गहि हो सुहि पावइ सुख घनो।
माया कपटं जे चलहि ते पावहि हो पावहि दुख दालिदु घनो।
दुख तनोऊ दालिदु भरिऊ जीवरा, कम्मं फेरं ऊडो लई।
घर बरहु भीतरि मानु प्रानी बयन मीठे बोलए।
परपंचु करि करि ठगई पर कहु कपटु सबु माया तनो।
इम जानि जीवडा तिजहि माया, जीऊ सुपावई सुख घनो ॥३॥

(४)

लोभ—

लोभु न कीजई जीवरा, तिसु लोभहि हो लोभहि लाग्यौ पापु घनौ ।
तिसु पापहि हो पापहि जीयडा दुखु सहेई ।
दुखु सहइ जीउयरा लोभ काहन लोभ कहुडीउ तरफरई ।
ईहु लोभ कारण जीऊ पतिगा, देखत इंदियडा परई ।
संकलप विकलप भर्‌योऊ जियडा, लोभु दंखइ चित घरई ।
इम भनई वं मनि विरति भवियन, लोभु जिन मत कोई करे ।।४।।

।। इति क्रोध गीत समाप्त ।।

ये सभी चारों पद शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा मन्दिर तेरहपंथियान् जयपुर के गुटके में संग्रहीत हैं ।

□ □ □

४

गारवदास

गारवदास विक्रमीय १६ वीं शताब्दि के चतुर्थ पाद के कवि थे। उनके सम्बन्ध में सर्वप्रथम मिश्रबन्धु विनोद में एक उल्लेख मिलता है जिसमें एक पंक्ति में कवि का नाम, ग्रन्थ नाम, रचना काल एवं रचना स्थान का नाम दिया हुआ है। लेकिन उसमें गारवदास के स्थान पर गौरवदास तथा रचना संवत् १५८१ के स्थान पर संवत् १५८० दिया हुआ है। मिश्रबन्धु के परिचय के पश्चात् भी हिन्दी विद्वानों के लिए गारवदास अज्ञात एवं उपेक्षित से रहे। सन् १९४८-४९ में जब मैंने राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ-सूची बनाने का कार्य प्रारम्भ किया तो जयपुर के ही दि० जैन बड़ा मन्दिर तेरह पंथियान् में इसकी एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई जिसका उल्लेख ग्रन्थ-सूची के चतुर्थ भाग में पृष्ठ संख्या १६१ के २३११ संख्या पर किया गया। लेकिन उस समय भी कवि के महत्व को प्रकाश में नहीं लाया जा सका और इसके पश्चात् भी कवि एवं उनका काव्य विद्वानों से ओझल ही बने रहे।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाश्य दूसरे पुष्प के संवत् १५६० से १६०० तक होने वाले कवियों के सम्बन्ध में जब निर्णय लेने से पूर्व गारवदास एवं उनकी रचना यशोधर चरित को देखा गया तो हिन्दी की महत्वपूर्ण कृति होने के कारण कविवर बूचराज के साथ गारवदास को भी सम्मिलित किया गया।

गारवदास हिन्दी कवि थे लेकिन वे प्राकृत एवं संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। यद्यपि अभी तक उनकी एक ही काव्य कृति यशोधर चरित्र उपलब्ध हो सकी है लेकिन यही एक कृति उनकी विद्वता की परख के लिए पर्याप्त है। वैसे कवि की और भी रचनायें हो सकती हैं लेकिन जब तक उत्तर प्रदेश के प्रमुख भण्डारों की खोज पूर्ण न हो जावे तब तक इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

कवि परिचय

कविवर गारवदास उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। उनका ग्राम था फफोतूपुर

(फफोंदु) जिसमें श्रावकों की अच्छी बस्ती थी। वे प्रति दिन अष्ट द्रव्य से जिन पूजा करते थे। उनके पिता का नाम राम था। कवि पर सरस्वती की पूर्ण कृपा थी। इसलिए उनका वाक्य ही काव्य बन जाता था।[1] पुराणों को सुनने में कवि को विशेष रुचि थी। एक बार कवि को नगर कंवई के निवासी साह थेघु के पास जाने का काम पड़ा। जब थेघु श्रावग ने गारवदास के वचनामृत का पान किया तो वह प्रसन्न हो गये और हाथ जोड़कर कहने लगे कि यदि यशोधर कथा को काव्य बद्ध कर सको तो उसका जीवन सफल माना जावेगा। थेघु श्रीमन्त ने यह भी कहा कि जिस प्रकार कवि ने इस कथा को अपने गुरु से सुनी है उससे भी अधिक सुन्दर रूप से उसको वह चाहता है। कथा कवित्त बंध चौपई छन्द में होनी चाहिए। इस प्रकार प्रस्तुत काव्य रचने की प्रेरणा कवि को फफोंदु निवासी थेघु से प्राप्त हुई थी।[2]

कवि ने यशोधर चरित्र की रचना संवत् १५८१ भादवा शुक्ला १२ बृहस्पतिवार को समाप्त की थी।[3] रचना समाप्ति के समय कवि सम्भवतः अपने आश्रयदाता के पास ही थे।

आश्रयदाता

उत्तर प्रदेश में गंगा और यमुना के बीच में कंवई नाम की नगरी थी। उसको देवतागण भी सुख और शान्ति की नगरी मानते थे। वहां ३६ जातियां थी

---

१. राम सुतनु कवि गारववासु, सरसुति भई प्रसन्नी जासु।
बसत फफोतपुर शुभ ठोर, श्रावग बहुत गुणी जहि और ॥५३२॥
वसुविह पूज जिनेस्वर एहानु, लै प्रभाह दिन सुनहि पुरानु ॥५३३॥

२. थेघु सनें कवि गारवदासु, निसुनि वचनु चित भयो हुलासु।
द्वै कर जोरि भणै गुन गेहु, सफल जनम मेरौ करि लेहु ॥१८॥
सलिल कथा जसहर की भासि, जिम गुरु पास सुनी तुम रासि।
जो बहु आविकनिमुर भए, अरथ कठोर चरित रचनए ॥१९॥

३. संवत् पन्द्रह सै इक्यासी, भादौ सुकिल अवए द्वावसि ॥५३३॥
सुर गुरुवारु करणु तिथि भली, पूरी कथा भई निरमली।
जसहर कथा कही सब भासि, सिरवसौ भाव परम गुर पासि।

जो सभी सम्पन्न थी ।[1] अभयचन्द[2] वहाँ का शासक था जो अतीव सुन्दर एवं पूर्ण चन्द्रमा के समान था । प्रजा में सुख एवं शान्ति व्याप्त थी तथा किसी को कोई भी दुःख नहीं था। उस नगरी में श्रावकों की घनी बस्ती थी। उसी में पद्मावती पुरवाल जाति थी जो जैन धर्मानुयायी थी। उसी में साहू कान्हर थे और उनके सुपुत्र थे भारग साहू। वे यशस्वी श्रावक थे। उन्होंने चार गांव बसाये थे जिनके नाम थे जसरानो, गौंछ, अैतपुर और सौहारु ।[3] इनके बसाने से उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी। सुलतान भी उसके कार्य से प्रसन्न था। उसकी धर्म पत्नि का नाम था देवलदे ।[4] उसके उदर से तीन सन्तान हुई जिनके नाम थे मेघु, जनकु एवं थेघु साहू। थेघु साहू बहुत ही स्वाध्यायी श्रावक थे। एक बार थेघु साहू ने संघ सहित पार्श्वनाथ की यात्रा भी की थी और वापिस आने पर उसने नगर में सबको भोजन कराया। कुछ समय पश्चात् उसको पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हुई। थेघु सेठ दानशील भी थे और लोगों को भक्तिपूर्वक दान देते थे ।[5] वे रात्रि को जागरण करवाते थे जिससे श्रावकों में जिनेन्द्र भक्ति का प्रचार हो।

---

१. गंग जमुन बिच अंतर बेलि, सुख समूह सुरमानहि केलि ।
नयरी कैलई जनु सुरपुरी, निवसै धनी छतीसौ कुरी ।।५२२।।

२. अभयचन्दु जहु राउ निसंकु, जनु कुलु षोडस कला मयंकु ।
परजा दुखी न दीसै कोइ, घर घर बधि बधाऊ होइ ।।५२३।।

३ श्रावग बहुत बसहि जहि गाम, जनु आसिकौ दीनौ सियराम ।
पोमावे पुरवर कुलसील, गुर समान घर मानहि कील ।।५२४।।
सा कन्हर सुतु भारग साहु, जिनि धनुष रंचि लियो जसलाहु ।
जस रानो परनु सुभ ठोरु, गौंछ महापुरु दूजो और ।।५२५।।
मनगरु अैतपुरु अरु सौहारु, चारयौ गांव बसावन हारु ।
जासु नामु पढुवा सुरिताम, राज काज जान्यो सुरिताण ।।५२६।।

४. तासु नारि देवलदे नाम, जिम ससिहर रोहिनि रतिकाम ।
सोलु महासहि तीनो पोषि, नंदन तीनि अवतरे कोषि ।।५२७।।
मेघु मेघु परसूजस रासि, जनुकु सु सूर ससि सुक्र अकासि ।
जेठो थेघ साहु सुपहाणु, जासु नाम में ठयो पुराणु ।।५२८।।

५. पुत्र हेतु जानें उपगारु, जिनवर भगति करावण हारु ।
बहुत गोठि लै चाल्यो साथ, करी जात सिरी पारसनाथ ।।५२९।।
खरचि बहुतु धनु रावन थान, घर आयौ दियो भोयण दाण ।
ताको पुत्र रत्नु अवतरयौ, रयनायरु गुण दीसै भरयौ ।।५३०।।

यशोधर चरित की कथा को समस्त जैन समाज में पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त है। यही कारण है कि इस कथा पर आधारित चरित्र, चरित, रास एवं चौपई आदि संज्ञक काव्य कितने ही जैन कवियों ने निबद्ध किये हैं तथा हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा में ही नहीं किन्तु प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत में भी यशोधर के जीवन पर कितने ही काव्य मिलते हैं।

यशोधर के जीवन से सम्बन्धित स्वतन्त्र रचना का उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य उद्योतन सूरि (७७९ ई०) ने अपनी कुवलय माला कहा में प्रभंजन कवि के किसी यशोधर चरित का उल्लेख किया है। लेकिन उक्त कृति अभी तक अनुपलब्ध है। इसके पश्चात् महाकवि हरिषेण ने अपने बृहत्कथाकोष (९३२ ई०) में यशोधर के जीवन से सम्बन्धित एक स्वतन्त्र आख्यान लिखा है इसलिए अभी तक उपलब्ध रचनाओं में हम इसे यशोधर के जीवन पर आधारित प्रथम आख्यान मान सकते हैं। लेकिन १० वीं ११ वीं शताब्दि के साथ ही यशोधर के आख्यान ने जैन समाज में बहुत ही लोकप्रियता प्राप्त की और एक के पश्चात् दूसरे कवि ने इस पर अपनी लेखनी चलाकर उसे और भी लोकप्रिय बनाने में पूर्ण योग दिया।

राजस्थान के जैन भण्डारों में यशोधर के जीवन पर आधारित निबद्ध कितने ही काव्य उपलब्ध होते हैं। इन काव्यों के नाम निम्न प्रकार हैं—

अपभ्रंश

१.	जसहरचरिउ	महाकवि पुष्पदन्त	१० वीं शताब्दि
२.	,,	,, रइधू	१५ वीं शताब्दि

संस्कृत

३.	यशस्तिलक चम्पू	आ० सोमदेव सूरि	संवत् १०१६
४.	यशोधर चरित्र	वादिराज	११ वीं शताब्दि
५.	यशोधर चरित्र	भट्टारक सकलकीर्ति	१५ वीं शताब्दि
६.	,,	आचार्य सोमकीर्ति	संवत् १५३६
७.	यशोधर कथा	भट्टारक विजयकीर्ति	१५ वीं शताब्दि
८.	यशोधर चरित्र	वासवसेन	—
९.	,,	पद्मनाभ कायस्थ	—
१०.	,,	पद्मराज	—
११.	,,	पूर्णदेव	—
१२.	,,	ज्ञानकीर्ति	सं० १६५६

१३.	यशोधर चरित्र	श्रुतसागर	१५ वीं शताब्दि
१४.	,,	क्षमाकल्याण	सं० १८३९

हिन्दी राजस्थानी

१५.	यशोधर रास	ब्रह्म जिनदास	१६वीं श० (प्रथम चरण)
१६.	,,	भट्टारक सोमकीर्ति	,, (चतुर्थ चरण)
१७.	यशोधर चरित	देवेन्द्र	सं० १६८३
१८.	,,	परिहानन्द	सं० १६७०
१९.	यशोधर रास	जिनहर्ष	सं० १७४७
२०.	यशोधर चौपई	खुशालचन्द	सं० १७८१
२१.	,,	अजयराज	सं० १७९२
२२.	यशोधर रास	लोहट	१८ वीं शताब्दि
२३.	यशोधर चरित्र	मनसुखसागर	सं० १८७८
२४.	यशोधर रास	सोमदत्त सूरि	—
२५.	,,	पन्नालाल	सं० १९३२

इस प्रकार यशोधर के जीवन से सम्बन्धित राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में २५ कृतियां प्राप्त हो चुकी हैं और अभी और भी कृतियां मिलने की सम्भावना है।

उक्त सूची के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गारवदास द्वारा यशोधर की कथा को काव्य रूप देने के पूर्व महाकवि पुष्पदन्त एवं रइधू ने अपभ्रंश में, आचार्य सोमदेव सूरि, वादिराज, भट्टारक सकलकीर्ति, भट्टारक सोमकीर्ति एवं विजयकीर्ति ने संस्कृत में तथा ब्रह्म जिनदास, भट्टारक सोमकीर्ति ने राजस्थानी भाषा में यशोधर के जीवन पर काव्य कृतियां निबद्ध की हैं। यद्यपि कवि गारवदास ने वादिराज के यशोधर चरित्र को अपने काव्य का मुख्य आधार बनाया था लेकिन उसने यशोधर से सम्बन्धित रचनाओं को भी अवश्य देखा होगा लेकिन स्वयं कवि ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है।

गारवदास का यशोधर चरित ५३७ छन्दों का काव्य है। वह न सर्गों में विभक्त है और न सन्धियों में। प्रारम्भ से अन्त तक कथा बिना किसी विराम के धारा प्रवाह चलती है और समाप्त होने पर ही विराम लेती है। इससे पता चलता है कि अधिकांश जैन कवियों ने काव्य रचना की जो शैली अपनायी थी उसका गारवदास ने भी अनुसरण किया। प्रस्तुत कृति यद्यपि हिन्दी भाषा की कृति है लेकिन कवि ने उसमें बीच-बीच में संस्कृत के श्लोकों एवं प्राकृत गाथाओं का प्रयोग

करके न केवल अपनी भाषा विद्वता का परिचय दिया है लेकिन काव्य अध्ययन में थकने वाले पाठकों के लिए विराम तथा संस्कृत प्राकृत भाषा भाषी पाठकों के लिए नयी सामग्री उपस्थित की है। १६ वीं शताब्दि में यह भी एक काव्य रचना की पद्धति थी। भट्टारक ज्ञानभूषण (संवत् १५६०) ने भी 'आदीश्वर फाग' में इसी शैली की रचना की है जो गारवदास के ही समकालीन कवि थे।

यशोधर चरित की कथा का सार निम्न प्रकार है—

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र में राजगृही नगरी थी। जो सुन्दरता तथा वन उपवन एवं महलों की दृष्टि से प्रसिद्ध थी। वहां के राजा का नाम मारिदत्त था। राजा मारिदत्त की युवावस्था थी इसलिए उसकी सुन्दरता देखती ही बनती थी। कला एवं संगीत का बहुत प्रेमी था। एक दिन एक भस्म लगाया हुआ योगी उसके नगर में आया। योगी के बड़ी-बड़ी जटायें थी तथा वह भंग के नशे में घुत्त हो रहा था। गौरवर्ण था। उसका नाम था भैरवानन्द। नगर में जब भैरवानन्द की तान्त्रिक एवं मान्त्रिक की दृष्टि से चारों ओर प्रशंसा होने लगी तो राजा ने भी उसे अपने महल में मिलने के लिए बुला लिया। भैरवानन्द के महल में आने पर राजा ने उसका विनय पूर्वक सम्मान किया। राजा की भक्ति से वह बहुत प्रसन्न हुआ और कोई भी इष्ट वस्तु मांगने के लिए कहा। राजा ने अमर होने, एक छत्र राज्य चलाने तथा विमान में चलने की इच्छा प्रकट की। भैरवानन्द ने राजा की प्रार्थना को पूर्ण करने का आश्वासन दिया लेकिन उसने चंडमारि देवी के मन्दिर में बलिदान के लिए सभी प्रकार के जीवों को लाने तथा एक मानव युगल का भी बलिदान करने के लिए कहा। राजा तो विद्या के लिए अन्धा हो चुका था इसलिए उसने तत्काल अपने अनुचरों को आदेश पालने के लिए कहा। उसके सेवक चारों ओर दौड़ गये तथा सभी प्रकार के पशु पक्षियों को लाकर उपस्थित कर दिया। लेकिन मानव युगल खोजने पर भी नहीं मिला।

कुछ ही समय पश्चात् वन में अनेक मुनियों के साथ सुदत्त मुनि का आगमन हुआ। वह वन खिल उठा। चारों ओर पुष्पों पर भ्रमर गुञ्जार करने लगे एवं कोयल कुहु कुहु करने लगी। मुनि ने उसी वन में ठहरने का विचार कर लिया। लेकिन वह वन गंधर्वों का भी निवास स्थान था जहां वे केलि किया करते थे इसलिए सुदत्ताचार्य को वह वन समाधि के उपयुक्त नहीं लगा। वह अपने संघ सहित श्मशान भूमि पर चले गये। आचार्य ने एक युवा मुनि एवं साध्वी को नगर में आहार के लिए जाने को कहा। वे दोनों भाई बहिन थे। दोनों अत्यधिक कमनीय शरीर के थे तथा बत्तीस लक्षणों वाले थे। इतने में ही राजा के सेवकों की दृष्टि

उन दोनों पर पड़ी। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा और वे दोनों को महामारि देवी के मन्दिर में ले गये।

मन्दिर का दृश्य विकराल था। चारों ओर पशु पक्षियों की मुंडियां, अस्थियां एवं उनका रक्त बिखरा हुआ था। भयंकर दुर्गन्ध से वातावरण अत्यधिक भयानक था। भाई ने बहिन को शरीर से मोह छोड़ने तथा आत्म स्थित होने के लिए समझाया। साथ ही में साधु संस्था के महत्व को भी समझाया। जब राजा ने अत्यधिक सुन्दर उस मानव युगल को देखा तो वह भी उनके रूप लावण्य को देखकर आश्चर्य करने लगा। उसने उन दोनों से दीक्षा लेने का कारण जानना चाहा तथा बाल्यावस्था में ही तपस्वी बनने का कारण पूछा। राजा का वचन सुनकर अभयकुमार ने हंसकर निम्न प्रकार अपनी जीवन गाथा कही—

अवन्ती देश की उज्जयिनी राजधानी थी। वह नगर स्वर्ग के समान सुन्दर था। चारों ओर फलों से लदे वृक्ष तथा मन्दिर एवं महलों से युक्त थी। वहां के नागरिक भी देवता के समान थे। नगर में सभी जातियां रहती थीं। वहां के राजा का नाम यशोघु था तथा चन्द्रमती उसकी रानी थी। वह शरीर से कोमल तथा गजगामिनि थी। न्यायपूर्वक शासन करते हुए जब उन्हें बहुत दिन बीत गए तो उन्हें एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम यशोधर रखा गया। बालक बड़ा सुन्दर एवं होनहार लगता था। आठ वर्ष का होने पर उसे पाठशाला में पढ़ने भेजा गया। विद्यालय जाने के उपलक्ष में लड्डू बांटे गये तथा गणेश एवं सरस्वती की पूजा की गयी। यशोधर ने थोड़े ही दिनों में तर्कशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थ तथा अश्व, हाथी आदि वाहनों की सवारी सीख ली। पढ़ लिखकर वह पुनः माता-पिता के पास गया। इससे दोनों बड़े आनन्दित हुए। यशोधर का विवाह कर दिया गया। एक दिन राजा यशोघु सभा में विराजमान थे कि उन्होंने अपने सिर में एक श्वेत केश देख लिया इससे उन्हें वैराग्य हो गया और अपना राज्य कार्य यशोधर को सौंपकर स्वयं तपस्वी बनने के लिए वन में चल दिये।

यशोधर बड़ी कुशलता पूर्वक राज्य कार्य करने लगा। उसकी महारानी का नाम अमृता था जो देवी के समान थी। कुछ काल उपरान्त एक कुमार उत्पन्न हुआ जिसका नाम यशोमती रखा गया। यशोधर ने अपने राजकुमार को शासन का भार सौंप स्वयं अपनी रानी अमृता के साथ आनन्द से रहने लगा। यशोधर को अमृता के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। अमृता के महल के नीचे ही एक कुबड़ा रहता था जो दुर्गन्धयुक्त शरीर वाला, अत्यधिक विरूप था लेकिन वह संगीत का बहुत ही जानकार था। रानी ने जब उसका संगीत सुना तो वह उस पर

आसक्त हो गयी और उसके बिना अपना जीवन व्यर्थ समझने लगी। अर्थ रात्रि को जब राजा यशोधर उसके पास सो रहा था तो वह उसको सोता हुआ छोड़कर अपनी एक सेविका के साथ उस कुबड़े के पास चल दी। कवि ने रानी अमृता एवं दासी की बहुत ही सुन्दर वार्ता प्रस्तुत की है साथ में संगीत विद्या का भी राग रागनियों के साथ अच्छा वर्णन किया है।

जाती हुई रानी के नुपुर की आवाज सुनकर राजा को चेत हो गया। जब उसने रानी को अर्ध रात्रि में कहीं जाते हुए देखा तो एक बार तो उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। लेकिन उसे पलंग पर नहीं पाकर वह भी हाथ में तलवार लेकर रानी के पीछे-पीछे दबे पांव से चल दिया। रानी ने कुबड़े को आकर जगाया और उसके चरणों को छूआ। कुबड़े ने उसे गारी निकाली फिर भी रानी एवं उसकी दासी हँसती रही और उसकी मनुहार करती रही। रानी ने उस कुबड़े के गले लग कर कहा कि वह उसके बिना नहीं रह सकती। लेकिन वे दोनों ऐसे लगे जैसे हंस के साथ कौवा। रानी ने कुबड़े के पांव दबाये तथा सभी तरह से उसकी सेवा की। यह देखकर राजा से नहीं रहा गया और उसने तलवार निकाल ली। लेकिन उसने विचार किया कि स्त्रियों पर तलवार चलाना कायरता कहलाती है तथा कुबड़ा जो दिन भर झूंठन खाकर पेट भरता रहता है उसे मारने से तो उल्टा उसे अपयश ही हाथ लगेगा। यह सोचकर राजा ने तलवार वापिस रख ली।

वहां से राजा यशोधर अपने हृदय को वज्र के समान करके पालकी में बैठ कर चित्रशाला चला गया। रानी तो काम विह्वला थी इसलिये कुबड़े के साथ काम क्रीड़ा करके वापिस महलों में आ गयी। अब वह राजा को जहरीली नागिन के समान लगने लगी। जिसके साथ क्रीडा करने में राजा आनन्द की अनुभूति करता था वह अब विषवेलि लगने लगी। राजा को रानी की लीला देखकर जगत् से उदासीनता हो गयी। प्रातःकाल हुआ। उसकी माता चन्द्रमती भगवान की पूजा करके हाथ में आसिका लेकर राजा के पास आयी। राजा द्वारा माता के चरण छूने पर उसने आशीर्वाद दिया। राजा ने अपनी माता से कहा कि उसने आज रात्रि को जैसा सपना देखा है उससे लगता है उसके राज्य का शीघ्र विनाश होने वाला है। इसलिए उसके वैराग्य धारण करने का भाव है। लेकिन माता ने कहा कि तपस्वी बनना कायरता है। जो राजा स्वप्न से ही डरता है वह युद्ध भूमि में कैसे जा सकता है। इसलिए राजकाज करते हुए ही देवी देवताओं को बलि चढ़ा कर उनको प्रसन्न कर लेना चाहिए जिससे सारे विघ्न दूर हो सकें। नगर के बाहर कंचाइण देवी है उसको बलि चढ़ाने से सब विघ्न दूर हो सकते हैं। लेकिन

राजा ने ऐसे किसी भी कार्य को करने का प्रतिवाद किया और हिंसा से कभी शान्ति नहीं मिल सकती, ऐसा अपना मन्तव्य प्रकट किया।

जीव घात जो उपजै धम्मु, तौ को अवर पाप को कम्मु।
जे ते लख चौरासी खाणि, ते सब कुटमु माइ तू जाणि॥

रानी चन्द्रमती के विशेष आग्रह पर राजा यशोधर देवी के मन्दिर में गया और यह भाव रखते हुए कि वह मानों जीवित कुकुट है, आटे के कुकुट की रचना करवाकर उसी का देवी के आगे बलिदान कर दिया। इससे राजा को जीव हिंसा का दोष तो लग ही गया। देवी के मन्दिर में से राजा अपने महल में आया और अपना सम्पूर्ण राजपाट अपने लड़के को देकर स्वयं वन में तपस्या करने के लिए जाने का निश्चय किया। राजा मारदत्त ने जब यह कथा सुनी तो उसने भी कर्मगति की विचित्रता पर आश्चर्य प्रकट किया।

जब रानी अमृता ने यशोधर के तप लेने की बात सुनी तो वह भविष्य की आशंका के भय से डरने लगी। इसलिए वह भी राजा के पास गयी और उसी के साथ दीक्षा लेने की बात कही। राजा ने पहले तो उसके वचनों पर विश्वास ही नहीं किया लेकिन रानी राजा को मनाने में सफल हो गयी और उसने साथ-साथ तप लेने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

बालम बिनु किम भामिनी, किम भामिनी बिनु गेहु।
दान बिहूनो जेम घरु, सील बिहूनो देहु॥२८८॥

राजा की स्वीकृति पाकर रानी वापिस अपने महल में चली गई। वहां वह अपने भोजनशाला में गयी। उसने बहुत से विषयुक्त लड्डू बनाये और उनमें से कुछ लड्डू लेकर वह वन में गयी जहां राजा यशोधर एवं चन्द्रमती बैठे हुए थे। अमृता ने दोनों को विषयुक्त लड्डू खिला दिये। लड्डू खाने के बाद पहिले चन्द्रमती मर गयी और थोड़ी देर बाद राजा भी वैद्य-वैद्य करता हुआ तड़फने लगा। रानी अमृता को इससे बहुत डर लगा और उसने केश मुंडाकर साध्वी का भेष धारण कर लिया और अपने पति को घसीट कर मार दिया। फिर वह जोर-जोर से रोने लगी। रानी का रोना सुनकर उसका लड़का वहां आया और पिता को मरा हुआ देखकर मुंह फाड़कर चिल्लाने लगा, साथ ही में दूसरे लोग भी रोने लगे तथा रानी को सान्त्वना देने लगे। उन्होंने संसार का विविध स्वरूप बताया और सन्तोष धारण करने की प्रार्थना की। सब लोग राजा यशोधर एवं चन्द्रमती को श्मशान ले गये और उनका दाह संस्कार किया। यहीं से यशोधर एवं रानी चन्द्रमती के भवों का वर्णन प्रारम्भ होता है।

राजा यशोधर मर कर उज्जैनी में ही मोर हुआ और चन्द्रमती श्वान हुई। श्वान का अन्य जीवों के साथ स्नेह हो गया और वह मन्दिर के बाहर रहने लगा। एक दिन एक शिकारी बहुत से पक्षियों को पकड़ कर वहां लाया। उनमें एक मोर बहुत ही सुन्दर था। शिकारी ने उसको मन्दिर में छोड़ दिया। वहां वह बहुत ही कौतुक दिखाने लगा। वह कभी कभी वहां नाचता रहता था। एक दिन घनघोर पावस का दिन था। मोर मन्दिर के शिखर पर चढ़ गया उसको वहां पूर्व भव का स्मरण हो आया। वह सब लोगों को जान गया। उसने अपनी चित्रशालाएँ देखी। अपनी नीली गर्दन को देखकर दुःख हुआ तो अपने आप अपनी चोंच से घात करके मर गया। चन्द्रमती मर कर कुत्ता हुई जिसको शिकारी ने महाराज को भेंट में दिया। वह कुत्ता जो माता का जीव था, उसने मोर की गर्दन पकड़ कर मार डाला। उस समय राजा जो चौपड़ खेल रहा था, उसे छुड़ाने के लिए दौड़ा लेकिन कुत्ते ने उसे नहीं छोड़ा। राजा ने कुत्ते को मार डाला। इस प्रकार दोनों ने साथ ही प्राण त्यागे। श्वान मर कर फिर मोर हो गया और वह कुत्ता मर कर कृष्ण सर्प हुआ। मयूर एवं सर्प में स्वाभाविक वैर होता है इसलिए उसने देखते ही सर्प का काम तमाम कर दिया। इसके पश्चात् मोर मर कर बड़ी मछली हुआ तथा उस सर्प ने मगर की योनि प्राप्त की। उज्जैनी में एक दिन एक सुन्दरी स्नान के लिए आयी, जब वह स्नान में तल्लीन थी उस मगर ने उसे निगल लिया। तत्काल धीवर को बुलाया गया और उसने जाल डालकर उस मगर को पकड़ लिया तथा उसे लाठियों, घूसों एवं लातों से मार दिया। उसके बाद वह मर कर बकरी हो गयी। कुछ दिनों बाद मछली भी पकड़ में आ गयी। मरने के बाद वह भी पुनः बकरा बन गयो।

एक दिन जब बकरा एवं बकरी स्नेहासिक्त थे तब उनके मालिक द्वारा वह बकरा लाठियों से मार दिया गया। लेकिन उसने पुनः बकरे के रूप में जन्म लिया। कुछ समय बाद बकरी एक टांग काट दी गयी और धीरे-धीरे वह मृत्यु को प्राप्त हुई। फिर वह मर कर भैंसा हो गयी। और उसके पश्चात् दोनों का जीव मृत्यु को प्राप्त कर मुर्गा मुर्गी के रूप में पैदा हुआ। एक दिन राजा को मुर्गा मुर्गी की लड़ाई देखने की इच्छा हुई लेकिन वह उनकी सुन्दरता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हें वन में छोड़ देने का आदेश दिया। वहीं पर जैन मुनि सुदत्त का आगमन हुआ। रानी ने उनसे धर्म कथा का श्रवण किया। सुदत्ताचार्य ने अहिंसा को जीवन में उतारने पर बल दिया। साथ ही में उसने यशोधर एवं चन्द्रमती की कथा कही जिन्होंने आटे का मुर्गा मारने से सात जन्मों तक अनेक कष्ट सहे। राजा यशोमति ने एक दिन दोनों मुर्गा मुर्गी को मार डाला। लेकिन उन दोनों का जीव ही रानी के गर्भ में कुमार एवं कुमारी के रूप में अवतरित हुए। राजकुमार का नाम अभयरुचि

उसी के विकृत वर्णन में भी वह अपनी योग्यता प्रस्तुत करता है। जहां एक ओर वह प्रकृति वर्णन में पाठकों का मन मोहता है तो दूसरी ओर घटना विशेष का वर्णन करके पाठकों के हृदय को द्रवित कर बैठता है।

कथा के एक प्रमुख पात्र हैं भैरवानन्द जिनके कारण ही सारा कथा स्रोत बहता है। उसी भैरवानन्द का जब कवि वर्णन करने लगता है तो वह स्वयं भैरवानन्द बनकर लिखने लगता है। उसकी दीर्घ जटाएँ हैं। शरीर पर भस्म रमा रखी है तथा कानों में मुद्रिका पहिन रखी है। भंग चढ़ा रखी है जिससे आंखें एवं मुख लाल प्रतीत होता है। रंग से वह गोरे हैं और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर लगते हैं।

भस्म चढाई मुद्राकान, मनही बूझे कहै कहान।
भैरहु जटा चढाए भंग, नयन घुलावै वदन रंग।
गौर वरण मनो पून्यौ चंदु, प्रगट्यो नाम भैरवानन्दु ॥३१॥

कवि श्मशान का वर्णन करने में और भी चतुरता प्रकट करता है। मुनि अपने संघ के साथ श्मशान में जाकर विराजते हैं। एक ओर श्मशान की भयानकता तो दूसरी ओर निर्ग्रन्थ मुनियों का वहीं ध्यानस्थ होना—कितना उत्तम संयोग है—श्मशान का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

संग सहित मुनि गयो मसान, मरे लोग डहिहि जहि थान।
मुंड रुंड दीसहि बहु परे, कृमि कीला लवि गधि घृण भरे ॥६०॥
जंबुक सान गंधि ग्रह काग, अंतर भूत खपरिहा लाग।
डाइनि पिवहि रुधिर भरि चुरू, सूके तरु बरि बासै उरू ॥६१॥
चिता बहुत पजलहि वो पास, धूमानलु भमि रह्यो अकास।
नयननु देखत फटै हियो, वैवस भवनु जनकु विहि कियो ॥६२॥

इसी तरह कवि के देवी के वर्णन में वीभत्स रस के दर्शन होते हैं। उसके हाथ में त्रिशूल है तथा वह सिंह पर आरुढ़ है। गले में मुंड माला पहिने हुए है तथा उसकी जीभ बाहर निकले हुए है। आंखें लाल हो रही हैं। ऐसा लगता है मानों अग्नि की ज्वाला उसके शरीर से ही निकल रही हो। उस देवी का पूरा शरीर ही रुधिर से सना हुआ था तथा पूरे शरीर में सर्प डोल रहे थे।

ऐसे भयानक स्थान पर भी जब साधु आते हैं तो उन्हें देखकर सभी नत-मस्तक हो जाते हैं। राजा मारिदत्त ने जब अभयरुचि और अभयमति को वहां देखा तो वह उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गया—

> को हरिहरु संकरु धरणींसु, के दीसै विषाधर भेसु ।
> अरु सरूपका एह कुमारि, सुरि नारि किन्नरि को उनहारि ।।६८।।
> यह रंभा कि पुरंदरि सची, रौहिनि रूप कवन विधि रचि ।
> सीता तारकि मंदोदरी, को दमयन्ती जोबन भरी ।।६६।।

प्रस्तुत काव्य में कितने ही ऐसे प्रसंग हैं जिनसे तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दशा का भी पता चलता है। उस समय जब बालक आठ वर्ष का हो जाता था तो उसे पढ़ने के लिए चटशाला में भेज दिया करते थे। राजा यशोधर को भी उसी तरह पाठशाला भेजा गया था। गुरु के पास पढ़ने जाने पर घी गुड़ के लड्डू बना कर बांटा करते थे तथा सरस्वती की विनयपूर्वक पूजा की जाती थी—

> पढन हेत सोंप्यौ चटसार, घिय गुरा लाडू किये कसार ।
> पूजि विनायगु जिन सरस्वती जासु पसाइ होइ बहुमती ।।१३१।।
> भाउ भक्ति गुरु तनी पयासि, पाटी लिखलीनी ता पासि ।
> पढ्यो तरकु व्याकरण पुराण, हय गय वाहन आवध ठान ।।१३२।।

राजा वृद्धावस्था आते ही अपना राज्य अपने पुत्र को देकर स्वयं आत्मा साधना में लीन हो जाते थे। महाराजा यशोधर के पिता ने भी जब अपना एक श्वेत केश देखा तो उन्हें वैराग्य हो गया और राज्य कार्य अपने पुत्र को सौंप कर स्वयं तपस्या करने वन में चले गये।

> अवर बहुत बैठे नरनाथ, पेख्यौ मुहु दर्प्पनु लै हाथ ।
> धवलो एकु कनेपुता केसु, मन वैराग्यौ ताम नरेसु ।।१४०।।
> राउ जसोधर थाप्यौ राज, आपनु चल्यौ परम तप काज ।
> लीनो दीक्ष परम गुरु पास, तपु करि मुयो गयो सुर पास ।।१४४।।

पूरी कथा में कितनी बार उतार-चढ़ाव आते हैं। प्रारम्भ में भैरवानन्द के प्रवेश से नगर में हिंसा एवं बलि देने की प्रवृत्ति बढ़ती है तथा देवी देवताओं को प्रसन्न करके उनसे इच्छित वरदान मांगने की प्रवृत्ति की ओर हमारी कहानी आगे बढ़ती है। यह बलि पशु पक्षी तक ही सीमित नहीं रहती किन्तु अपने स्वार्थपूर्ति के लिए मानव युगल की भी बलि देने में तरस नहीं आता।

लेकिन जब अभयरुचि एवं अभयमति के रूप में मानव युगल देवी के मन्दिर में प्रवेश करते हैं तो कथा दूसरी ओर घूमने लगती है। उसका कारण बनता है राजा की उनके पूर्व जीवन को जानने की उत्सुकता। अभयरुचि बड़े शान्त भाव से अपने पूर्व भवों की कहानी कहने लगते हैं। राजा यशोधर के जीवन तक

प्रस्तुत काव्य की कथा बड़े रोचक ढंग से आगे बढ़ती है। पाठक बड़े धैर्य से उसे सुनते हैं। लेकिन महारानी अमिय देवी एवं कोढी का प्रेमालाप उन्हें उत्सुकता एवं आश्चर्य में डालने वाला सिद्ध होता है। नारी कहां तक गिर सकती है, धोखा दे सकती है और पति तक को विष दे सकती है, जैसी घटनाएँ एक के बाद एक घटती रहती है और पाठक आश्चर्यचकित होकर सुनता रहता है।

यशोधर एवं चन्द्रमती के आगे के भवों की कहानी, उनका परस्पर का वैर विरोध, संसार के स्वरूप के साथ कर्मों की विचित्रता को बतलाने वाला है। यशोधर एवं चन्द्रमती सात भवों तक एक दूसरे के प्राणों को लेने वाले बनते हैं। उनके सात भवों की कहानी को पाठक मानों श्वास रोककर सुनता है और जब उसे अभयरुचि एवं अभयमति के रूप में पाता है तो उसे कुछ आश्वस्त होने का अवसर मिलता है। राजा मारिदत्त कभी भय विह्वल होता है तो कभी भयाक्रान्त होकर सभा स्थल से ही भागने का प्रयास करता है क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि मानों वह उसी के जीवन की कहानी हो।

काव्य का अन्त सुखान्त है। सैकड़ों जीवों की बलि करने वाला स्वयं भैरवानन्द अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहता है। और जब उसे अपनी आयु के २२ दिन ही शेष जान पड़ते हैं तो वह कठोर साधना में लीन हो जाता है और मर कर स्वर्ग प्राप्त करता है। इसी तरह राजा मारिदत्त भी सब कुछ छोड़कर प्रायश्चित के रूप में साधु मार्ग अपनाता है। यही नहीं स्वयं देवी की भी प्रवृत्ति बदल जाती है और वह हिंसा के स्थान पर अहिंसा का आश्रय लेती है। पहिले उसका मन्दिर जहां रक्त एवं चिल्लाहट से युक्त था वहां अहिंसा का साम्राज्य हो जाता है। अभयरुचि, अभयमति एवं आचार्य सुदत्त सभी अपनी-अपनी तप साधना के अनुसार स्वर्ग लक्ष्मी प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार यशोधर चौपई एक अतीव सजीव काव्य है जिसकी प्रत्येक चौपई एवं दोहा रोचकता को लिए हुए है। सचमुच १६ वीं शताब्दि के अन्तिम चरण में ऐसी सरस रचना हिन्दी साहित्य की अनुपम उपलब्धि है। क्योंकि यह वह समय था जब देश में सामान्यजन में भक्ति की ओर तथा अध्यात्म की ओर झुकाव हो रहा था। मुसलिम युग होने के कारण चारों ओर युद्ध एवं मारकाट मची रहती थी इसलिए मनुष्य को ऐसे काव्य पढ़कर कुछ सीखने को मिलता था।

कवि ने काव्य समाप्ति पर निम्न मंगल कामना की है—

सयलु संघु नंदौ सुख पूरु, जब लगि गंग जलधि ससि सूरु ।।५३५।।

मेघमाल बरसैं असरार, बोष बधाए मंगलचार ।
नि सुनि विवसमन लावहु खोरि, हीनु अधिक सो लीजहु जोरि ।।५३६ ।।

कवि ने अन्तिम पद्य में अपनी रचना के प्रचार प्रसार पर भी जोर दिया है तथा लिखा है कि जो भी उसकी प्रतिलिपि करेगा, करवायेगा तथा उसे औरों को सुनावेगा उसे अपार सुख होगा । पुत्र जन्म एवं सुख सम्पत्ति मिलेगी ।[1]

भाषा

भाषा की दृष्टि से यशोधर चौपई ब्रज भाषा की कृति है । गारवदास फफोदपुर (फफोंदू) के निवासी होने के कारण ब्रज प्रदेश से उनका अधिक सम्बन्ध था । साथ ही में वे ब्रज भाषा की मधुरता एवं कोमलता से भी परिचित थे । इसलिए अपनी रचना में सीधे सादे ब्रज शब्दों का प्रयोग किया है । नीचे दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(१) तोहि कहा एते सौं परी जो हौं कहौ सुन्दरि रावरी ।
बिहिना लिख्यो न मेट्यौ जाइ, मन मौ सखी खरी पछिताहि ।।२२२।।
(२) एक नारि कौ नंदनु भयौ, जसहर पास बधैया गयो ।।१४५।।

छन्द

यशोधर चौपई अपने नाम के अनुसार चौपई प्रधान रचना है । कवि के समय चौपई छन्द ब्रज भाषा का लाडला छन्द था तथा जन साधारण भी चौपई छन्द की रचनाओं को ही अधिक पसन्द करता था । चौपई छन्द के अतिरिक्त कवि ने दोहा, दोहरा, वस्तुबन्ध एवं साटकु छन्द का भी प्रयोग किया है । चौपई छन्द के पश्चात् दोहा छन्द का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है तथा दो वस्तुबन्ध एवं एक साटकु छन्द का भी प्रयोग करके कवि ने अपने छन्द ज्ञान का परिचय दिया है । इन छन्दों के अतिरिक्त कवि ने अपने पांडित्य प्रदर्शन के लिए संस्कृत के श्लोकों, प्राकृत गाथाओं[2] का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है । इससे मालूम पड़ता है कि उस समय जन साधारण की संस्कृत के प्रति भी अभिरुचि थी ।

अलंकार

अलंकारों के प्रयोग की ओर कवि ने विशेष ध्यान नहीं दिया । सीधी-सादी

---

१. पढ़ै गुणैं लिखि देई लिखाइ, अरु सुरिख सौं कहौ सिखाइ ।
ता गुण वरिण सहुदु कवि कहै, पुत्र जनमु सुख सम्पत्ति लहै ।।५३७।।

२. ८६ वाँ पद्य प्राकृत गाथा का है ।

बोलचाल की भाषा में काव्य रचना का मुख्य उद्देश्य होने के कारण उपमा एवं अनुप्रास अलंकारों के अतिरिक्त अन्य अलंकारों का अधिक प्रयोग नहीं हो सका है।

शैली

काव्य की वर्णन शैली बहुत सुन्दर एवं प्रवाहक है। कवि ने कथा की प्रत्येक घटना को बहुत ही सुन्दर शब्दों में निबद्ध किया है। कवि के वर्णन इतने सजीव होते हैं कि पाठक पढ़ता-पढ़ता आश्चर्यचकित होकर कवि के काव्य निर्माण की प्रशंसा करने लगता है। रानी एवं दासी में पर पुरुष के प्रसंग में जब वाद-विवाद होने लगता है तो पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है। यहां उसका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

दासी—

सुंदरि जोवनु गजधनु, पेखिन कीजै गव्वु।
संवरु सीलनु छाडिये, अवसि विनसौ सव्वु ॥२०२॥
सुनि फुल्लार विंद मुख जोति, छांडहि रयनु गहहि किम पोति।
तजहि हंसु किम सेवहि कागु, भूलौ भई खिलावहि नागु ॥

रानी—

परि जब मयनु सतावै वीर, तू न लखी जनहि पर पीर।
मन भावतौ चढे चित्त प्राणि, सोई सखी अमर वर आनि ॥२१६॥

इस प्रकार यशोधर चौपई कथानक, भाषा एवं शैली की दृष्टि से १६ वीं शताब्दि का एक महत्वपूर्ण हिन्दी काव्य है। प्रस्तुत काव्य अभी तक अप्रकाशित है और उसका प्रथम बार प्रकाशन किया जा रहा है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में काव्य की एकमात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि० जैन बड़ा तेरहपंथी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है। प्रस्तुत पाण्डुलिपि संवत् १६३० मंगसिर सुदी ११ रविवार के दिन समाप्त हुई थी ऐसा उसकी लेखक-प्रशस्ति में उल्लेख है। पाण्डुलिपि सुन्दर एवं शुद्ध है लेकिन उसमें लिपि संवत् के अतिरिक्त लिपिकार का परिचय नहीं दिया गया है। पाण्डुलिपि के ४३ पृष्ठ हैं जो १०×४½ इन्च ग्रन्थ आकार के हैं।[1]

□□□

---

२. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग—चतुर्थ—पृ०

यशोधर चौपई

।। ॐ नमः ।। अथ यशोधर चौपई लिखते ।।

मंगलाचरण —

जयउ जिनवरु विमलु अरहंतु गुणमहंतु सिव कंतवरु ।
अमर रायण रणिम्यर वंदिउ ।
उवसमिय फलुसरइ तिजय बंधु दहधम्म संदिउ ।।

दोहा

पणविवि पंच पमेट्ठि गुरु अरकमि पुण्य पवित्तु ।
णिसुणहु भव्व विचित्त कह जसहर तनउ चरित्तु ।।१।।

फुनि पणवमि सामिणि भारहि, जासु पसाइ सुबुधि मइ लही ।
चंद्रवदणि मृग णयणि विसाल, धवलंबर आरुही मराल ।।२।।

अविरल विमल भास रस खाणि, वीणा दंड सुमंडिय पाणि ।
जह दरसनि माणी बहुभाइं, सरसै सामिणि होइ हाइ ।।३।।

पणविवि भाव सम्मु गुरु सूरि, भासमि सुकहु सुयण सुपु पूरि ।
गुर गुगुर चंदन तिल तेल, अल चंदन चरु पुष्फण एल ।।४।।

पूजमि पश्चिम जासु के भाल, खेत्रपाल सुमु करहु दयाल ।
साजे दुरिजन ता कहि परछेद, बिनु कारण प्रगटहिं बहु भेद ।।५।।

जे पर गुणसुखु माणहि आपु, मूढ रयणे दिनु विढवहि पापु ।
वगज्यो देनिठुराई रहै, वोलत बुरो पराई कहै ।।६।।

श्लोक

मुहपद्मजलाकारं वाचासीतलसंजुतं ।
हृदयं कर्त्तरि संयुक्तं त्रिविधि दुर्ज्जनलक्षणं ।।७।।

न विना परवादेसु दुर्ज्जनो रमतोजन. ।
स्वान सर्व्वरसं भोक्तुं अमेधं विना नप्यते ।।८।।

तिनको नाम न लीजे भोर दान पुण्य को धरे कठोर ।
ते सबहीनु दूरि परिहरौ, तिन अपतनु कोतातिन करौ ।।६।।
भलो ना कछु निपजं तिन पास, करत निहोरो धरे उदास ।
तिनके वचन कीजहि कान, अर्थ जोवहि दोजहि जान ।।१०।।

श्लोक

नवन्ति सफला वृक्षा: नवन्ति सज्जना: जना: ।
सुक्ककाष्टं च मूर्खं च न नमंति भजंतिज: ।।११।।

जिनके वयनु न निकसी पोचा, निसि दिनु करहि दया पर सोचा ।
जे पर को चितवहि उपगारु, निम्मंलु सुजसु भम्यौ संसारु ।।१२।।
ते कलिमहु पंचानन सीहा, तिन थुति करनि केम इक जीहु ।
तिन सवहिनु सौ विनी पयासि, मो पर दया करहु गुण रासि ।।१३।।

दोहा

जे परभीर समुद्धरण, पर घर करण समत्थ ।
ते विहि पुरिसा अमरु करि, हरिस्यो जोरि विहत्थ ।।१४।।
पयडु महीयलि उत्तम बंसु, निय कुल मान सरोवर हंसु ।
पदमावती वंस धवल जस रासि, तागुण सयल सकै को भासि ।।१५।।

आश्रयदाता का परिचय—

भारग सुतनु घेघु गुनगेहु, जिनवर पय अंबुरुह दुरेहु ।
कीनें बहुत संतोष विहान, विणिमवय चित्र सचौदान ।।१६।।
निसि दिनु करें गुणी को मानु, धम्मुं छाडि चित धरें न आनु ।
नग कैलई निवसे सोइ, जहि श्रावग निवसैं बहु लोइ ।।१७।।
घेघु सनें कवि गारबदासु, निसुनि वयनु चित भयौ हुलासु ।
ढुं कर जोरि भणैं गुणगेहु, सफलु जन्मु मेरौ करि लेहु ।।१८।।
ललित कथा जसहर की भासि, जिम गुरु पास सुनी तुम रासि ।
जे बहु आदि कविसुर भए, ग्रस्थ कठोर चरित रचे नए ।।१९।।
तासु छाह ले मौसो भासि, कवितु चौपही बंध पयासि ।
गारभु भनं निसुनि कुल सूर, परिधन विवस आस रस पूर ।।२०।।

कवि द्वारा अपनी लघुता प्रकट करना—

पढ्यौ न मैं व्याकरण पुराण, छंद भाइ अक्षर को ज्ञाता ।
जो वुधि विनु कछु कीजे जोरि, तौ बुधजन हसि लावहि षोरि ।।२१।।

तौ कहमि तिनके पालामि, वाढै धम्मु जाइ तमु भागि।
बार बार पनविवि जिनराउ, सरसै सामि तिसु गुर पसाउ ॥२२॥
गाथा पयडिय आगम सुत्त अंतिम तित्थयर वीर समसरणं।
गणिण गोयमेण भणियं, णिसुनिय सिरिसेणि एन कह विमलं ॥२३॥
वीरवानि सुनि गोयम भनी, प्रगटी कथा जसोधर तनी।
सुनि श्रेणिक प्रगटी कलिमाह, वारवु भने तासु की छाह ॥२४॥

कथा का प्रारम्भ—

जंबूदीपु सुदंसनु मेर, लवनोदधि वेढ्यो चहुफेर।
भरह खेतु दाहिनि दिसि वसै, पेखत मनु सुर केकौ लसै ॥२५॥
रायगेहु पाटन सुभ ठौरु, जा सम महियलि नयरु न अोरु।
पंच वरण मनि दीसै घच्यौ, सोमहि तनौ लिखहु विहि रच्यौ ॥२६॥

मारिदत्त राजा—

चारि पवरि सतखने अवासा, वन उपवन सरवर चौपासा।
तहि पुर मारिदत्त् महिपालु, सूरज तेजु हुवउ रसालु ॥२७॥
जोवनवंतु राजमद भस्यौ, अति प्रचंडु महियलि अवतरयौ।
चपिनि नाम गेह वर णारि, अति सरूप रंभा उनहारि ॥२८॥
कोक कला संगीत निवास, खेवहि अगरु कुसम रसवास।
ता समेतु मानै बहु भोगु, निसुनहु अवरु कथा को योगु ॥२९॥

भैरवानन्द का आगमन—

योगी एकु तहा अवधूतु, राज गेह पुर आइ पहूतु।
भसम चढाइ मुद्रा कान, अनही बूझै कहै कहान ॥३०॥
दीरहु जटा चढाए अंग, नयन धुलावै चंदन रंग।
गौर वरण मनौ पून्यौ चंदु, प्रगट्यौ नाम भैरवानंदु ॥३१॥
काहू जाय राइ सौ कह्यौ, जोगी एकु नगर मौ रह्यौ।
तंत्र मंत्र जानैं बहुभाइ, जोगी गुन गरुवो सुनि राइ ॥३२॥
राजा भनै जाहु ता पासि, ले आवहु बहु विनउ पयासि।
जो किंकर नरवै पठायो, पवन वेग जोगहु गयौ ॥३३॥
पभनै स्वामी करहु पसाउ, वेगि चलहु बुलावै राउ।
आडंबर सौ जोगी चल्यौ, कौतिग लोग नगर को मिल्यौ ॥३४॥

योगिहि पेषि राउ गहगह्यौ, भासनु छाडि पाइ धरि रह्यौ।
कर उचाइ तिनि दई असीसा, हूजौ राजु तुम्हारे सीसा ॥३५॥

श्लोक

पुष्पमंतप्रमालोके अर्को सुरतरंगिनी।
तावत् चित्रसमं जीव, मरिवत्तो नराधिपः ॥३६॥

आशीर्वाद —

हौं तोको सुनि तूठो राइ, मांगि मांगि मो हियैइ समाई।
भनैं अमरु हौं महि अवतरयौ, जानमि सयलु महागुन भरयौ ॥३७॥
अंतर भूत हमारे ईठ, रावनु रामु भिरत मैं दीठ।
अब भारथु कीयौ कुरखेता, पेष्यौ भीमुहु कारै देता ॥३८॥
जबहि कंसु नारायन हयौ, पेषत जरासिंधु क्षौ गयौ।
बरसौ भुवनु जिते महि भए, मो आगैं ज्यारयौ जुग गए ॥३९॥
ईं कर जोरि भन्यौ तब राइ, पुण्य हमारौ भयौ सहाइ।
तौ मो तेरौ दरसनु भयौ, देषत पापु हमारौ गयौ ॥४०॥
जो तुसौं किमि मंगमि आस्ता, करहि अमरु अरु चलमि विमाना।
एक छत्र ज्यौ अविचल राजू, इतनैं करमि हमारौ काजू ॥४१॥
पाखंडी बोलैं धरि ध्यानु, साचौ जाको फुरै न ज्ञानु।
पुजवमि राय तुमारी आसा, होहि अमरु अरु चलहि अकासा ॥४२॥

चंडमारि देवी का वर्णन—

एकु बचनु करि मेरौ एहु, जैतो इन वार्ता नको गेहु।
चडमारि देवी आप पनी, बहु विधि पूजा करिसा तनी ॥४३॥
जे ते जीव जुयल सब आनि, नरवर आधिनि सुनि मुखपाणि।
देवलि सब देवी कैं थाना, सिद्धवमि कायु तिसुनि सिध जाना ॥४४॥
तब सुनि राव मूढ मति भयौ, राजा राजु करत परिहरौ।
योगी तनी कुमति प्रभु दुह्यौ, कुंअर उवरि राउ मारह्यौ ॥४५॥
कीयौ नहूतु योगी को मान, गयौ तहा देवी को थान।
योगी देवी भगतु नरेसु, किंकर कौ दीनौ उपदेसु ॥४६॥

देवी के लिए जीवों को पकड़ कर लाना—

इतनो करहु हमारो काजु, देविहि बलि मग बाघहु भाजु।
राय वयनु सुनि धाए घरे, वन मो जीव आय पाकरे ।।४७।।

हरिण रोभहु सूकर सिवसान, महिस्त मेस छेरे लवकाना।
कुंजर सीह बाघ फरिए तोरया, लारी आदि गनै को औरा ।।४८।।

जेते जीव पिषे सब अंषि, लए तितर करि पसु पंषि।
कुनि कर योरि पयासहि सेवा, हंस नर युगलु न पायो देवा ।।४९।।

सब नर वे अवरा मिलो कही, मनुव युवलु विनु पूजा रही।
नेरी कायु सवारहु एहु, मनुव जुवलु गहि देवेहि देहु ।।५०।।

निसु दिनु रहै हिंस मति भई, चंड कम्मं कक्कंस निर्दई।
दस दिसि गए राय उपदेस, मढ विहार बन फिरहि असेस ।।५१।।

सुदत्त मुनि का विहार—

निसुनहु भव्व कहंतउ आनु, दया धम्मं गुणसील पहानु।
तहि अवसरि सुदत्त मुनि सूर, कम्मं पयडिव्यो कीनी चूरि ।।५२।।

मुद्रा नगन कमंडर हाथ, बहुत रिषीश्वर ताके साथ।
भवंतु भवतु सो तीरथ तान, पेष्यो सिवनु केवल नान ।।५३।।

तिहि नयरी आयो मुनि नाहु, जा सिवरमनि रमन को गाहु।
भव्व कुमु पयडिवोहन चंदु, नाय नरिंद पुरंदर वंदु ।।५४।।

श्लोक

ताम मुनिवरु पत्तु तव तत्तु गुण जुत्तु संजमतिलउ।
कोह-लोह-मय-मोहवत्तउ, बहु मुनिवर परिवउ।
सील जलहि सिवरमनि रत्तउ, तव कम्मा भव संवरणु।
भव्व सरोरुह मित्तु, अंवरहीनु अनंग हरु निम्मल सुचरित्तु ।।५५।।

जहि णंदन वनु नरवै तनौ, दल फल पल्लव दीसै घनौ।
जहि वसंत फूली फुलावाइ, कोइल मधुरी सादु कराइ ।।५६।।

चुमु चुमु रति पंखी सुक मोर, सुरकामिनि मोहै सुनि घोर।
चैत्र मासु सुदि णवलु बसंतु, गुंजारै मधुकरु ममभंतु ।।५७।।

भनै रिषीसुर वनु अवलोइ, इहि ठा मुनि थिरु ध्यानु न होइ।
इहि वण केम जतीसुर बसै, निवसत मयनु भुजंगमु डसै ।।५८।।

इक सोरण फूली फूल वादि, पेषत होइ महा तपु बादि ।
जहि निवसत मूसै मन चारु, नासै तपो तनो तप घोर ॥५६॥
जहि वन गन गंधर्व निवासु, विलसहि सुर कामिनि रस वासु ।
निवसत होइ सील की हानि, मुनिवरु छाडि चल्यौ मन जानि ॥६०॥

श्मशान का दृश्य—

संग सहित मुनि गयौ मसान, मरे लोग डहिहि जहि थान ।
मुंड रुंड दीसहि बहु परे, कृमि की लालवि गंधि घृण भरे ॥६१॥
जंबुकसान गंधि अरु काग, व्यंतर भूत सपरिह्या लाग ।
डाइनि पिवहि रुधिरु भरि चूरू, सूकै तरु वहि नासै उरु ॥६२॥
चिता बहुत पजलहि वो पास, धूमानलु भीम रह्यो अकास ।
नयननु देषत फटै हियो, भैवस भयनु जनकु विहि कियो ॥६३॥
तहि ठा पेषि परासगु ठानु, संघ सहित मुनि हान.........।
अनुत्रयध्यर तासु कै सग, चंपक सुम सम कोमल अंग ॥६४॥
तिनहि सकोसल मुनिवरु आनि, पभन्यो सुगुरु सरस रस वानि ।
निसुनि अभयरुचि नाम कुमार, लेहु भोजु तुम नयरि मझार ॥६५॥

बहिन भाई द्वारा नगर में भिक्षा के लिए जाना—

बालक तुम जो करहु उपासु, आरति उपजि होइ तप नासु ।
सुनि गुरु बयनु बहिनि अरु वीरु, चंद्र वदन सम कनक सरीरु ॥६६॥
लेकार पुत्र चले निरगंथ, कुमरु कुमारि नगर को पंथ ।
तहि अवसर जन राजा तने, ढूंढत फिरै जुबल वन घने ॥६७॥
देवी बलि कारण आतुरे, दोऊ दृष्टि तासु की परे ।
पभन्यो कृकि सफलु भयो काजु, ए बलि पूजा दीजै आइ ॥६८॥
लषण बत्तीस कनक सम देह, पकरि चले देवी कै गेह ।
जनौ रविचंद्र राहु पाकर्यो, जनौ कुरंगु केसरि बसपर्यौ ॥६९॥

चिन्तन —

संजम कर सील निरमले, तिनहि पकरि जब किंकर चले ।
ता मन चिंतै अभैकुमार, जीवनु मरनु जासु एक सारु ॥७०॥

पेख्यो वहिनि वदनु अवलोइ, जान्यो मत भिय डरपति होइ ।
पभण्यो निसुणि अगेमणि धीर, किम सुंदरि संकुचहि सरीर ॥७१॥
मुहु मयंक किम होहि मलीन, ए किम करहि हमारो हीन ।
जो जिम सासन आगम कह्यौ, हम गुरु पास सुदृढ़करि गह्यौ ॥७२॥
जीव हि कोई सकै न मारि, काया थिरु न होइ संसारि ।
ताते मुनिवर करहि न लोहु, काया ऊपरि छाडहि मोहु ॥७३॥
छूटै आवन राखै कोई, तिम अनपूटै मरणु न होइ ।
वहिनु लियहु संसारु असारु, एकुइ धम्मं उतारण हारु ॥७४॥

दोहा

थिरजलु भिजभाल्ल रुऊ, वहिनु लिएहु सरीरु ।
अप्पा भावहि निम्मलऊ, जे पावहि भवतीरु ॥७५॥
कम्महु केरौ भाव मुनि, देहु अवेयनु दब्बु ।
जीव सहावैं भिन्नु इहु, वहिनुलि बुझहि सब्बु ॥७६॥
अप्पा जानहि नानमऊ, अन्नु पराथउ भाउ ।
सो छंडेविनु भोवहि, निसावाहि अप्प सहाउ ॥७७॥
अट्ठहु कम्महु बाहि रऊ, सयलहु दोसहु चित्तु ।
दंसन नान चरित्तमऊ, भावहि वहिणि निरुत्तु ॥७८॥
अप्पैं अप्पु मुनंतु, जिउ, सम्माइट्ठि हवेइ ।
सम्माइट्ठी जीवु फुडु लहु कम्मे मुच्चेइ ॥७९॥

समिकत रयनु न दीजै छाडि, हम सो सुगुर कह्यो जो टाडि ।
वार वार किम कहिए वीर, सुंदरि होइ अडोल शरीर ॥८०॥
भायर वचनु निसुनि सुकुमारि, सारद मयंक वयन उनहारि ।
तुम जानी भयभीत शरीर, तो मो सिष दीनी वर वीर ॥८१॥
ताते वीर तुम्हारी न्याव, तुम जाणो भामनि परजाउ ।
जानमि मरणु पहूच्यो आनि, डरपमि नही वीर गुण खानि ॥८२॥
को काको संसार असारु, हिडिउ जीव लेहु अवतारु ।
सो कुलि को आ लईन वीर, सो दुषु कोजु न सह्यौ सरीर ॥८३॥
जे हम सात भवंतर फिरे, ते किम वीर वेगि वीसरे ।
जिनवर धम्मुं सुगुरु को कह्यौ, दई दई करि सो हम लह्यौ ॥८४॥

जिनवरु जपत मरन जो होइ, याते भलो न भायर कोइ।
सो किम भायर दीजे छाडि, हो सन्यासु रही मन माडि ॥८५॥

गाथा

मुणि भोयणेन दव्वं, जस्स सरीरं पिथीनु तव घरणं।
सन्नासे गय पानं तन्नगयं कि गयं तस्स ॥८६॥

दाढग्रो वीर सिरावमल्लौ, भायर बहिनि मोनु तव गह्यौ।
गहि कर किंकर चाले पीढ, मारिदत्त कारज मन इठ ॥८७॥

चंडमारि देवी का वर्णन—

एहु चले देवी कैं थान, जीव जुवल जहं बंधे मान।
बाजहि बाजे समिको दुनी, नाचहि जोगी अरु जोगिनी ॥८८॥

बाजहि तूर भयान भेरि, जनौ जमु त्रिभुवनु मारे घेरि।
जहु देवी बैठी त्रिगराल, मंड पुछ यो महिष की षाल ॥८९॥

हाथ त्रिसूलु सिंह आरुही, मुंडनु को करि काठो गुही।
वरखै दंत जीह बाहिरी, बारबार मुखु बावे षरी ॥९०॥

अरुण नयन सिर सूधे बार, जानहुवरैं अगिनिकी ज्वाल।
रुधिरु उवटनो जाके अंग, आस पास बिढि रहे भुजंग ॥९१॥

आमिषु भषे उठ लरकाइ, महू नस केलै षरी जह्याइ।
करि कटाष जव देवी हसी, पेषतं गर्भु नारि कौ षसे ॥९२॥

जीव भषण की अति आतुरी, जनौ जम रूप आणि अवतरी।
पेषत षरी भिहावन ठौर, नीकौ कहा तासु महि और ॥९३॥

श्लोक

भयभीत सदा कुर्य निर्द्दयोपलभक्षिनी।
निर्द्धिनी जीवघातिश्चेदृशी कस्य भवे प्रिया ॥९४॥

साधु साध्वी की सुन्दरता का वर्णन—

जहं योगी राजा नर ओर, गहि किंकर लाए तहि ठौर।
कुमरु कुमारि सकोमल अंग, केसरि चंप कुसुम सम रंग ॥९५॥

नर वैमन पेख्यो अवलोइ, मनुव जुवलु इहि रूपन होइ।
अमरु पुरंदरु की ससि सुरु, किम अनंगु मानिनि मनचूरु ॥९६॥

को हरि हर संकर धरणेसु, के दीसे विद्याधर भेसु ।
अतिसुरुप का एह कुमारि, सुरि नरि किंनरि को उनहारि ।।९७।।

यह रंभा कि पुरंदरि सची, रौहिनि रूप कवन विहि रची ।
सीता तारा कि मंदोद्री, को दमयंती जोवन भरी ।।९८।।

पोमावेसर सेवन देवि, नाग कुमारि रही तपु लेवि ।
कै अनंगु जब संकर डह्यौ, तब ही रति विधवा पनु लह्यौ ।।९९।।

ताकौ विरहु न सक्यो सहारि, तौ बालक तपु लियो विचारि ।
कै यह देवी मानौ होइ, मेरी बलि पूजा अवलोइ ।।१००।।

सुप्रसन्न हुइ आइ एह, भेषु फेरि करि निरमल देह ।
कुसुमावलि बहिनि मो तनो, कै यह तासु कोषि की जनो ।।१०१।।

पुत्री पुत्रु तासु ही भयो, निसुन्यो तिन बालक तप्र लह्यौ ।
पेषि रूपु मन वाढ्यो मोहु, राजा तनौ गयो गलि कोहु ।।१०२।।

राजा द्वारा प्रश्न—

तब हसि नरवै बोलामनो, सुंदर पभणि बात आपनी ।
देसु नयरु कुलु माता बापु, सुंदरि कवन कौन तु आपु ।।१०३।।

अति सरूप तुम दीसहु कौन, कारण कवन रहे गहि मौन ।
किम वैराग भाव मन भयो, बालक वेस केम तपुलयो ।।१०४।।

अभयकुमार का उत्तर—

राय वयनु सुनि अभयकुमार, भासै विहसि दया गुणसार ।
आकुरतु बरते असमान, तह किम मेरो धम्म कहान ।।१०५।।

संठ पास जिम तरणि कटाय, वायस जेम कुहारि दाय ।
सोवत आगै जेम पुरानु, जिमविनु नेहहि कीजै मानु ।।१०६।।

सरस कथा जिम मूरिष पास, कीनी जैसी किरपन आस ।
जिम खल को कीनौ उपगास, जिम विनु भूषहि छरस अहार ।।१०७।।

बहिरै आगै जैसो गीउ, जिम सीतज्जुर दीनौ घीउ ।
माइ पिता विनु जैसो आरि, जिम सिंगार पिया विनु नारि ।।१०८।।

अंधहि पास निरतु जिम कियो, जिम धनु अनथायो मनदियो ।
ऊसर खेत वए जिम धानु, जैसे भाव भक्ति विनु दानु ।।१०९।।

जिम एवि हल जाहि प्रभु जानि, तेम हमारी धर्म्म कहानि ।
जहि आनंदु करत जिय घात, तिहि किम राय हमारी बात ॥११०॥
जीव मुयल जहु वधे सराक, देविहि दलि पूजा कताक ।
ताहि ठाकरै धरा हरि कौनु, ताते राय रहे गहि मौनु ॥१११॥
मारिदत्त मति निरमल भई, मानहु उतरि ठगौरी गई ।
[illegible] पुरंधुह इंदर सूर, [illegible] [illegible] रहत [illegible] ॥११२॥
जोगी चक्रु जुस्यो हो घनो, बरन्यो लोगु सयलु आपनो ।
सयल लोक मुनिवर मुहु पेषि, राषे जन कुचित्र के लेषि ॥११३॥
भनै राउ सुनि बाल अईस, जो परि तेरो मनहु नरोस ।
तो पयडेहि कथा आपनी, जैसी बीती पैषी सुनो ॥११४॥
सुन्दर जती सयलु महु भासि, जो अनुभई सुनी गुरपासि ।
जोनि सुनी सौनि सुनौ एह, जो न सुनै तसु कीजै केह ॥११५॥
आसिकु दे बोल्यो रिषि राउ, जान्यो राइ तनो सुभ भाउ ।
निसुनि देव दिढ मन थिरकान, पभणमि अपनी कथा पहान ॥११६॥

वस्तु बंधु

तो अभयसुरुचि राय वयनेणा ।
आहासइ कुमर गुरु, सु हमवाणि सुकुमाल गत्तउ ।
जो सुह मग्ग पयासयरु, धम्म कहं तरु एहु ।
नि सुनहु सुयज विचित्र कहा चंल, सुनं सह देहु ॥११७॥
भासे अपनी कथा कुमारु, जामन तिनु कंचनु एक सारु ।
सुनि महिमा निणि माननहार, भोग पुरंदर राजकुमार ॥११८॥

अवन्ती देश एवं उज्जयिनी नगरी—

देसु अवंती नयरि उजैनि, भोगभूमि सम सुष की सैन ।
वन उपवन सरवर कुव वाइ, पेषत अमर बिलंवहि आइ ॥११९॥
दल फल सघन कुसुम रस वास, कलप विरष सम पुजवहि आस ।
मठ मंदिर सतवणे अवास, एक समान वसै चौपास ॥१२०॥
सुरह रस मधुर सुर समलोगा, धन कन कंचन बिलसहि भोगा ।
अरण वयरि छतीसौ कुरी, जनकु सु धनपति निज रचि धरी ॥१२१॥

जसोहु राजा एवं चन्द्रमती रानी—

तहि पुरि नरवे नाम जसोहु, नियभन इंदहि लावै षोहु ।
चंद्रमती राणी ससि वयणि, मद गज गमनि एण समनयणि ॥१२२॥

कोमल तन कुच कठिन उत्तंग, जनु लैकू कुह किये सुरंग ।
चीना हंस वंस सम वानि, भरतेवर सयल हमि पहानि ।।१२३।।

राजु करत पालत नय नीति, इहि विधि गये बहुत दिन बीति ।
पुण्य वेलि जिनि लीनी पोषि, नंदनु भयो तासु की कोषि ।।१२४।।

पुत्र का जन्म—

निसुनि राय नंदनु अवतरयौ, बाढ्यो रहसभाव सुष भर्‍यो ।
कोलाहलु वंदीजन कियो, दीनो दानु उलहास्यौ हियो ।।१२५।।

श्लोक

पुत्रयन्मोरन निस्वा विवाहो सुभसंज्ञका ।
इष्ट-सजनमेलापं संसारोक-महासुखं ।।१२६।।

यशोधर नाम रखना—

पायरु ज्धारै सुजस की खाणि, जसहरु नामु धर्‍यौ इह आनि ।
बाल विनोद नारि मनु हरै, निसु दिनु वाढै कर संचरै ।।१२७।।

आठ वरिस बीते सुष माहि, बालकु माइ पिता की छांहि ।
मयण पेषि रंज्यो परिवारु, सूरतेय सम राजकुमारु ।।१२८।।

अध्ययन —

पढन हेत सौंप्यो चटसार, पिय गुरा लाडू किये कसार ।
पूजि विनायगु जिन सरस्वती, जासु पसाइ होइ बहुमती ।।१२९।।

भाउ भक्ति गुर तनी पयासि, पाटी लिषि लीनी ता पासि ।
पढ्यो तरकु व्याकरण पुराण, हय गय वाहन मात्रपठान ।।१३०।।

पढि गुने सयलु पिता पहु गयो, सिर चुंवनु करि अंको लयो ।
पेषि पुत्रु सुषु उपज्यो गात, फुनि माता पहु पठयो तात ।।१३१।।

चंदमती भैंटो पग परयो, पुत्रहि देषि हियौ सुष भरयौ ।
रूपवंत विद्या गुण खानि, सफलु जनमु माता तहि मानि ।।१३२।।

जेसौ माइपिता कौमाहु, पमनै जननि अमरु चित्त छोऊ ।
पेषि तरुनु नंदन नर नाहु, वंस वेलि हित ठयो विवाहु ।।१३३।।

कुमारि पंचसै रायनु तनी, एक एक अछरि समगनी ।
कनकु सुमयन तनो कट कोधु, चमकत चोकुल गावति चौधु ।।१३४।।

नयन कमल जोवन सुकमारि, मनौ सोरह सूरी गुनकारि ।
भयो बिवाहु जसोधर तनौ, सुयन कुटम सुपु उपन्यौ घनौ ।।१३५।।

अमिय महादेवी पटराणि, पेषत रुपु मनग की हानि ।
नयन बयन कुच परी अनूप, मानहु रची पुरंदरि रूप ।।१३६।।

भूल्यो कुमरु भोगत सुसंग, बिल्सुरत डाहु परै दुहु अंग ।
एक दिवस जसहुर कौ ताउ, सभा सहित सुस्थित महिराउ ।।१३७।।

अवर बहुत बैठे नरनाथ, पेख्यौ मुहु दर्पनु लै हाथ ।
धवलौ एकु कनपुता केसु, मन बैराग्यौ ताम नरेसु ।।१३८।।

मानहु कहतु पुकारै कान, एर बुढ़ापे केसहि दान ।
करिहै बुरी बुढ़ापी हाल, इष्टि पतनु अरु हालै खाल ।।१३९।।

श्लोक

जरामुष्टिप्रहारेण कुब्जो भवति मानवः,
गत जोवन मानिक्यो निरीक्षति पदे पदे ।।१४०।।

जब लगि देह न व्यापै व्याधि, तब लगि लेमि परम पदु साधि ।
विरकत भाउ राउ मन भयो, राजु देहु तिन जौ तजि दयो ।।१४१।।

विरक्तस्य तृणं राज्यं, सूरस्य मरणं तृणं ।
ब्रह्मचारी तृणं नारी, ब्रह्मज्ञानी जगत्त्रिणं ।।१४२।।

राउ जसोधर थाप्यो राज, आपुनु चल्यो परम तप काज ।
लीनी दीक्षा परम गुरपास, तपु करि मुयो गयो सुरवास ।।१४३।।

महाराजा यशोधर का शासन—

महियलि राजु जसोधरु करै, हरि सम राजनीति व्यौहरै ।
नयरि उजैनी स्वर्ग समान, करै राजु जसहरु तहि थान ।।१४४।।

पुत्र जन्म –

अमिय महादेवी सुरतिरी, बहुत दिवस मांनि निवसिरी ।
एक नारिकी नंदनु भयो, जसहर पास बधैया गयो ।।१४५।।

तहि सबु कुटमु महासुख भर्यौ, मनौ जिन जननि देमु अवतर्यौ ।
बाढ्यौ कुमरु रूप गुण सार, धर्यौ जसोमति नाम कुमार ।।१४६।।

कियो जसोमति तनौ विवाहु, सुवन अनंदु दुवन उर डाहु ।
दै जुगराजु पट्टु वैसारि, मंगल घोष कलस सिर ढारि ।।१४७।।

जन सेवग सब सौंपे बाहु, आपनु भोग करै घर माहु ।
कबहू सभा बैठे भाइ, निसुदिनु प्रिय भोगवत विहाइ ।।१४८।।

मुनि संघै निवास गुनरासि, नारि चरितुहौ कहमि प्रकासि ।
मारिदत्त सुनि देषिरु कानु, जसहर राजा रानी कहानु ।।१४९।।

तहि अवसरि सुखमौ दिन एक, जसहर राउ राज की टेक ।
सभा उठी दिनयर अंथयो, रानी तनौ बुलावो गयो ।।१५०।।

ता महल्यो बोलै सिरु नाइ, रानिहि तुम बिनु न सुहाइ ।
चाहइ बाट तुम्हारी नाह, जिम जलहर बिनु बारि साह ।।१५१।।

तिम तुम बिनु रानी कलमली, जोवनु सफलु देवु जयचलौ ।
निसुनि वयनु तब नरवै हसैं, रानी पुनि चित ताकै वसैं ।।१५२।।

जैसौ भवरु उमाह्यौ वास, सुग रति रंग रवण की आस ।
चल्यौ राउ रानी के गेह, जैम हंसु हंसिनि कै नेह ।।१५३।।

दोहा

यशोधर एवं अमृता का प्रेम—

एक हिरावै सुख नहीं, औ न दौवराचंति ।
मालुसि मन मधुकर वसै, मधुकर न मालुंति ।।१५४।।

चौपई

चंपक मला अरु शशिरेह, दोऊ सषी कनक सम देह ।
दोऊ छयल चतुर परवीन, जोवन साम कटि षीन ।।१५५।।

अमिय माहावे तनी प्रकासि, निसु दिनु निवसहि रानी पासि ।
राय तनौक रूप कस्यो आइ, चित्र साल ले गई चवाइ ।।१५६।।

राउ पेषि रानी विहसाइ, पालिक ते उतरि अकुलाई ।
राय विहसि कर षैचौ चोर, उघर्यौ रानी तनी शरीर ।।१५७।।

सावै टारि जनकु विहिगढ्यो, मानहु कनकु अगनि ते कढ्यो ।
किवस करीब्बौ वेनीरुरी, जनुकु गरुड मैं नागिनि दुरी ।।१५८।।

विहिसति दंत पंक्ति ऊजरी, जनो घन मो कौधी बीजुरी ।
चंचल नयन मरोरति अंगु, जनु कुरंगि बिछोहे संगु ।।१५९।।

हाव भाव विभ्रम सविलास, रलु घुलंति मधुकर रस वास ।
रम्यो सुरतु सुषु उपज्यो गात, सोयो राउ भई अध रात ।।१६०।।

सुवक्के द्वारा संगीत प्रदर्शन—

मारिदत्त यहु निसुनहि बात, नादु परयो रानी कैं कान ।
हरित माल निवसै कुवरी, व्याप्यो रोग नुमादु नरो ॥१६१॥

घरी सुकंठी गावे गीउ, सो निसि दिनु गहरावे जीउ ।
राग छत्तीस सुनै बहु भेय, भूलहि सुर कामिनि सुनि भेय ॥१६२॥

प्रथम रागु भैरौ परभात, सुंदरि निसुनि उल्हासी गात ।
ललित भैरवी कीनी रागि, जनुकु बिरहु वन दीनी आगि ॥१६३॥

रामकरी गूवरी सुठान, निसुनत मयन हुई जनोवान ।
आसासै मूमिलवे भाउ, सुनि गज गामिनि भयौ उमाउ ॥१६४॥

गौरी घरी सुहाई नादु, चन्द्रवदनि मोही सुनि सादु ।
करि गंधारु सुकोमल भाष, भामिनि भूलि गई अभिलाष ॥१६५॥

माला कोश जब निसुन्यो बाल, नियतन मयन शलाए शाल ।
मारु अंतसिरी की छाहि, जो सुभटनु मीठो रस माहु ॥१६६॥

टोडि हि वैरारी सौ संगु, कामनि बिरहु मरोरयो अंगु ।
भीव परासो अवर अडान, महिलहि परयो बिरहु रसु कान ॥१६७॥

करि कामोद ठकुराई रागु, वनितहि परयो मयन धुर दागु ।
सुनि हि ढोल नारि कर मरी, मंक्षिस तुच्छि अंम जनौ परी ॥१६८॥

करि कल्यान अवरु कानरौ, गेहिनि कान सुहाई घरौ ।
केदारो कीनो अघरात, मृगलोचनो पसीजी गात ॥१६९॥

रागु विभास भवरु वडहंसु, कीनी जन हरि मारयो कंसु ।
कुविज कहूह राई गूजरी, कीनी राम सिया जब हरी ॥१७०॥

रागु विरावरु अरु वंगाला, सिरियहि तई कुसम की माला ।
दीपकु वडोरागु जव करै, जासु तेज उठि दीवकु बरै ॥१७१॥

कियो वषार वधु सरुमेलि, सींचि मयन बिरह की वेलि ।
विहागरी सूहै सौ ओरि, जनु सुजान रसु लियो निचोरि ॥१७२॥

मेघ रागु जब लियो नवाजि, बरसे रिमिझिमि जलहरु गाजि ।
अवर अलापै गौड मलार, बिजुही बादर परै फुसार ॥१७३॥

धनासिरी मारु ऊह जेज, रागिहि रह्यो न भावे सेज ।
करी मलाई मध माधई, पंच मुनि सुनत मुरछि गई ॥१७४॥

गौरा सारगु सारग नाट, जनकु सुहई मयन को साट ।
जौ देसी मिल बेसहु भाइ, सुनत महेर्रें हरिनु भुलाइ ॥१७५॥

रागु बसंतु कुबरौ करै, जनौ मधुमास भवर गुंजरै ।
लागी लात सोरठी तनी, सुनि कनकंगि काम मरहनी ॥१७६॥

सिरि रागु पुनि दीनौ दागु, सुनिसु रह्यौ मोह जौ भागु ।
रानी अंगु काम सर हयौ, जसहरु राजा बिसहरु भयौ ॥१७७॥

भुज पंजर तैसो नीसरी, ज्यो घनते निकसी बीजुरी ।
सरद पटल ते जनौ ससि रेह, निकसी एम सकुचिकरि देह ॥१७८॥

पुणि अरगाइ धरयौ भुइ पाउ, हरपै सो जिनि जागै राउ ।
चंपक माला लीनी बोलि, द्वार कपाट दिये तहि खोलि ॥१७९॥

रानी एवं दासी की वार्ता—

रानी बात कहै अरगाइ, तो ते मेरौ काजु सिराइ ।
गंधर्व कला रागु जिनि करयौ, सा बिनु जीव आइ नीकस्यौ ॥१८०॥

जौ तू सखी सुभाकी मापु, तौ खोवहि मेरौ तन तापु ।
निसुनत रागु बहुत दिन भए, ते सखि पाछै जुग वरिगए ॥१८१॥

करति निहोरौ तोसौ भाखि, अब लै प्राणु हमारौ राखि ।
तासु चरण लै मोहि दिखाइ, सोई सिख माखिमो सिष राइ ॥१८२॥

ऐसौ बचनु भन्यौ तब बाल, तब तन सकुचि चंपक माल ।
हा हा भनि बोली धर धूंकि, सुन्दरि बचनु भन्यौ किम चूकि ॥१८३॥

कूबड़े का वर्णन—

वहु कूबरौ दईको हयौ, फुटि अंगु सबु वाकौ गयौ ।
जैसौ जरयौ दावा को ढूंडु, मानहु काटि बहोरयौ मूंडु ॥१८४॥

पाइ बिवाई मुहु उरयौ, निसि दिनु रहै लींदि महु परयौ ।
कीरा परे बिगंधि कोमूलु, अनुदिनु माथै व्यापै सूलु ॥१८५॥

उलटि पटल अखिनु कै रहे, परे कुबरौ व्याधि के गहे ।
पूठी खाइ रहै हर हुधु, महियलि सहे नरक को दुधु ॥१८६॥

लाठी लात मुठी का सहै, रानी कवनु बरनि घिन कहै ।
माथै कौवा मारहि चौट, सो विहि रच्यौ पाप को मोट ॥१८७॥

हसे न कबहू नीकी कहै, परयौ हृढोलै रोवतु रहै ।
धरौ अलख निकु बायस दीठि, करिहा सो मिलि माई पीठि ॥१८८॥

हौ रानी किम वरनौ तासु, मुहु पेर्ष तिहु परै उपासु ।
जाहि सुनत दुगु उपजै कान, सुंदरि कहहि तासु पहुजान ।।१८९।।

बात तुहारी छुटी मोहि, भमिनि पभनि सदो किम तोहि ।
तौ पिउ रमत भई अधरात, तौ न तौ रति उपजौ गात ।।१९०।।

रानी बचनु—

सुनि बचनु रानी कलमली, पभनैं तैं सिष दीनी भली ।
बयनु एकु मेरो निसु नेहु, चंपक माला कानु थिरु देहु ।।१९१।।

गीत नाद वेधिये सुजानु, निसुनि हरिन फुनि देइ परानु ।
अरु जो बालकु रोवतु होइ, निसुनत रहै गोद महु सोई ।।१९२।।

होइ कौविजो डस्यो भुजंग, निसुनि गीतु बिषु रहै न अंग ।
चतुर सुजान जिते नर नारि, जे जानहि सुनि मूढ गवारि ।।१९३।।

श्लोक

सुषणिसुखनिधानं दुखितानां विनोद: ।
श्रवण हृदयहारो मन्मथस्याग्रदूत: ।
अति चतुर सुगम्यो वल्लभो कामिनीनां ।
जयति जगति नादो पंचमो भाति वेद: ।।१९४।।

राग तनै गुण जानहि माइ, मो मूरिख सौ कहा बसाइ ।
जानहि तू न हमारी भीर, पाहनु जिम भेदिये न नीर ।।१९५।।

किमि मुहु मोरि हसै घर वसी, मेरो मरणु तुहारी हसी ।
आमि सखी तेरो वलिहारु, इतनौ करि मेरौ उपगारु ।।१९६।।

चंपक माला का उत्तर—

चंपक माल कहै विचारि, जानी निजु सत डोली नारि ।
रानी कैम भइ बावरी, को सुनि गीतु कि व्यंतर छरी ।।१९७।।

दोहरा

हा सुर सुंदरि सम सरिस, कैम पयासहि एहु ।
सतो न वल्लहु परिहरै, अवरु करै नहि नेहु ।।१९८।।

भामे निम्म सहश पुरिषवस, कैम समप्पहि देहु ।
सील नवल्ली वल्लरी, जालि करै किम षेहु ।।१९९।।

सुंदरि जीवनु जानि दै, अरु जौ जाइत जाउ।
सीलु महंगौ मति टरौ, आवहु जनम सहाउ ॥२००॥

सुंदरि जोवनु राजु धनु, पेषिन किज्जै गब्बु।
संवरु सीलु न छांडिये, अवसि बिनस्सै सब्ब ॥२०१॥

सुनि फुल्लार-बिंद मुख जोति, छाडहि रयनु गहहि किम पोति।
तजहि हंसु किम सेवहि कागु, भूलौ भई बिलावहि नागु ॥२०२॥

अम्रतु तजि पीवहि विष मूलु, सुरपति छाडि रमहि किम भूतु।
छाडि दीप किम गोवहि अंधु, रानी केम करहि धरु मंधु ॥२०३॥

सील रयनु तिहुलोक पहानु, सीलु नारिमंडन गुन ठानु।
सोभू संजम भाव करहि, फोरि दहै डीकागनु देहि ॥२०४॥

माता-पिता ससुरु अरु सासु, पेषि बिचारि वंस कुलु बासु।
राउ भतारु तरुनु घर सूनु, चौक चढो चाटहि किम चूनु ॥२०५॥

अरु तू एक बिचारहि आपु, करत कुकर्म न दुरिहै पापु।
ता बही कान दुवन कै परै, जैसै तेलु नीर बिस्तरै ॥२०६॥

अरु जौ केम केम दुरि रहै, तौ पाछै कर तारुण सहै।
व्यापै रोग सोग तन रोर, फुनि नरकादि सहै दुष घोर ॥२०७॥

अर तू सामिनि पेषि बिचारि, यहु अपजसु चलिहे जुग चारि।
मेरे कहत राषि मनु पंचि, सिय सुख कारण रयनु मन बेचि ॥२०८॥

तू चातुरी करहि किस एहु, जाहि रमनप्पो छाडहि गेहु।
काढहि जिया तस सेकी पाल, नारि मरण बुधि भई अकाल ॥२०९॥

पिसुनें पेषै करत कुपाउ, तौ महिषो दिगहावै राउ।
तौ सुन्दरि मरिये दुष देषि, मैं सिष सामिनि दई बिशोषि ॥२१०॥

जिम माषि चंदनु परिहरै, बिगधि अमेध जाइ रति करै।
रवहि कुबरो राजा छाडि, सेलु षाइ धो अरियै गाडि ॥२११॥

ताकै जोबन दीजै ऊक, वयण षेहु अरु जीवत थूक।
तपत तासु अंग दीजै डाहु, सा यो छाडि बरै परनाहु ॥२१२॥

रानी का उत्तर—

सषी बचनु सुनि बिलषी बाल, जरी रवि किरणि पुष्फकी माल।
कुंद दसनि बोलै पहु नारि, काज आपनो करि मनुहारि ॥२१३॥

आन मि बंसु गेहु कुलुठानु, जोबनु रूपु तेजु गुन मानु ।
रूपु कुरूपु हेतु अनहेतु, पोषु अपोषु किरूक अरु सेतु ॥२१४॥
परि जब मयनु सतावे वीर, तू नहीं सषी जानहि पर पीर ।
मन भाव सौ चढ़ै चित आणि, सौई सषी अमर वर जानि ॥२१५॥

श्लोक

वयो नवं रूपमती वरम्यं कुलोन्नतिश्चेति सुबुद्धि रेषा ।
यस्य प्रसन्नो भगवान्मनोभू, स एव देवो सषि सुन्दरीनां ॥२१६॥

जौ तू मो भावति सुमोह, तौ तू साथ हमारै होइ ।
जब रानी पभनैं कर जोरि, बोलैं सषी बहुरि मुषु मोरि ॥२१७॥

दोहरा

रानी जे अचलन चलहि, जानत अघ जुजि खाहि ।
दिवस चारि कैं पाव सो, संमूले चलि जाहि ॥२१८॥

जे पर पुरिसहि राचहि धनी, ते गति पति काटहि आपनी ।
तू सिव देल न मानहि दापु, षिन सुषु जनम जनम को पापु ॥२१९॥

रानी निसुनि भई अनमनी, मोरी बात सषी अवगनी ।
मैं तू जानी सषी सुजानि, तौ मै करी तुम्हारी कानि ॥२२०॥

तो हि कहाए ते सो परी, जोहीं कहो सु करि रावरी ।
विहिना लिष्यो न मेट्यो जाइ, मन मो सषी परी पछिताहि ॥२२१॥

रानी एवं दासी का कूबड़े के पास प्रस्थान—

बरजै कवनु अमारग जाति, तब उनि चली संग मुसिकाति ।
दोऊ जनी चली अरगाइ, मंदे देति सुहाए पाइ ॥२२२॥

चमकति चलीजु मोही राग, जनुकु सुहरिणि बिछोही बाग ।
चलत पाउ पाहुन सो षग्यो, नेवर धुनि सुनि राजा जग्यो ॥२२३॥

अमिय महादे पेषी जात, चितयो कहा चली अधरात ।
बाढ़्यो कोपु राय कैं अंग, हाथ षरगु लै चाल्यो संग ॥२२४॥

लूकंतु लुकंतु पाइ पिर देतु, नारी तनो कनमुषा लेतु ।
अमिय महादे चंपक माल, सोहू दुसवार पहूती तहि काल ॥२२५॥

दौनै जहि कपाट पर दारु, जाग्यो सुनि नेवर भुनकारु ।
भनै रिसानो को तुम चली, तारे फिरे अद्ध निसि गली ॥२२६॥

उत्तर दियौ तासु सुंदरि, एक ससि रेषा है दूसरी।
मौर मूढ को आवै ग्रान, गढ गाढी राजा कै थाण ॥२२७।

जानि बूझि तू उठहि रिसाइ, मानौ तो लागी बुढवाइ।
चली नारि यहु उत्तर कीयौ, उसही छेव राय पगु दीयौ ॥२२८॥

कूबड़े के पास पहुंचना—

जासु रमण की राणि हि ग्रास, गेहिनि गई कूबरा पास।
जाइ जगायो चरण नु लागि, अति रिस भर्‌यौ उठउ सो जागि ॥२२९॥

तिनि दासी भनि दीनी गारि, सुन्दरि विहसि करी मनुहारि।
जो जसु भावे सो तसु ईठु, सत्य पाषानौ जग महु दीठु।

जो जाने जस्य गुसे, सो तस्य आयर कुणए।
फलियो दषहु विजयो, कावो निवाहलि चुणए ॥२३०॥

दोहा

सैजहु छडिड वालहा वा कारण निसि जग्गि।
कंठ लागि दोऊ रहे भावरि बुरी व जग्गि ॥२३१॥

रानी का विनय—

रहि न सकौ तुझु विनु, सकमि न तोहि बुलाइ।
पंजर माहि राजा रह्यो, ज्यो तो उवरि पाइ ॥२३२॥

रानी गई तासु कै संग, मनो स्वान थिटारी गंग।
गरुड नारि मनु मानी नाग, हंसिनि जनुकु भाग‍ई काग ॥२३३॥

जनुकु पुरंदरि सेई भूत, जनु ससि रेहु राह ग्रह सूत।
सोहिनि जनुकु सुवहु को सेठ, रानी रही कूबरा हेठ ॥२३४॥

आपुनु पेषि राउ पर जर्‌यौ, जनो घ्योगिम हुतासन परयौ।
काढि षडग एहु घालैं घाउ, फुणि चित चेति चमंक्यौ राउ ॥२३५॥

इहु तिय निंद दुष्ट गत लाज, नीचक ठवुधि करै अकाज।
मलितरासिणि विणु अविचार, साहसु करतन लागै वार ॥२३६॥

उत्तिमु छाडि नीचु संग्रहो, मनमहु प्रकरु अवगुन कहै।
पापिणो के किम हरमि पराण, मारण कही न वेद पुराण ॥२३७॥

कपुरिसु एहु कूवरौ राडा, दोषक बुरौ पीठि को हाडु।
मठौ धाइ पेट दिन भरै, पाइन चलहि लीदि मौ परै ॥२३८॥

श्लोक

दालिद्री च रोगिनो मूर्खः दयादान विवर्जितः ।
ऋण ग्राही कलंकी च जीवितोपिमृतोपि च ॥२३९॥

ताक पुरिसहि करमि किम घाउ, रह्यौ विचारि अवणि को राउ ।
दोऊ हणत परत्रकी हाणि, बहुरयो राउ एहु मन जाणि ॥२४०॥

राजा यशोधर का वापस जाना—

चित्रसाल पालिक परिगयो, णिवडिउ जनकु वज्र को हयो ।
कारणु करैं राउ मन कूरि, परिहस अगिणि दई तण पूरि ॥२४१॥

राणी काम भूत की गही, रमि कूबरौ चली गुण रही ।
धगमगाति डरपति डर लई, पेखि स्थानस्थारि बन दई ॥२४२॥

जण गाडर विजुराई मेहू, मग्निग सहील पखीनी देहु ।
फुणि पिय भुज पंजर संचरी, नागिणि जणकु महाविष भरी ॥२४३॥

करतौ राउ सरस रस केलि, सो भयभई महाविस वेलि ।
यह दुखु वह सुखु वरणौं कौनु, पापिनि दियो घाइ जनु लौनु ॥२४४॥

श्लोक

नूमतं न विषं किंचित्, एका मुक्त्वा नरांगणां ।
सैवामृतमयो रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ॥२४५॥

चौपई

भामणि लागी केम णरेस, जनु रवि सिनि भिहा वण भेस ।
झपत निलज्ज पापकी पुरी, डाइणी जणकु गुदी गहि जुरी ॥२४६॥

दोहा

तहि णरवै मन चितवै, पेखिवि नारि चरित्रु ।
देहु महातरु प्रभु तणो, दुष महाफल सित्तु ॥२४७॥

हाहा एहु भणछु जगि कासु कहि जइ भासि ।
अपजसी लाज पयासणी पावकु कम्महु रासि ॥२४८॥

ही कोहानलु तिय चरित्र देह बनंतरि लग्गु ।
चित्तु विहंगमु मुद्ध तनो उविवि वहं दिहि मग्गु ॥२४९॥

हउं जाणमि भो बाल हिय याहि बिबालहु पोउ ।
पंजरु मुक्कु सम्मधि कहु, अण्ण सक्कण्ड जीउ ।।२५०।।

चौपई

राजा यशोधर द्वारा चिंतन—

तहि अवसर चितइ मन राउ, अब फुणि भयो मरण को दाउ ।
छाडिम राजु गेहु धनु भोगु, मारिणिणि कुटमु सरस रस भोगु ।।२५१।।
तपु करि सहमि परीसह घोर, भवभय सवनु निवारमि भोर ।
बिनु तप नहीं कर्म्म को घातु, तारे गणत भयो परभात ।।२५२।।
तंब चूल बासे रवि उयो, अंबर तारागणु लुकि गयो ।
तीरणि चकवा मिले अणंदि, सूर राइ मनो काटो बंदि ।।२५३।।
पंच सबद बाजे दरबार, बंभण पढहि बेद झुणकार ।
जसहरु सभा बैठ्यो आइ, णिसि दीठो बैरा गुण जाइ ।।२५४।।

चन्द्रमती रानी का आगमन—

तहि अवसरि चन्द्रमती राणी, पूजि किरन आसिकु लै पाणि ।
आई जहा जसोधरु राव, मोह कर्म्म सुवऊ परभाउ ।।२५५।।
आसिकु दयो राइ के हाथ, पभण्यो चिरु जीवहि नरणाथ ।
माता चरण परचो तब राउ, आई माता कियो पसाउ ।।२५६।।

यशोधर द्वारा स्वप्न वर्णन—

भणै राउ माता णिसुणेहु, भासमि सुपिणु कानु थिरु देहु ।
जैसो सुपिणु दीठ णिसि आजु, मानहु अवसि बिनासै राजु ।।२५७।।
बिलंग एकु महा परचंडु, किरन अंग कर लीने दंडु ।
चित्रसाल अंबर ते परयो, सो मैं भीतु पेषि हो डरयो ।।२५८।।
णिसियरु भणै राइ संभरौ, स्यौ परिवारण गरुयो करौ ।
जौ तपु करहित छाडमि आजु, ना तरु अवसि विनासै राजु ।।२५९।।
मेरौ वचन राइ प्रतिपालि, जीतव इंछु लेहु तपु कालि ।
मै भास्यो तपु करमि बिहाणि, तब सुरु गयो आपनै थान ।।२६०।।
हौ तपु करमि माइ ससि मती, जासु पसाइ काटमि भवगति ।
कलमलि माइ वचनु तब भन्यौ, जिनवर तनौ धम्मु अवगन्यौ ।।२६१।।

चन्द्रमती द्वारा शिक्षा—

ऐसो वयनु रा सुव मुहु काढि, याहू तेरु भवगनो वाढि ।
सपिरा पेषि भैभीतु ण होहि, कुटमु मुयनु सब लाग्यो तोहि ।।२६२।।

जै सुपिरणहि डरपै वरवीर, संगर केम सहहि सुव भीर ।
डरपै हीनु दीनु कुषि रंकु, तू कुल मंडनु राउ निसंकु ।।२६३।।

देविनि के दिन भारे पूत, महियलि मैं मवमाते भूत ।
भवहि रैनि जोगिनि के ठाट, मढ मंदिर वरा तोरणि घाट ।।२६४।।

जौ सुव बूझहि साची बात, मोहु रयरिण जाइ कर रात ।
कंचाइणि देवी तो तनी, ताको बलि पूजा करि घनी ।।२६५।।

महिल मेरा भन [illegible], देवी की तुम पूज कराहु ।
भाख्यौ दिय वर तनै पुराण, जिनवर धम्मुं रा सिसुण्यो कारण ।।२६६।।

हौ इकु सर सुसु राजु भषंड, कंचाइरिण राषौ सुव दंड ।
सिसुरिण वचनु बोलै महिराउ, हा किमि मूढ भयो जिय भाव ।।२६७।।

राजा द्वारा हिंसा का प्रतिरोध—

जीव घात जौ उवजै धम्मुं, तौको अवरु पाप को कम्मुं ।
जे ते लष चौरासी पारिण, ते सब कुटमु माइ तू जारिण ।।२६८।।

सो ण भवंतरु गह्यौरा माइ, सो पसु घातु करण किमि जाइ ।
जीव घातु जो कोइ करै, सिहचै नरक माइ सो परै ।।२६९।।

श्लोक

नास्ति अर्हत्परो देवो, धर्म्मो नास्ति दया विना ।
तपः परम निरग्रन्थो, एतत्सम्यक्त्व लक्षणं ।।२७०।।

चन्द्रमती द्वारा अनिष्ट निवारण का उपाय—

चन्द्रमती बोली विहंसि, हीरा दंतपंति झलकंति ।
एकु वचनु सुव मेरौ पारि, देवी तनी ण पूजा टारि ।।२७१।।

जैसे कुसरा आगैं हु होइ, दुषु दालिद्र रा व्यापै कोइ ।
अण कुक्कुट करवा वहि एकु, देवहि देइ वोइ दुष छेकु ।।२७२।।

फुरिण तू तप लीजहि सुकुमार, बलि पूजा करि अबकी बार ।
मान्यौ वचनु चन्द्रमति तनौ, माता भाउ पयास्यौ घनौ ।।२७३।।

वरण कूकुरु कीनौ सुसि टारि, पेषि रहसु मान्यौ परिवार ।
करत कुभाउ या राजा हरचो, लै करि दीपु कुवामहु पस्यो ।।२७४।।

जाणि बूझि कीजै जिय घात, कवरणु निवारै णार कहि जात ।
गयौ राव तेली कैं गेह, [illegible]मेघुरी दापनी बलि लेय ।।२७५।।

हुपौ प्रचेतु रहसु मन माणि, जनु कुसु सची महा दुषाणि ।
चन्द्रमती बौली तहि थाणि, थोरै भलौ हमारो माणि ।।२७६।।

तू कुलदेवी कुल की वारि, रण रावर तु लेह उवारि ।
बहुत भगति करि रहसी देह, फुणि नंदणस्यौ चाली गेह ।।२७७।।

जसहर नस मैं कुमरु हकारि, कलस ढारि आसन वैसारी ।
दीनौ राजु पट्टु वलु देसु, आपुनु वरण तप चल्यौ नरेसु ।।२७८।।

तहि ठा मारदत्त सुनि राइ, कर्म तनी गति कहण न जाइ ।
अमिय महादेवी ससि वयणि, सरस कंजदल दीरह णयणि ।।२७९।।

भूलीही न कुमि जर्क हेत, जसहरु राउ सुन्यौ तपु लेतु ।
अकुलानी विहु लंघल गई, जिम णव बेलि पवन की हुई ।।२८०।।

जो ए होइ थिरु एको घरी, बिनु संयम तप रै कव मरी ।
सुनी न पेषी जो मनवबी, कंतहि लैन कैम तपु सवी ।।२८१।।

यह फुणि मानौ कछु विचारु, जिहि ते दीक्षा लेइ भतारु ।
आषमि राजा भया उदास, देषी रयणि कुवरे पास ।।२८२।।

रानी अमृता की प्रार्थना—

पेषत मानु राइ को मल्यौ, ताते कंतु लैन तपु चल्यौ ।
जो राजा फिरि मांडै राजु, मेरौ सकल विनासै काजु ।।२८३।।

ऐसौ जानि डिभ मनभरी, चंचल आइ राइ पग परी ।
नयन कमल भरि छाड्यौ नीरु, विरह बाण घन घुम्यौ सरीर ।।२८४।।

भणै नाह हौ तेरी दासि, साई मोहि तजहि का पासि ।
मो तजि किम तप लेहु भतार, तो विनु प्राण जाहि सुवियार ।।२८५।।

दोहरा

बालम जोवनु कुसुम वनु, केम चले दवलाइ ।
सरस वचन विनु जलहु रहि, ता विनु कैम बुझाइ ।।२८६।।

बालम तुव महवाल हुउ, तो बिनु एहु अकज्ज।
कै जरि बरि माटी भली, कैर तुमारै सज्ज ॥२८७॥

बालम तुम बिनु रूवरी, लहिमलि भारी होइ।
सोता किभइ जणहु जगु धीरी धरै ण कोइ ॥२८८॥

बालम बिनु किम भामिनि किम भामिनि बिनु गेहु।
दान विहीनौ जेम घरु, सील विहीनौ देहु ॥२८९॥

चौपई

रानी भनै जोरि द्वै हाथ, हौ तपु करमि तुमारै साथ।
परि मो बचनु एकु प्रभु देह, भोजनु करहिं हमारै गेह ॥२९०॥

दियवर भणहिं वेद की साथि, वलि विषानु भोजन बिनु वादि।
ताते एहु बचनु प्रतिपालि, फुणि तुम हम तपु लीवौ कालि ॥२९१॥

रानी वचनु मोहि प्रभु रह्यौ, मानहु मोह निसाचर गह्यौ।
जनु पडि ठउना मेले सीस, भूली सबै पाछिली रीस ॥२९२॥

रानी चरितु रयणि जो रचौ, भाई मो सुपिनु हो भयौ।
भरम भुलानौ ठगि सौ लयौ, मांग्यौ बचनु नारि कहुं दयौ ॥२९३॥

रूपणि रवण कथा पिसुणेह, मैटै कवनु कर्म की रेह।
मानी राइ नारि की बात, भामिनि रोम हुलासी गात ॥२९४॥

रानी द्वारा जहर के लड्डू बनाना एवं राजा को खिलाना—

तब राणी अपनै घर गई, बोली सखी रसोइ ठई।
लडू किये बहुत बिसु घालि, कछुकु तैं वन दीनौ चालि ॥२९५॥

हीन बात किम बरणमि और, लीपि सोधि करि दीनौ ठौर।
असहरु चन्द्रमती सु पहाणि, दोऊ जैव न बैठे प्राणि ॥२९६॥

लाडू आनि परोसे चापि, भोजन करत उठौ तनु कापि।
ताकी उपमा दीजै कौन, भूमि चालु सौ लाग्यौ हौन ॥२९७॥

जुर जाडे जहू तुम्यौ अंगु, भयौ नयन काणनि कौ भंगु।
नसणी टूटि जीभ लठराण, चन्द्रमती के बिकसे प्राण ॥२९८॥

वैदु वैदु करि राजा पर्यौ, अमिय महा दे कौ ज्यौ ढर्यौ।
जो राजा कौ जीवन होइ, तौ प्रभु मारै मोहि बिगोइ ॥२९९॥

पापिणि भई आपने भेस, सिर मुकराइ दिये तिनि केस ।
पकरि जरक सौं दीनौ अंत, णिधिण हुयौ आपनौ कंतु ।।३००।।

जसवै नंदनु आयौ धाइ, पितहि पेषि रह्यौ मुहु वाइ ।
विलस लोग समुझावहि तासु, जाणि राइ जग मौ को कासु ।।३०१।।

आदि अनादि भए अरु गए, जानै कवनु कितिक निरमए ।
पाप पुण्य द्वै चलहि सघात, ऊरण काहु दीसै जात ।।३०२।।

सुपुरिसु किम रोवे मुहु वाइ, लघुता होइ दुवनु विहसाइ ।
लाग्यौ तोहि धरणि धरु बंधु, जस मैं राज धुरा धरि कंधु ।।३०३।।

अमिय महादे मौको धाइ, मोकाकी करि वाले नाहु ।
सो कुणि प्रभु समुझाइ राषि, जस मैं राइ स कोयलु भाषि ।।३०४।।

माता जाणि न थिरु संसारु, वरजि रहायौ सवु परिवारु ।
जसहरु राउ चन्द्रमति आए, अरथी करि ले गए मसान ।।३०५।।

श्लोक

अर्थी गृहान्निवर्त्तंते, मसानेषु च बांधवाः ।
सरीराग्निसंजुक्तं च पुन्न-पापं समं व्रजेत् ।।३०६।।

चौपई

किरिया करि नेन्हाइ सरीर, कुसुलै दियौ चूरु भरि नीरु ।
कीनी सयल मरे की रीति, भासौ कथा गई जिम बीति ।।३०७।।

वस्तुबंधु

देस जयवरु अभयरुइ णाम, आहासई गुण गहिरु मारिदत्त पहु ।
सुनि भवंतरि कम्माहु विचित्त पाव पुन्न फल निगुनि ।
अंतर आनंतहु जसहर णिवइ कुकुरु भयो अचेउ ।
संसारं बुहि हिडियउ आहासमि भव भेउ ।।३०८।।

चौपई

पभणइ कवि पणिविवि परमेस मारग सुलण थेघ उपदेस ।
णिसुणहु भव्व सुदिढु करि काणु, जसहर राजा तनौ कहानु ।।३०९।।
जस मैं राउ उज्जैनी करै, उपमा आपु इन्द्र की धरै ।
कुसुमावलि कुसम सर वेलि, ता समान मानै सुष केलि ।।३१०।।

यशोधर का मोर एवं चन्द्रमती का कुत्ता होना—

कूकुरु हयौ अवेयनु आपु, जसहर जानत कीनौ पापु ।
बरणौं कवनु महा ममु घोरु, जसहरु राव भयौ मरि मोरु ।।३११।।
चन्द्रमती मरि कूकरु भइ, परमति रमति आपुनु रई ।
एक दिवस विहि सर मधुजाणि, जस वेंढोंवउ दीनौ आणि ।।३१२।।
स्वानु पेषि मन उपज्यौ भाउ, जो लायौ तहु कीयौ पसाउ ।
णिमि हिनु बंध्यौ मंदिर रहै, पारधि जान बहुत मृग गहै ।।३१३।।
फुणि जस मैं अवलोयौ मोरु, अति सुरुपु गुणु कहुत न ऊरु ।
सोलैं मेल्यौ मंदिर माह, कौतिगु बहुत करैं सो ताह ।।३१४।।
नेवर धुनि सुनि विसैं कराह, राणिनु षेलत दिवसु विहाइ ।
एक दिवस पावस घनघोरु, मंदिर सिषिर गयौ चढि मोरु ।।३१५।।
तहि भव सुमरि नुणि मन जाणि, सयलु लोग पेष्यौ पहिचाणि ।
चित्रसाल पेषी आपनी, अवलोइ कुचिज कस्यौ घनी ।।३१६।।
लो लगीव यन उपज्यौ मोहु, तिनहु परणि बढ्यौ करि कोहु ।
कियौ चरण चंचू कौ घाउ, तहि पाविनि गहि तोस्यौ पाउ ।।३१७।।
मारिदत्त लै भग्यौ परानु गयौ तहां बंध्यौहो स्वानु ।
तहि कूकर माता कै जीव, पकरि स्वानु मुट्ठ तोरी गीव ।।३१८।।
सारि पास षेलतु हो राउ, धायौ तिनहि झुडावन आउ ।
छाडै नहीं स्वानु रिस लयौ, राइ स्वान सिरु मंदिर रह्यौ ।।३१९।।

काला सर्प एवं मोर होना—

निकस्यौ साथ दुहु कौ जीव, मुयौ स्वानु दूजौ हरि गीव ।
सिहिस्यौ बैरु स्वानु करि मर्‌यौ, किश्नु भुजंगु छाइ अवतर्‌यौ ।।३२०।।
जाह्यौ भयौ सोजि मरि मोरु, पाव कम्र्मभव भव तन ऊरु ।
तिणि फुणि बैरु पुराणौ सरचौ, देषत दीठि नागु संघरचौ ।।३२१।।
दोऊ परे तक्ष की भेट, ते भषि दोऊ दीनै पेट ।
गौहिल परयौ विघाता रुसि, मरि भुजंगु जल उपनौ सूसि ।।३२२।।

नृत्यांगना—

अधम कर्म सो कीनौ पीनु, सो जाह्यौ मरि उपज्यौ मीनु ।
गायरे उजैनी जस मै तनौ, नाचणि रूप तिलोतम बनी ।।३२३।।

कणक बरण ससिहर मुष जोति, पेषत मुनि रति पति तण होति ।
चंचल डोल बिलोल बिसाल, कोमल जनकु पुष्प की माल ॥३२४॥

कुच कंचुकी वनी कसि अंग, फाटैं तर कि भ्रमत बहु संग ।
कटनि मेषला बंधी तानि, जनकु सुगडी बिधाता आणि ॥३२५॥

बहुल कुसुम लै बैंनी गुही, जनु चंदन नागिनि आरुही ।
ताल पषावज बीना बंस, नेवर धुनि सुनि भूलहि हंस ॥३२६॥

अगनित जानैं कला बिनाना, अवसरु करि जल आइ न्हान ।
कोला करैं सषिनुम्यो मिली, षिणमौ सुंसुमार सो गिली ॥३२७॥

हाहा वादु नगर मौ भयौ, सुंसुमारु नाचनि गिलि गयौ ।
णिसुनि राइ आयौ नदि तीर, जावि जोग दुहु भयौ सरीर ॥३२८॥

धीवर बोलि चलायौ जारु, पकर्यौ सूसि मैलि मुहगारु ।
लाए पकरि बाहिरी सूसि, मारी लात लका मुह घूसि ॥३२९॥

मरणै कवनु महादुष षाणि, दुष दियरायै नरक समाणि ।
सहिए सोजि सहावैं दई, तिस पुरि सो मरि छेरी भई ॥३३०॥

मारिदत्त सुनि भव भयभीति, कछु दिवस जब गए बितीत ।
जीव न लहै कर्म्म पहु टालि, मीनु भखौ मुष गारौ घालि ॥३३१॥

आनघ लात मुठी कनु हण्यौ, सुर गुर पहु दुष जाइ न गन्यौ ।
रोहौ भणि तिनि दीनौ छोड, जस मै ताकौ कियौ बिगोड ॥३३२॥

पिता मरिवि जो उपज्यौ मीनु, सोइ नाइ पिता कँ दीनु ।
ऐसैं दीवर भाखहि वेय, मूढण लहहि धर्म्म को भेदु ॥३३३॥

जीवण जाइ कर्म बस परयौ, छेरी तनै गभु अवतर्यौ ।
जब तिरजंच बडेरौ भयौ, मातहि रवत अज हण्यौ ॥३३४॥

आपु बाप्र सो उपज्यौ आपु, मारिदत्त को मेटैं पापु ।
पूरे दिवस भए जब पेट, एक दिवस प्रभु गयौ अषेट ॥३३५॥

तिहि दिन राजहि भई न घात, बाण हणी छेरी धरजात ।
पेष्यौ उदर वो करावालु, ताकौ काढि कियौ प्रतिपालु ॥३३६॥

दिय बाह्मण बर भन्यौ अजौनी जानु, बडौ भयौ डोलैं घरु षालु ।
तिहि अवसरि णिसुणहु धरि भाउ, गयौ अहेरैं जस मैं राउ ॥३३७॥

हरिण रोभु सूकर हरि ससे, मारे जीव बहुत क्षण वसे ।
दियवर भणहि णिसुणि प्रभु साधु, जलहर राजा तनौ सराधु ॥३३८॥

आजि पिता तनौ दिनु एहु, तासु नाम बहु भोजनु देहु ।
जूठी वहतु अमिय की राषि, सोर सुधा वहू छेरे पासि ॥३३९॥

निरमलु वोकु अजोर्नी आजु, लहै सुरगु सुष आजे आज ।
तिनकै कहत अजाघर आणि, दिठु करि मंदिर वाध्यौ तानि ॥३४०॥

अमिय महादेवी कौ गेहु, वोकु क्षुधा तृस व्याप्यौ देहु ।
तालू वेस पयासी घनी, तहि अजाभव सुमरी आपनी ॥३४१॥

देख्यौ कुटमु दासि अरु दासु, मारिदत्त दुषु कहियै कासु ।
सबु मंदिरु पेष्यौ अवलोइ, तब पछितानै कछू न होइ ॥३४२॥

हौ तिरजंचु पुकारी कासु, कोइ देइ नपान्यौ घासु ।
फुर्णि गाहनि श्रुनिष्ण परी, अमीय महादे दीठित परी ॥३४३॥

तहि अवसरि रावर की हासि, पाणिनि रानौ तनी षवासि ।
जोवन तरुए कनक समभात, कहति चली आपु समहु वात ॥३४४॥

दासि एक पभनै तनु मेरि, करि कटाषु मुहु नाक सकोरि ।
रावर विगधि कहा रमि रही, अवर भनै तुम बात न लही ॥३४५॥

मरमु न जानहि कछु गवारी, राजा स्याव जलयौ मारि ।
जसहर चन्द्रमती दिनु आजु, होइ बहुत भोजन कौ साजु ॥३४६॥

सरचौ मासु गधि साची एहा, अमिय महादेवी कै गेहा ।
अवर दासी बोली अरगाई, कहमि बात परि कहण न जाइ ॥३४७॥

निसि दिनु सेवा जाकी कीज, सषी तासु किमि बुरी कहीज ।
पाछै तुम्ह देहौ मारि, सुनैत सामि निकारै मारि ॥३४८॥

तऊ कहमि जौ कहण न जोगु, अमिय महादे वाढ्यौ रोगु ।
विसु दै भोजण मारचौ णाहु, फुनि कूवरो रयौ करि गाहु ॥३४९॥

बाइ अमिगु डाइनि अवतरि, पापिनि कुष्ट व्याधि सरि परी ।
दुष्ट कर्म्म सो मारी जूरि, ताकी विगधि रही भरि पूरि ॥३५०॥

दासी तनौ वचनु सुनि कान, मैं घरतन पेष्यौ तहि थान ।
तब बैठी देषी सोनारि, कोढिणी विधना करी विचारि ॥३५१॥

पायौ वेगि आपनो कियौ, जैसो बयौ तिसौ लुनि लयौ ।
भो सुषु भयौ नारि अवलोई, जिमि निर्धन धनु पाए होइ ॥३५२॥

मारिदत्त निसुनिहि धरि भाव, काटिउ एकु अजाकौ पाउ ।
तीनि पाइसो बपुरा रह्यौ, छूटै नही कर्म्म दिढु गह्यौ ॥३५३॥

कथा सुबोजिल निसुनहु प्राण, छेरी जो प्रभु मारी बाण ।
सो मरि देस महिषु अवतरचौ, अति प्रचंडु बल दीसैं भऱ्यौ ।।३५४।।

ता परि वणिकु कठारी घालि, लादि चलायौ मधुरी चालि ।
आयौ सो उजेणि नदि तीर, चलत पंथ की भई उमीर ।।३५५।।

नो तहि महिषु [illegible], [illegible] नदी तुरंग पहुगामो ।
तब थन बारणु कीनो सोर, पकरयौ महिषु घालि गल डोर ।।३५६।।

राजा आगैं विणइ सेव, हण्यौ तुरंग तुमारौ देव ।
सुणि रिसाइ बोल्यौ महिराउ, याको करहु दुहेलौ घाउ ।।३५७।।

पाइ बांधित रखऊ आगि, तिम मारहु जिम जाइ ण भागि ।
छेरै सहुलै मारहु एहु, खाइ पिता मा जोकै देहु ।।३५८।।

फोरैं काग एहु पग तीनि, देऊ पितर जिम पावहि पाणि ।
छेरौ महिषु अगिनि सहि मरो, तंब चूल दोऊ अवतरे ।।३५९।।

तहि अवसरि कर लाठी धारु, जस मैं राय तनो फुटवारु ।
दोऊ लए अनुपम जाणि, तिणि राजहि दिखराए आणि ।।३६०।।

कुक्कंट जुगलु अनुपम पेषि, राच्यौ राय रंग मनु भेषि ।
बहुत मोहू सुख उपनो दीठि, निज कर परसी तिनकी पीठि ।।३६१।।

कोटवाल पभणैं सुनि राइ, जूभू पेषि मनु धरौ सिहाइ ।
भनैं राउ तल वर प्रतिपालि, देहु कुरु पंजर लै घालि ।।३६२।।

नंदन बन मेरैं वर तीर, लै चलि तांब चूल वलवीर ।
गज गामिनि भामिनि मो तनी, ता सहू कील करमि बन वनी ।।३६३।।

तहि कोतिगु पेषसि वन माह, सुफल कुसुम तरुवर उन छाह ।
निसुनि बचनु तलवरु सिर णाइ, कुक्कुंट लैवण पहुच्यौ जाइ ।।३६४।।

साटकु

अंबनि बकय व चंदनघनं क किलि वल्लीहरं ।
दरकाणालि लवंग पुग कदली सेत्रि गुजर कामरं ।।
जाती चंपक मालती व कुसुमं भुंकरादि केरं ।
गायंती भुणि वीए किणरिउ लंप भवणं सारणं ।।३६५।।

कोटवालु धनु वनु अवलोइ, मन मोहनु सोहनु फिरि सोइ ।
तहि अवसरि णिव मंदिर पास, जहि असोय तरुवरु घन सा ।।३६६।।

णागिनु दिगंबर दीनै भागु, सुहड दीठु तलवरु तरहानु ।
कोटवार मन चितयौ तहा, इहु निलज्जु यत आयौ कहा ॥३६७॥

पेषि राउ मन कोपु करेइ, याकी रिस मेरै सिर देइ ।
मुनिवरु वाहनु लेमिउ चाढि, राखन ते कडमि निरघाटि ॥३६८॥

डिभ भरयौ आयौ मुनि धीर, उगसि फारु कीयौ अरधीर ।
मुनिवरु ति जग सरोवह सूर, धर्म्म बुद्धि दीनी गुण पूर ॥३६९॥

सुनि मुनि वचनु सुहड भनि कहे, कहिये धम्मु कवनु को लहौ ।
धर्म्म धनुषु सिव सूके वाण, यहू भासिउ दीवर परवाण ॥३७०॥

मुनिवरु भनै नि सुनि कुटवार, पभणमि धर्म्म तनै विवहार ।
कहियै मुकति अमर पद थान, सुखु अनंतु को कहण समानु ॥३७१॥

कहियै धम्मु अहिंसा आदि, जा बिनु हिंडिउ आदि अनादि ।
मुनिवर वचन सुहृ दुह सि परयौ, मुनिवर वादि वथ मडू परयौ ॥३७२॥

कवनु जीव को दुखु सहाइ, मूढ देह मारटिहि मिलि जाइ ।
पवन हि पवनु मिलै मन जाणि, किम मुनि भासहि झूठ बषाणि ॥३७३॥

कवन काज दुषु सहहि सरीरा, छाह अंगतन पहिरहि चीरा ।
बहुविणु जीव लेइ अवतारु, बिनु कण कूटहि काइ पियारु ॥३७४॥

फुणि रिसि वोल्यौ भडणिसु सुणेहा, भिन्न जीव करि जाणहि देहा ।
तातैं तपु करि काटहि पापु, जान्यौ देव जीव गुन आपु ॥३७५॥

जौ परि पवनु गयौ मिलि पौनु, दुष सुष मूढ सहो तौ कौनु ।
भलो बुरो तौ कीजइ काइ, तलवरही णाव कहि किम थाइ ॥३७६॥

जो गुण मुनि वर भासी पेषि, सो गुणु तलवरु मेटइ दोषि ।
भणै सुभटु वरसण भंगु, मुनिवरु भासि करै तिण भंगु ॥३७७॥

तलवर झूठु भणै सचु जोरि, सो संसौ मुनि घालै तोरि ।
जितौ वादु मुनि तलवर कीणु, तेतौ किमि भासमि बुधि हीनु ॥३७८॥

तलवर तनौ रह्यौ मनु माणि, पादु नुपरो सु दिढु मुणि जाणि ।
उपमा बहुत कमकरि भनौ, किम घटाइ सुख को लीपनौ ॥३७९॥

तलवरु भणै निसुनि गुरदेव, दै आइ सुकरमि किम सेव ।
भासैं स वंनु सुभट करि एह, आठ मूल गुण दिढु करि लेहु ॥३८०॥

जैसा वयवय भासहि वीरा, जासु पसाइ तरहि भव तीरा ।
ए प्रतिपालि धर्म्म की रासि, आगम कह्यौ जिनेसुर भासि ।।३८१।।

कुणि भद्दु भणै जु तुम मुणि दयौ, सो मन वचन काय मै लयौ ।
परि मेरै कुल मारग एक, मुनिवर निसुनि धर्म्म की टेक ।।३८२।।

पिता अजायौ जो पर तासु, आयौ चल्यौ वंस जीय घासु ।
जसमै राय तनौ कुटवारु, मार मि चोरु जारु वट पारु ।।३८३।।

भास मि देव वयनु परिहरि, पालमि सयलु अहिंसा छाडि ।
निसुनि वयनु मुनिवरु हंसि परयौ, जान्यौ अजहु मूढमति भरयौ ।।३८४।।

निसुनि मूढ जिम सिर बिनु देहु, लवण बिनु भोजनु नारि बिनु गेहु ।
जिम मुहु हीण नयण मरु शंक, जिम बहु सून एक विनु अंक ।।३८५।।

धरमु अहिंस धर्म्म की आदि, ता बिनु मूढ धरमु सबु वादि ।
अरु तू कहहि मूढ निरभंस, आइ चली हमारै वंस ।।३८६।।

ताको उत्तरु पभनौ भाषि, चलै कोढु जो सातौ साषि ।
कोइ वैदु मिलै लै मूरी, परि सो काढु करै सब दूरी ।।३८७।।

कहि कहि मूढ आपु गुण साथी, दूखे भलो किम हिये व्याधी ।
तंब चूल कीणि सुणहि वाता, जिम ए फिरे भवंतर साता ।।३८८।।

सहे महा दुष नरक समाना, तिम तु सहि हे मूढ अयाना ।
तब चित चेति वाल मद भनी, कहि कहि सुगुरु कथा इण तनी ।।३८९।।

जय वर भनै अमोघ रस वाणि, सुनि वर वीर कथा चिरकाणि ।
जसहरु एक अचेयण घात, भवगति फिर्यौ भवंतर सात ।।३९०।।

श्लोक

श्रीमद्येह उज्जैनिनामनगरे सुरोजसोमो नृपः ।
पत्नी चन्द्रमती सुतो जसधरः, नारी चरित्रे मृता ।
संपत्तो सिहि स्वान आवह फणी जुस्मोपि अंमंचरः ।
छेली छागु स्ववीर्य छेल महिषो एवं पुनः कुक्कुटः ।।३९१।।

इनके कहे भंवतर वीरा, तंब चूल पंजर तो तीरा ।
अब नर जनमु तनौ अवतारु, दोऊ लहहि काटि दुहु भारु ।।३९२।।

तलवर चेति आपु मनु लयो, जनु रवि किरण पेषि तुम गयौ ।
निसुनी कथा मुनीसुर भनी, कुक्कुट भव सुमरी आपनी ।।३९३।।

जान्यौ सयलु पाछिलौ कियौ, तब पछिलाइ विसूरयौ हियौ।
पायौ दुलहु मझा गुण बोहु, जीव भषण कौ कियौ निरोधु ॥३९४॥

आई काल-लबधि सुभ घरी, भव भय वेलि कटी दुष भरी।
तंब चूल पंजर बन माहु, कीनो सब कुसुमहु रीसाहु ॥३९५॥

जस बैराउ रयणि षण गयौ, राणि हि सहितु सुरतु सुषु लयौ।
कोक भाव रमि खणि सुजाणि, पंचि सबद सर मारे ताणि ॥३९६॥

तंब चूल आरति तजि मरे, कुसुमावली गर्भ औतरे।
पायौ धम्मुं सुगुरु उपदेस, पोतैं परी सु किल सुभ लेस ॥३९७॥

गुरु भव सायर तारण हारु, भव तरुवर कप्परण कुठारु।
कीजहु भव्व सुगुरु कौ कह्यौ, जासु पसाई उत्तिम कुल लयौ ॥३९८॥

सिसु सारंग नयणि ससि वयणि, पिय सौभागि सुरत सुषु रयणि।
कुसुमावली सहितु घरणाहु, गयौ णयरि मन भयौ उछाहु ॥३९९॥

पयहु असा पति तरा सहि धारु, दिन दिन गर्भु जु राणै आसु।
जिनवर नयौ धर्म परणाह, पुन होइनौ पूरै राह ॥४००॥

कुंजर चालि सुहाई मंद, पंडरु वयनु सरद जनु चंद।
घुलहि णयण जनु जागी राति, मोरति अंगु वयण बरसाति ॥४०१॥

करुहु भारी परी जम्हाई, कोमल जंघ जुगलु थहराइ।
चंदन चंदु कुसुम रस वासु, सीयल सेज र वैज्यौ तासु ॥४०२॥

बिरीषंडि खारै अघषाइ, सुनै कहानी सखिनु बुलाइ।
अनुकमेण पूजे दस मास, भयौ जु पलु पूरी मन आस ॥४०३॥

अभयरुचि का जन्म—

मंगलु भयौ राय कौ गेह, सुह मेली सीची सुष मेह।
हीण दीण पूरे दै दानु, सुयण लोग कौ कीनौ मानु ॥४०४॥

इकु राजा सुत जनम्यौ आनु, ताकौ सुपु कौ कहुण समानु।
कीनौ अभौ कुटमु रुचि भरयौ, ताते नामु अभैरुचि धरयौ ॥४०५॥

सुतर अभैमति कंचन देहा, अति सरूप जनु ससि की रेहा।
मारिदत्त सुनि कथा पहाणि, दुसह खरी कर्म गति जानि ॥४०६॥

बलि जौ आनि सवनुत दई, वह हुती सो माता भई।
नंदनु हुतो जसोमति राउ, सो फिरी भयौ हमारो ताउ ॥४०७॥

सबु संसारु विरूवनु जाणि, राजा चेति धर्म्म पहिचाणि ।
बालक बढै पिता कै गेह, निर्मल अंग सकोमल देह ॥४०८॥

लषण बतीस कणक सम अंगु, जनहु अंग सहू भयो अनंगू ।
खेलत बाल कु देख्यो तात, मुदा पेषि भयो सुषु गात ॥४०९॥

पुणि सुन्दरि देखी सुकुमाल, सय दल सदल णयण सुविसाल ।
णायकांकेलि वेलि सम अंगु, चितवत जनु भयभीत कुरंगु ॥४१०॥

इहु पेषि पभणै राउ, देखि तातु अ[illegible] क[illegible] [illegible] ।
मारिदत्त सुनि यह धरि भाउ, पारधि चल्यौ हमारौ ताउ ॥४११॥

स्वान पखहूं लीने साथ, कणक डोरु गहि अपनै हाथ ।
पंचहु चरितु दई को आनि, दाहिणि दिसि तबह तरहाणु ॥४१२॥

मुनि दर्शन—

बिरकत भाव मुक्ति मन दढु, दीनै ध्यानु मुनी सुदीढु ।
पभणै राउ कोप आतुरचौ, नगिनु दीठु किम मेरौ परचौ ॥४१३॥

निर्वनु मलिनु अमंगलु एहु, दीयवरणिदु सदूषर देहु ।
सनमुख णगिन रह्यौ दै ध्यानु, या सम मो असगुण नहि आनु ॥४१४॥

याकौ मुषु देषत सबु जाइ, अण चीतीउ किम देख्यौ आइ ।
अरु मै बात पत्याई आण, भैट बुरेस्यौ होइ अचाण ॥४१५॥

सब कूकर मेले मुणि तीर, ध्याए घण जिम लए समीर ।
मुनिवर नीरे मंडल जाइ, समहुद रहे सीसु धरि साइ ॥४१६॥

गोवर्द्धन सेठ—

तब मन को पुन सक्यो सहारी, धायौ राउ काढि तरवारि ।
तहि अवसर गोवरधनु सेठि, जामन अटल पंच परमेठि ॥४१७॥

वनिवरु अंतरु कीनौ आणि, जस मै तनौ परम हितु आनि ।
पभनै तू जि अविन कौ राउ, मुनिवर उवरि करहि किम घाउ ॥४१८॥

पणवहि चरण वेगि तजि गाहु, मुनिवरु तेज पुंज गनाहु ।
वनिवर वयणु निसुनि महिपालु, भनै मित्र किम जंपहि आलु ॥४१९॥

मुनि को आहिण आजु उठाइ, यासिर करमि पलय की मानू ।
तू मो सहू पाल गया कहही, मानहू मेरो मरमु ण लहहि ॥४२०॥

निद्यौ मुणि दिय बरहू पुराणा, इनके वचन न सुनियहि काण ।
मेरे कूकुर राखे कीलि, अवय करज्यौ कणकु सो लील ।।४२१।।
असो वचनु राइ जब भन्यौ, हा हा पभणि वनिक सिरु धुन्यौ ।
नरवै मूढ राज मद भरे, भूली बात कहहि बावरे ।।४२२।।

मुनि के गुणों का वर्णन —

मुनिवर सम को अवरु पहाणा, याको गुणनि सुणिहि दै कानि ।
मलिन देह अंतर मल हीनु, तिय ण संगु सिव भामिनि लीनु ।।४२३।।
निर्वसनुहि परि वनहि न अनु, तीन रयण गही रह्यौ महंतु ।
रोस हीनु परिहन्यौ अनंगु, जो रवि परै तम रहै न अंगु ।।४२४।।
षीण सरीर अतुल बल जाणि, को तप तेज कहै परवाणि ।
वयनु पेषि सुष उपजै गात, असे गुण करैं नरक अनु जात ।।४२५।।
यहु कलिंग नरवै सुपहाणु, या समान राउ न होतउ आनु ।
तसकर कारण छाडिउ राजु, तजि आरंभु कियौ तप काजु ।।४२६।।
अरु जे ते सावज वणवास, लगते रहहि सदा मुनि पास ।
ता ऊपर किम घालहि घाउ, किम ये काज वढावहि पाउ ।।४२७।।
सुर नर खयर फनीसुर जिते, इणकी सेव करहि सब तिते ।
माया मोहु ण व्यापै सोकु, नान नयण सूझै तिर लोकु ।।४२८।।
जिन विनु काज बढावहि पापु, पणवहि चरण छाडि मन दापु ।
वनिवर तनी राव सुनि बात, चेत्यौ धरी सकुचि करि गात ।।४२९।।

राजा द्वारा मुनि भक्ति—

मन विचार करि उपसम भाउ, मुनिवर चरण परयौ महिराउ ।
रागु रोसु मह जिन वसि कियौ, धर्म वृद्धि भनि आसिषु दियौ ।।४३०।।
दूजौ धम्मु पापु पै जाउ, यहु मेरौ आसिक कौ भाउ ।
मुनिवर वचनु राउ सुनि काण, तब नरवै लाग्यौ पछितान ।।४३१।।
इण चिनु एकु न कीनी रोस, करु उचाइ मो दई असीस ।
या सम महियलि साधु ण आनु, इणि परु जान्यौ आपु समानु ।।४३२।।
मेरौ जेम पराछितु जाइ, सीसु काटि लै पर समि पाइ ।
मुनिवर भन्यौ निसुनि महिपाल, किम मन चिंतै मरनु अकाल ।।४३३।।

काटहि थीर केम सिरु मापु, मासु मात कटि जाइ ए पापु ।
जिम परघातु मापु तिम जाणि, वचनु अडोलु हमारो मानि ।।४३४।।

जव यहु बचनु मुनीश्वर कह्यौ, नरवै चेति चमकि चित रह्यौ ।
सुनि कल्याणमित्र गुण खानि, मन महू वात वई किम जाणि ।।४३५।।

वणिवर भणै राय गिसुणेहु, किंतिक वात जो जानी एहु ।
भई होइगी वरतति अहै, मुनिवरु तिहू लोक की कहै ।।४३६।।

माता पिता पितर तो तनै, जो बूझै सो मुनि वरु भनै ।
राजा तनौ गर्व गलि गयौ, बूझै वयनु आतुरौ भयौ ।।४३७।।

राजा द्वारा पूर्व भव जानने की इच्छा—

राउ जसोधु पिता ससिमति, कहि मुनिवर तिनकी भवगती ।
जसहरु अमिय महादे राखि, भए केम तिम संसौ भाखि ।।४३८।।

मुनि द्वारा कथन—

सुनि मुनि वयण नारि मन थूरु, भासै सुयणु सरोरुह सूरु ।
ब्यौरौ कह्यौ भई जिम वात, अैसैं फिरे भवंतर सात ।।४३९।।

चन्द्रमती अरु तेरौ ताउ, कियौ अचेयणु कुक्कुंट घाउ ।
हीडें तासु पाप के लए, अभैकुमारु अभैमति भए ।।४४०।।

सिरस कुसुम सम कोमल देह, ते दोऊ पलहि तुव गेह ।
भख्यौ अमिषु सेयौ परदारु, अरु विसु दै मारयौ भरतारु ।।४४१।।

कोढिनि भई महा दुखभरी, पचम नरक जाइ अवतरी ।
सो तू अमिय महादे जाणि, तेरी माय पाप की खाणि ।।४४२।।

तो सौं भवण भवति गति कही, जिम जिनि करी तेम तिणि लही ।
यहु संसारु जीव करि भरयौ, कर्म कुलाल कमठ वस परयौ ।।४४३।।

भानै गढै गढै फुनि भानि, नर वै जलद पटल अगु जाणि ।
पुरिस सीह सुनि जस मै राइ, बिनु जिन धर्महि सुखु ण लहाइ ।।४४४।।

भव ब्यौरौ निसुन्यौ वरवीर, हा हा भनि धर हुल्यौ सरीर ।
चेतु लागि मुनिवर पग परयौ, मन बिलखाइ हियौ गहु भरयौ ।।४४५।।

असू टूटहि कंपइ देहु, जनु भर भावौ वरसै मेहु ।
जौ जहू पापुण घालै घाइ, तब लगि तपु दै तिहु वणराइ ।।४४६।।

तब पग परहि पुरंदर देव, अरु चक्के स पयाहि सेव ।
कहि कल्याल मित्र गुण गेह, सूरि सुदत्त वेगि तपु देहु ।।४४७।।

तहि अवसरि प्रभु तनो अवासु, कुब्यो आइ जहु रणवासु ।
किम सिगारु करहु वरणारि, यौवन गयो भयो तप धारि ।।४४८।।

किम कसि कंचुकि पहिरहु अंग, बहुरिरण नाहु मिलै रति रंग ।
किम तण पहिरहु दखिरण चीर, किम मंडहु आभरण सरीर ।।४४६।।

कुंकुम रेह करहु किम वानि, केम कसनि कटि बंधहु तानि ।
अरु किम चलहु समोरति देह, फिरिरण नाहु आवइ सगेह ।।४५०।।

अंजहु नयण केम सुहिणाल, वास सुगंध कुसुम की माल ।
अरु किम नेवर चलहु बजाइ, करि कटाषु किम मिल बहु भाइ ।।४५१।।

किम रचि वैंनी बंधुहु फूल, सेज रचहु किम कोमल तूल ।
किम कर बीन बजावहु नारि, अरु किम बिहसहु वयनु पसारि ।।४५२।।

अरु किम चंदन चरचऊ अंगु, कंत कियो सजम सिरि संगु ।
स कहुत जाइ नरो रहु णाऊ, सोतलु करहु बिरहु तन दाऊ ।।४५३।।

जौ कछु प्याऊ करै करतारु, तौ मम कीव मिलै भरतारु ।
चरण रतनो वयनु सुनि काण, सब रानी लागी मकुलाण ।।४५४।।

अंतेवर बहु कीनो सोरु, जनु निसिव तकरगु पेख्यो चोरु ।
मधुकर मिले नयरा सुष वास, बिरजति तिनहि चली पिय पास ।।४५५।।

जिहि वन सवरण पास, सुपियरु, तपु मागत देख्यौ भरतार ।
बहुत भाति समुझायो नाहु, परि तप ऊपर तजै रण गाहु ।।४५६।।

जो अतिअसहै वहै बधारि, सकै हीनु किम परधतु टारि ।
तोरघो मोहु कर्म को हेतु, हम फुणि सुण्यो पिता तपु लेतु ।।४५७।।

रथ चढि वीर वहिणि वन गए, किंकर बहुत साथ करि लए ।
दरसनु पेषि मुनिसर तनी, तब हम भी सुमरचो आपणी ।।४५८।।

कुसुमावली हमारी माइ, ताकी छोरि परे मुरझाइ ।
सीचि पवण जल चेयरग लही, अपनी मुह्ह मरनी मव कही ।।४५६।।

वस्तुबन्ध

हव जि जसहरु चंद मै अम्हे पुरगु गेह रहे ।
बिलहि मरिबिदोबिसिहि साण पत्तइ ।

सध्याइवए निलुहु जाहो कपि मद् किन्हु गसइ।
जलथर छेली छागु मजु महि सुसदु कुर गसं।
सब चूस तनु छांडि तहि, हम ए रहोइ भिपसं ॥४६०॥

सो निहि कुक्कुंडु हयो मचेतु, हिंडिड सास भयंतर लेतु।
पुनु माइ दुष देषत फिरे, ते हम बीउ वहिणि भवतरे ॥४६१॥

मव तपु दोऊ करहि अलेउ, मंनधरि एकु जिनेस्वर देउ।
सणिवरु भनै सकोमल भास, पिसुनि कुमार वयनु मो पास ॥४६२॥

लेइ महातप तेरौ ताउ, तू कुमार कीनौ महिराउ।
बालक वयनु पिता कौ पालि, तौ निवहै कुल केरी चालि ॥४६३॥

पुत्र ण करहि पिता की आण, तौ ण काजु सीझै परवाण।
लछनु रामु भयौ परचंड, पिता वचनु सेयौ बन षंडु ॥४६४॥

ताते राजु करहु दिन चारि, फुनि तपु लीजहु काजु बिचारि।
राजु सकति करियो कछु न्मौ, मस वे भनिक दुहु तपु न्मौ ॥४६५॥

कुसुमावली अरजिका भई, बहुत नारि सहु दिष्या लई।
मै दिन चारि राजु घर कर्यौ, फुनि दै भाइ हि सो परिहर्यौ ॥४६६॥

गए सुदत्त सूरि मुनि पास, जो तप तेज सरु वनवास।
णमसिकारु करि मागी दीषि, तब सुदत्त गुरु दीणी सीष ॥४६७॥

तुम दोऊ बालक सुकुमाल, कोमल जिसे पऊ के नाल।
पंचम महाव्रत दुमह धरे, ते तुम पास आहि किम धरे ॥४६८॥

जोग त्रिकाल देहि किम बीर, कैम परीसह सहहि सरीर।
पाष मास किम सहहिउ धास, लहि कुमार किम सहहि पियास ॥४६९॥

जब लगि दोऊ समरथ होऊ, अनुव्रत धरहु कुमर दलि कोहु।
स गुर बचन सुनि कुमर कुमारि, लीनौ तपु आभरण उतारि ॥४७०॥

कोऊ लाहू जीर्यौ मौ मानु, सुष दुष तिणहु सु एक समान।
पोषहि आगमु वाग्ह अंग, निसि दिनु रहहि गुरु कै संग ॥४७१॥

जिनवर वंदत तीरथ थान, संजम राषत पंच पराण।
करत विहार कम्मुं सुनि राइ, नयरि तुमारी पहुचे आइ ॥४७२॥

गुरु आदेस चले निरगंथ, भोजन निमित नगर कै पंथ।
तुव किंकर लैते वरी प्राण, गहिलाए देवी कै थाण ॥४७३॥

हम तु बैठो देख्यो राइ, जनु ससि अंबर उदो कराइ ।
तुम मतिगहु करि बूझी बात, मै सब कही भयो सुप गात ।।४७४।।

देवी सुनि तई गुरु पासि, मारिदत्त तिम पयडी भासि ।
को जाको सब जनमहि बंधु, [illegible] संबंधु ।।४७५।।

कबहु जियहि ण लाग्यो चेतु, पौ गति फिरयो अकंतर लेतु ।
मारिदत्त राजा सुपहाणु, निसुन्यो जसहर तनो पुराणु ।।४७६।।

मारिदत्त का पापों से भयभीत होना—

विसमयो राव पाप डर लयो, सिंघु सौ उतरि स वनु को गयो ।
पाइ परयो जोगी अरु राइ, देवी बहुत विमन पछिताइ ।।४७७।।

मारिदत्त न खेवर बीरु, लयौ उसास नयण भरि नीर ।
निदि अपनोपो भाखै बात, राषि राषि जय वर जगतात ।।४७८।।

नरक परत राखहि परचंड, भवगति सायर तरण तरंड ।
दै तपु मोहि रिषी गुर काल, बार बार विनयो महिपाल ।।४७९।।

दोहरा

तहि मुनि सूरि सुदत्त गुरु, जान्यो अवधि प्रमाण ।
नर वै अभय कुमार लहु, संबोहिउ तहि थान ।।४८०।।

सुदत्त मुनि का देवी के मन्दिर में आगमन—

निसुनहु कथा अपूरब आण, मुनि आयो देवी को थान ।
मुद्रा पेषि अचंभ्यो राउ, आसनु छांडि करयो पणाबाउ ।।४८१।।

पाइनु धर्मरुचि परयो, चमसि कालु जोगी गुर करयो ।
देवी तनो मदु गलि गयो, अपनो थानु सुहाउटयो ।।४८२।।

मुंड रुंड सब कीनो दूरि, कीनो गेहु कनको पूरि ।
अंगनु चंदन राख्यो लीपि, चोया कु कुह पूरी सीपि ।।४८३।।

बहुत कुसुम तरु चंदन वार, भवर वास गुंजरहि अपार ।
फेरि रूपु तन अति सुन्दरि, रोहिणि अनकु सुगंध ते परि ।।४८४।।

जीव जुगल सब दे नै मेलि, मंगलु घोसिउ माडे केलि ।
मारिदत्त पभणै गुरु राषि, मो सहु देव भवंत भासि ।।४८५।।

पभनहु स्वामि भव आपनी, गोवरधन अरु योगी तनी ।
राउ जसोधु चन्द्रमति राणि, देवी की भव कहहु वषाणि ।।४८६।।

पूर्व भवों के बारे में प्रश्न—

कुसुमावलि मढ जस में राउ, मेरी अरु जिम जननी ताउ ।
अरु जिम महिष तुरंग मुहयौ, अमिय महादे कुवज कुरचौ ॥४८७॥
सरमचको काको अवतरयो, भाखि सुदत्त चोज रस भरयो ।
मारिदत्त मुनि भासै सूरि, संसौ हरमि चित्त को दूरि ॥४८८॥

सुदत्त मुनि द्वारा वर्णन—

गंधर्बु देसु अरु पुरु गंध्रबु, पेषत हरै अमर को गर्बु ।
तहि वैध्रबु राउ परचंडु, एक छत्र भुंजै महिषंड ॥४८९॥
विभ्रमसिरी भामिनि गुण रेह, रामचंद्र घरि सीता जेह ।
गंधर्व सेनु पुत्र तिन जन्यौ, अति सुरुपु जनु सुरपति जन्यौ ॥४९०॥
गंधर्वा पुत्री मृग नयनि अति मुख जोति चंदु जनु रयणि ।
मंत्री रामु नामु प्रभु तनौ, राज मंत्र जो जानै घनौ ॥४९१॥
अचला तासु कणक सम देह, बालक हरिण नयण ससि लेह ।
नंदन देवि पयंड सरीर, नामु जितारि भोउ वर वीर ॥४९२॥
गंध्रर्वा सुव राजा तनी, सो जितारि व्याही तन बनी ।
सो देवर रमि चूरी पाप, दुसह जाणि मयन की ताप ॥४९३॥
गंधर्बु राजा पारधि गयौ, तहि बैराग भाव मन भयौ ।
सुव गंध्रर्वहि दीनौ राजु, आपुनु कियौ परम तप काजु ॥४९४॥
अंतकाल करि सुव पर मोह, सो मरिण रमै भयौ जसोह ।
तहि जिन सम पेषि रतनारि, करि बैरागु महा पुषारि ॥४९५॥
जिनवर धर्म्म पालि गुन षाणि, राउ जसोधर उपन्यौ आनि ।
गंधर्ब अहिणि तनी सुनि वात, तपु करि सही परीषह गात ॥४९६॥
करि सन्यासु काटि भव पापु, मारिदत्तु सो जाणहि आपु ।
गंधर्वा जिनि देवरु रयौ, समभी अन्त काल तपु लयौ ॥४९७॥
सो मारि अमिय महादे भई, रमि कूबरौ नरक सो गई ।
भीवरमी भायर की तिरी, कुल कलंकु कीनौ मति फिरी ॥४९८॥
सीलु मुंजि अगजसु संग्रह्यौ, पापी जन्मु कुविज को लह्यौ ।
मंत्री रामु रवन ससि लेह, तपु करि संजम सो सी देह ॥४९९॥
पयरु पयरि दोऊ अवतरे, बर्णौ कहा महासुव भरे ।
जिनवरु पुजि धर्म्मु पहिचाणि, सो अमै कुसुमावलि जाणि ॥५००॥

जौ ही सवति चंद्रमति तनी, मरिवि तुरंगु जाय उपनी।
सो सखिरै महिषनो हुयौ, सो मिथला पुरि वाछौ भयौ ।।५०१।।

अंत काल भाषर सुनि काण, तिनि भारतै तजि तिजे पराण।
रूपि निखनि तुमारी राइ, ताकै उदर अवतरयौ प्राइ ।।५०२।।

राज धुरंधर घरिहै सोइ, पुण्ण पुरिषु तेरै घर होइ।
तेरौ पितर कर्म्म कौ लयौ, चंडमारि देवी सो भयौ ।।५०३।।

सील निहाण तुमारी माइ, सो मरि जोगरै उपन्यौ आइ।
जसवंधुरु अवनी कौ राउ, राइ जसोघ तनौ जो ताउ ।।५०४।।

सो सुहझाणा चलौ तजि मोहु, जिनवर धर्म्म तनौ लहि बोहु।
देसु कलिंग राउ भगदंतु, कुंद लता भामिनि कौ कंतु ।।५०५।।

धण कण कंचण दीसै भर्यौ, जसवंधुरु तनरुहु अवतर्यौ।
नामु सुदत्त राउ गुण गेहु, सो मुनिवर हौ भायौ एहु ।।५०६।।

राय जसोध तनौ सुपहाण, मंत्री राज गेह परधाणु।
प्रायु अंत सुमिरि परमेठि, सा जानै गोवरधन सेठि ।।५०७।।

मारिदत्त जौ बूझी मोहि, सब समुझई पयासो तोहि।
अवधि पयण जार्ण्यौ परमातु, मैं भास्यौ भव भवण कहाणु ।।५०८।।

तुव पुर पंच वार फिरि गयौ, तौ सो राइण दरसनु भयौ।
काल लवधि जब प्रावै राइ, तब ही सुभ गति जीउ लहाइ ।।५०९।।

मारिदत्त द्वारा दीक्षा—

मारिदत्त तपु लयौ विचारि, पंच मूठि सिर केस उपारि।
जोगी सु गुर तनै पग परयौ, सब पाखंड भाउ परिहरयौ ।।५१०।।
भनै दिगंबर मो तपु देहु, दया गेह मत विरमु करेहु।
चवै सुगुरु मुनि भैरौनंद, कौलागम रयणायर चंद ।।५११।।

सुदत्त का भैरवानन्द को उपदेश—

दिन बाईस तुमारी प्रायु, वेगि धर्म्म कौ करहि उपाउ।
तब जोगी मन लाग्यौ चेतु, चित्त यौ प्रायु जीव कौ हेतु ।।५१२।।
परिहरि खानु पानु सबु भोगु, लै सन्यासु दियौ दिढ जोगु।
बारह अनुपेया मन भाइ, सुग्रं तृतीय सुर उपन्यौ जाइ ।।५१३।।
ठोडी भई देखि कर जोरि, सामि नरक मो जात बहोरि।
मो वीराधि वीर तपु देहु, भव सायर बूडत गहि लेहु ।।५१४।।

कुसुमबान मानिति मन चूरु, भासै सुयण सरोरुह सूरु।
तो कहु तपुण जोगु सुर णारि, समिकत रयणु लेहु दिढु धारि ॥५१५॥

स्वयं देवी द्वारा अहिंसा धर्म पालन करना—

जीव घात को छाडहि भाव, जे पूजहि तिन वरजि रहाउ।
तजहि आपनी पहिली चालि, जिनवर तनी धम्मुं प्रतिपालि ॥५१६॥
जीव घातु तब देवी छाडि, आपुनु फिरी नगर महु डाडि।
जो मेरै मंडफ बलि देइ, ताके घर किनु देवी लेइ ॥५१७॥
नि सुनहु सवै नगर नर णारि, मो पूजत कर देसि नजारि।
जो काहू है देवी बलि लेहु, कुसरणि करिहौ ताकै मेहु ॥५१८॥
मेरै नाम बजावै तूरु, ताके पेट उठै दिन सूरु।
समिकत रयनु देवि ले रही, परिहरि कुगति सुगति सुरि गई ॥५१९॥
लयौ महाव्रतु अभय कुमार, भए बहुत नर समिकत धार।
पढम सुग्ग भगिनी अरु बीरु, भए अमर सो सुद्ध सरीर ॥५२०॥
मारिदत्त जस मैं अरु सेठि, ध्याइ ध्याइनु मन धरि परमेठि।
करि तपु दुद्धर उपनौ देव, सुकिल लेस सुर हुए गय लेव ॥५२१॥
सूरि सुदत्तु नाम सुपहाणु, चढि संमेदि सिहिरि दै ध्यानु।
निर्दलि कर्म्म छीनि भयगति, सप्तम सुग्ग भयौ सुर पति ॥५२२॥
अनुक्रमेण पावहि सिव ठानु, सुष समूह को कहण समानु।
जसहर चरितु वणि सबु कह्यौ, दया धम्मुं कुणि सुन नर सह्यौ ॥५२३॥
मंगलु करौ जिनेसरु बीरु, निसुनत निर्म्मल होइ सरीरु।
निसुनहु नामु गामु सुभ थानु, जिहि निवसत मैं ठयौ पुराणु ॥५२४॥

ग्रंथ प्रशस्ति—

गंग जमुन बिच अंतर वेलि, सुष समूह सुर मानहि केलि।
नयरि कैलई जनु सुर पुरी, निवसै धनी छतीसौ कुरी ॥५२५॥
अभयचंदु तह राउ निसंकु, जनुकुं सुषोडस कला मयंकु।
परजा दुषी न दीसै कोइ, घर घर बीध बधाऊ होइ ॥५२६॥
श्रावग बहुत बसहि जहि गाम, जनु आसि को दीनौ सियराम।
पोमावे पुर वर सुष सील, सुर समान घर मानहि कील ॥५२७॥
सा कन्हर सुतु भारग साहु, जिनि चतुष रंचि लियो जसलाहु।
जस रानो पटनु सुभ ठोरु, गौढ महापुरु दूजौ औरु ॥५२८॥
अनगरु अंतपुरु अरु सोहारु, ब्यारघो गाव बसावन हारु।
जासु नामु पडुवा सुरि तान, राज काज जान्यौ सुरिताण ॥५२९॥

तासु नारि देवलदे नाम, जिम ससि हर रोहिनि रति काम ।
सोलु महा तहि लीनो पोषि, नंदन तीनि भवतरे कोषि ।।५३०।।
मेघु मेवुपर सुजस रासि, जनु कुसु सूर ससि सुकु प्रकासि ।
जेठौ थेघु साहू सुपहाणु, जासु नाम मैं ठयौ पुराणु ।।५३१।।
पुत्र हेतु जानै उपगारु, जिनवर जगित करावण हारु ।
बहुत गोठि लै चाल्यौ साथ, करी जात सिरी पारस नाथ ।।५३२।।
घरचि बहुतु धनु राव न थान, धर प्रायौ दियौ भोयण दाण ।
ताको पुत्र रत्नु अवतर्यौ, रयनायरु गुण दीसै भर्यौ ।।५३३।।
भाव भगति करि दीजै दानु कीजै भवन गुणी को मानु ।
जो कुटंबु वरणौ बिस्तरी, वाढै कथा अवर दूसरी ।।५३४।।
राम सुतनु कवि गारवदासु, सरसुति भई प्रसन्नी जासु ।
बसत फफोतू पुर सुभ ठौर, श्रावग बहुत गुणी जहि भौर ।।५३५।।

रचना काल—

वसुविह्न पूजिनि नेस्वर एहानु, लै प्रभारु दिन सुनहि पुरानु ।
संवतु पंद्रहसै इकप्रसी, भादौ सुकिल श्रवण द्वादसी ।।५३६।।
सुर गुरुवारु करणु तिथि भली, पूरी कथा भई निरमली ।
जसहर कथा कही सब भासि, सिव लै भाव परम गुरपासि ।।५३७।।
वादिराज भासी गुर सूरि, तासु छाहु पभनी मरि पूरि ।
सयलु संघु नंदौ सुष पूरु, जब लगि गंग जलधि ससि सूरु ।।५३८।।
मेघ माल वरसैं प्रसरार, बोध बधाए मंगलचार ।
निसुनिवि व सम लला यहू थोरि, हीनु अधिक सो लीजहु जोरि ।।५३९।।
पढै गुणी लिखि देई लिषाइ, अरू सुरिष सो कहौ सिषाइ ।
ता गुण वर्णि बहुतु कवि कहै, पुत्र जनमु सुष संपति लहै ।।५४०।।

इति जसोधर चौपई समाप्तः ।। संवत् १६३० मागसर सुदि ११ वार दीतवार ।।

□□□

५

कविवर ठक्कुरसी

भक्ति कालीन कवियों में कविवर ठक्कुरसी का नाम उल्लेखनीय है। उनकी पञ्चेन्द्रिय वेलि एवं कृपण छन्द बहु चर्चित कृतियां रही हैं। इनका परिचय प्रायः सभी विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में देने का प्रयास किया है। लेकिन फिर भी जो स्थान इन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में मिलना चाहिए था वह अभी तक नहीं मिल सका है। इसके कई कारण हो सकते हैं। सर्वप्रथम पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने "जैन हिन्दी साहित्य के इतिहास" में इनकी एक कृति कृपण चरित्र का परिचय दिया था। इसके पश्चात् डा० कामता प्रसाद जैन ने "हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" नामक पुस्तक में कवि की कृपण चरित्र के अतिरिक्त पञ्चेन्द्रिय वेलि का भी परिचय उपलब्ध कराया था।

सन् १९४७ से ही राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियों का कार्य प्रारम्भ होने से गुटकों से अन्य कवियों के साथ-साथ ठक्कुरसी की रचनाओं की भी उपलब्धि होने लगी और प्रथम भाग से लेकर पञ्चम भाग तक इनकी कृतियों का नामोल्लेख होता रहा इससे विद्वानों को कवि की रचनाओं का नामोल्लेख ही नहीं किन्तु परिचय भी प्राप्त होता रहा। पं० परमानन्द जी शास्त्री देहली का पहिले अनेकान्त में और फिर "तीर्थंकर महावीर स्मृति ग्रन्थ" में कवि पर एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें उसकी ७ रचनाओं का विस्तृत परिचय भी दिया गया है। इससे कवि की ओर विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से जाने लगा। इसी तरह और भी जैन विद्वान कवि के सम्बन्ध में लिखते रहे हैं। इतिहास में स्थान देने वालों में डा० प्रेमसागर जैन का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने 'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि' में कवि के सम्बन्ध में सामान्य रूप से मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।

जैन विद्वानों के अतिरिक्त जैनेतर विद्वानों में डा० शिवप्रसाद सिंह का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने "सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य" में कवि की तीन

रचनाओं का परिचय देते हुए कवि की इन कृतियों को राजस्थानी एवं ब्रज भाषा से प्रभावित कृतियां बतलायी।

लेकिन इतना होने पर भी कवि को जो स्थान एवं सम्मान मिलना चाहिए था वह उसे प्राप्त नहीं हो सका। इसका प्रमुख कारण भी वही है जो अन्य कवियों के सम्बन्ध में कहा जाता है।

ठक्कुरसी राजस्थान के ढुंढाहड क्षेत्र के कवि थे। इन्होंने स्वयं ने अपनी कृति "मेघमाला कहा" में ढुंढाहड शब्द का उल्लेख किया है और चम्पावती (चाटसू) को उस प्रदेश का नगर लिखा है।[1] कवि चम्पावती के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम घेल्ह था। ये स्वयं भी कवि थे जिसका उल्लेख कवि ने अपनी कितनी ही रचनाओं में किया है। घेल्ह कवि की अभी तक की रचनाएँ "बुद्धि प्रकाश एवं विशाल कीर्ति गीत" उपलब्ध हो सकी हैं। दोनों ही रचनाएँ लघु रचनाएँ हैं। ठक्कुरसी को कवित्व वंश परम्परा से प्राप्त था। ये जाति से खण्डेलवाल दि० जैन थे। इनका गोत्र पहाड़िया था। स्वयं कवि ने अपने आपको पहाडिया वंश शिरोमणि लिखा है।[2] कवि की माता भी बड़ी धर्मात्मा थी। इसलिए पूरे घर के संस्कार धार्मिक विचारधारा वाले थे।

ठक्कुरसी संभवत: व्यापार करते थे तथा राज्य सेवा में वे नहीं थे। यद्यपि कवि ने चम्पावती के शासक 'रामचन्द्र' के नाम का उल्लेख किया है लेकिन उससे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वे राज्य में किसी ऊँचे पद पर काम करते हों। कवि का जन्म कब हुआ, उसकी बाल्यावस्था एवं युवावस्था कैसे बीती, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है और न कवि ने स्वयं ने ही अपने जीवन के बारे में कुछ लिखा है। कवि का वैवाहिक जीवन कैसे रहा तथा कितनी सन्तानों का उन्हें सुख मिला ये सब प्रश्न भी अभी तक अनुत्तर ही हैं।

लेकिन इतना अवश्य है कि इनके जमाने में चम्पावती पूर्णत: धन्य-धान्य पूर्ण थी। महाराजा रामचन्द्र का शासन था। तक्षकगढ (टोडारायसिंह) के शासक

---

१. विण्णेक ढुंढाहड देस मज्झि, णयरी चंपावइ अरिऊ सत्थि।
तहि अत्थि पास जिणवर णिकेउ, जो भव कम्पिणहि तारण हुसेउ॥

मेघमाला कहा

२. पयड पहाडिहि वंस सिरोमणि, घेल्हा गुरु तसु तियवर धरमिणि।
ताहु तणइ कवि ठाकुरि सुन्दरि, यह कह किय संभव जिण मन्दरि॥

ही चम्पावती के शासक थे। महाराज रामचन्द्र के शासन काल में लिखी हुई पचासों पाण्डुलिपियां राजस्थान के विभिन्न जैन ग्रन्थागारों में संग्रहीत हैं। ठक्कुरसी सम्पन्न थे। पंडित माल्हा अजमेरा कवि के समय में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त श्रेष्ठी थे। कवि में और माल्हा अथवा मल्लिदास में विशेष मैत्री थी और कितनी ही रचनाओं को लिखने में मल्लिदास का विशेष आग्रह रहा था। लेकिन इसी चम्पावती में कुछ ऐसे श्रावक भी थे जो अत्यधिक कृपण थे और किञ्चित् भी पैसा धर्म कार्य में खर्च नहीं करते थे। कवि को इसीलिए 'कृपण छन्द' लिखना पड़ा जिसमें एक कृपण की एवं उसके कृपण मित्र की कहानी दी हुई है।

तत्कालीन समाज—कवि के समय के समाज को हम सम्पत्ति-शाली एवं ऐश्वर्य वाला समाज कह सकते हैं। कविवर ठक्कुरसी ने 'पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी' में ढूंढाहड प्रदेश एवं विशेषतः चम्पावती नगरी का जो वर्णन लिखा है उसके अनुसार चम्पावती व्यापार का केन्द्र थी तथा उसमें कोई भी व्यक्ति दुःखी नहीं दिखाई देता था। जैन समाज तो सम्पन्न समाज था। वहां समय-समय पर महोत्सव होते रहते थे। उस नगर में रहने वाले सभी भाग्यशाली होते थे ऐसी लोगों की धारणा थी।[1] कृपण छन्द में भी एक स्थान पर वर्णन आया है कि जब श्रावक गण यात्रा से लौटते थे तो वापिस आने की खुशी में बड़े लम्बे-लम्बे भोज होते थे। लोगों का खान-पान रहन-सहन अच्छा था। पान खाने की लोगों में रुचि थी। लेकिन सम्पन्न समाज होने पर भी लोग व्यसनों में फंसे रहते थे। यही कारण है कि कवि को सप्त व्यसन पर दो कृतियां लिखनी पड़ी थी।

साधु गण—चम्पावती उस समय भट्टारकों का केन्द्र था और वहीं उनकी गादी था। प्रभाचन्द्र उस समय वहां भट्टारक थे। कवि ने उन्हें मुनि लिखा है और जब वे प्रवचन करते थे तो ऐसा लगता था कि मानों स्वयं गौतम गणधर ही प्रवचन कर रहे हों।[2] इन्हीं के शिष्य थे मुनि धर्मचन्द्र जो बाद में मंडलाचार्य कहलाने लगे थे। कवि ठक्कुरसी ने धर्मचन्द मुनि के उपदेश से 'व्यसन प्रबन्ध' की लघु कृति की रचना की थी।[3]

---

१. जहा न को जगु वसइ दुखिउ. जैन महोछा महमघणा।
जहि दिनि दिनि दीसन्ति, तहा वसहि जे घण्णु णर इउ जण दिवस कहंति।

२ तसु मज्झि पहासत्ति वर मुणीसु, सह संठिउ णं गोयमु मुणीसु।
मेघमाला कहा

३. मुणि धर्मचन्द्र उपदेसु लह्यौ, कवि ठाकुरि विसन प्रबंध कह्यौ।
व्यसन प्रबन्ध

खण्डेलवाल समाज—कवि के समय में चम्पावती में खण्डेलवाल दि० जैन समाज का अच्छा थोक था। अजमेरा, बाकलीवाल, पहाड़िया, साह आदि गोत्रों के श्रावक परिवार प्रमुख रूप में थे। सभी श्रावक गण सम्पन्न थे। भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति विशेष श्रद्धा एवं भक्ति का केन्द्र थी। मूर्ति अतिशय युक्त थी। बादशाह इब्राहीम लोदी के आक्रमण का भी उसी की भक्ति एवं स्तवन ने रक्षा की थी। स्वयं कवि भी भगवान पार्श्वनाथ के पूरे भक्त थे इसलिए जब कभी अवसर मिला कवि पार्श्वनाथ के गीत गाने लगते थे।

काव्य रचना

कवि की अभी तक कोई बड़ी कृति देखने में नहीं आयी। मेघमाल कहा में अवश्य २१५ [illegible] छन्द तथा ११२ अन्य छन्द हैं। कवि की ७ रचनाओं का परिचय पं० परमानन्द जी ने दिया था लेकिन शास्त्र भण्डारों की ओर खोज करने पर अब तक कवि की १५ रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१. पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी	रचना संवत् १५७८
२. कृपण छन्द	,, ,, १५८०
३. मेघमाला कहा	,, ,,
४. पञ्चेन्द्रिय वेलि	,, ,, १५८५
५. सीमंधर स्तवन	
६. नेमिराजमति वेलि	
७. चिन्तामणि जयमाल	
८. जैन चउवीसी	
९. शील गीत	
१०. पार्श्वनाथ स्तवन	
११. सप्त व्यसन षट पद	
१२. व्यसन प्रबन्ध	
१३. पार्श्वनाथ स्तवन	
१४ ऋषभनाथ गीत	
१५. कवित्त	

उक्त १५ रचनाओं में प्रथम ४ रचनाओं में रचना संवत् का उल्लेख किया गया है शेष सब रचना काल से शून्य है। उक्त रचनाओं के आधार पर कवि का

साहित्यिक जीवन संवत् १५७५ से प्रारम्भ होकर संवत् १५९० तक चलता है। इन १५ वर्षों में कवि साहित्य निर्माण में लगे रहे और अपने पाठकों को नयी-नयी कृतियों से रसास्वादन कराते रहे। कवि के पूरे जीवन के सम्बन्ध में निश्चित तो कुछ नहीं कहा जा सकता है लेकिन ७० वर्ष की आयु भी यदि मान ली जावे तो कवि का समय संवत् १५४० से १५९० तक का माना जा सकता है।

पञ्चेन्द्रिय वेलि में इन्होंने अपने आपको जति शब्द से सम्बोधित किया है इसका अर्थ यह है कि इन्होंने अपने अन्तिम वर्षों में साधु जीवन अपना लिया था। तथा भट्टारकों के संघ में ही अपना जीवन व्यतीत करने लगे थे।

उक्त १५ रचनाओं में "मेघमाला कहा" के अतिरिक्त सभी लघु रचनायें हैं इसलिए मेरी तो ऐसी धारणा है कि कवि की अभी और भी बड़ी रचनायें मिलनी चाहिए क्योंकि बड़े कवि को छोटी-छोटी रचनाओं से ही सन्तोष नहीं होता उसे तो अपनी काव्य प्रतिभा बड़ी रचना निबद्ध करने में ही दिखाने का अवसर मिलता है। 'मेघमाला कहा' एक मात्र अपभ्रंश रचना है शेष सब रचनायें राजस्थानी भाषा की रचनायें कही जा सकती हैं। जिन पर ब्रज भाषा का भी प्रभाव दिखाई देता है।

उक्त रचनाओं का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१. सीमंधर स्तवन

इसमें विदेह क्षेत्र में शाश्वत विराजमान सीमंधर स्वामी का ३ छप्पय छन्दों में वर्णन किया गया है। रचना के अन्त में 'लिखितं ठाकुरसी' इस प्रकार उल्लेख किया हुआ है। भाषा एवं भावों की दृष्टि से स्तवन अच्छी कृति है। इसकी एक प्रति शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधान जयपुर के ८१ संख्या वाले गुटके में ४८-४९ पृष्ठ पर अंकित है।

२. नेमिराजमति वेलि

जैन कवियों ने वेलि संज्ञक रचनायें लिखने में खूब रुचि ली है। हमारे स्वयं कवि ने एक साथ दो वेलियां लिखी हैं जिनमें राजमति वेलि प्रथम वेलि है। इसका दूसरा नाम नेमीश्वर वेलि भी है। इसमें नेमिनाथ और राजुल के विवाह प्रसंग से लेकर वैराग्य धारण करने एवं अन्त में निर्वाण प्राप्त करने तक की संक्षिप्त कथा दी हुई है।

बसन्त ऋतु आती है और सब यादव वन विहार के लिए चले जाते हैं। इस अवसर पर नेमिनाथ के अपूर्व पौरुष का सब को पता चल जाता है और उसके

पीछे विवाह को लेकर अन्य घटनाएँ घटती हैं। नेमिकुमार जल क्रीड़ा करके सरोवर से निकलते हैं और गीले कपड़े निचोड़ने के लिए रुक्मिणी से प्रार्थना करते हैं। लेकिन रुक्मिणी तो उनके बड़े भाई नारायण श्रीकृष्ण की पत्नी थी इसलिए वह कैसे कपड़े निचोड़ती। उसने इतना कह दिया कि जो सारंग धनुष चढ़ा देगा, पाञ्चजन्य शंख पूर देगा तथा नाग शैय्या पर चढ़ जावेगा, उसी के रुक्मिणी कपड़े धो सकती है। रुक्मिणी का इतना कहना था कि नेमिकुमार चल दिये अपना पौरुष दिखलाने आयुध शाला में। वहां जाकर पल भर में उन्होंने तीनों ही कार्य कर डाले। शंख पूरते ही यादवों में खलबली मच गई और स्वयं नारायण वहां आ पहुँचे। नेमिनाथ का बल एवं पौरुष देखकर सभी आश्चर्य चकित हो गये। अन्त में नेमिनाथ को वैराग्य दिलाने की युक्ति निकाली गयी। विवाह का प्रस्ताव रखा गया। बारात चढी। तोरण द्वार के पास ही अनेक पशुओं को दिखलाया गया। नेमिनाथ के पूछने पर जब उन्हें मालूम चला कि ये सब बरातियों के लिए लाये गये हैं तो उन्हें संसार से विरक्ति हो गयी और तत्काल रथ से उतर कर कंकण तोड़ कर गिरनार पर जा चढे और मुनि दीक्षा धारण कर ली। राजुल के विलाप का क्या कहना। उसने नेमिनाथ को समझाया, प्रार्थना की, रोना रोया, आंसू बरसाये लेकिन सब व्यर्थ गया। अन्त में राजुल ने भी जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

प्रस्तुत कृति पद्धडिया छन्द के आधार पर लिखी गयी है। प्रारम्भ में २ दोहे हैं और फिर कडवक छन्द हैं। इस प्रकार पूरी वेलि में १० दोहे तथा ५ पद्धडिया छन्द हैं। सभी वर्णन रोचक एवं प्रभावोत्पादक हैं। भाषा ब्रज है जिस पर राजस्थानी का प्रभाव है। जब राजुल के समक्ष दूसरे राजकुमार के साथ विवाह करने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया तो राजुल ने दृढ़तापूर्वक निम्न शब्दों में विरोध किया—

> जंपइ रजमतीय अणेरा, जिण विणु वर बंधव मेरा ॥११॥
> कै वरउ नेमिवर भारी, नहि तौ तपु लेउ कुमारी।
> चढि गैवरि को खरि वैसे, तजि सरगि नरगि को पैसैं ॥१२॥
> तजि तीणि भवन को राई, किम अवरनु वरौ बस माई ॥

नेमिकुमार की अपूर्व सुन्दरता, कमनीयता एवं रूप पर सभी मुग्ध थे। जब वे बसन्त क्रीड़ा के लिए जाने लगे तो उस समय की सुन्दरता का कवि के शब्दों में वर्णन देखिये—

> कवि कहइ सुनिय घणु घणु, जसु परणाद एह मदरणु।
> इणि परितिय अणेवक पयारा, बहु करिहिति काम विकारा।
> जिणु तब इण दिठि दे बोलें, नाउ मेह पवन मैं डोलै ॥५॥

कवि ने रचना के अन्त में अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

कवि घेल्ह सुतनु ठाकुरसी, किये नेमि सु जसि मति सरसी ।
नर नारि जको नित गावै, जो चितै सो फलु पावै ॥२०॥

नेमिराजमति वेलि की पाण्डुलिपियां राजस्थान के कितने ही भण्डारों में उपलब्ध होती हैं । जिनमें जयपुर, अजमेर के ग्रन्थागार भी हैं ।

६. पञ्चेन्द्रिय वेलि

पञ्चेन्द्रिय वेलि कवि की बहुत ही चर्चित कृति है । इसमें पांच इन्द्रियों की वासना एवं उनसे होने वाली विकृतियों पर अच्छा प्रकाश डाला है । और अन्त में इन्द्रियों पर विजय पाने की कामना की गयी है । जिसने इन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की वह अमर हो गया, निर्वाण पथ का पथिक बन गया लेकिन जो जीव इन्हीं इन्द्रियों की पूर्ति में लगा रहा उसका जीवन ही निकम्मा एवं निन्दनीय बन गया । इन्द्रियां पांच होती हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एवं श्रोत्र । और इन पांच इन्द्रियों से पांच काम अर्थात् अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं और वे हैं, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द । इन्द्रियों के इन पांच काम गुणों के वशीभूत होकर मन सांसारिक भोगों में उलझ जाता है और अपने सच्चे स्वरूप को भूला बैठता है । इसलिए सच्चा वीर वही है जिसने इन काम गुणों पर विजय प्राप्त की हो । कबीर ने भी सूरमा की यही परिभाषा की है—

कबीर सोइ सूरमा, मन सों मांडे जूझ ।
पांचों इन्द्री पकडि कै, दूर करै सब दूझ ॥

कबीर ने फिर कहा कि जो मन रूपी मृग को नहीं मार सका वह जीवन में अभ्युदय एवं श्रेयस का भागी कदापि नहीं हो सकता

काया कसो कमान ज्यों, पांच तत्व कर बान ।
मारो तो मन मिट गया, नहीं तो मिथ्या जान ॥

पञ्चेन्द्रिय वेलि कवि की संवतोल्लेख वाली अन्तिम कृति है अर्थात् इसके पश्चात् उसकी कोई अन्य कृति नहीं मिलती जिसमें उसने रचना संवत दिया हो । इसलिए प्रस्तुत कृति उसके परिपक्व जीवन की अनुभूति का निष्कर्ष रूप है । कवि द्वारा यह संवत् १५८५ कातिक सुक्ला १३ को समाप्त की गयी थी ।[1]

---

१. संवत पन्द्रहसैर पिच्यासै तेरसि सुदी कातिग मासै ।
जिहि मनु इंद्री वसि कीया, तिहि हर परपत जग जीया ॥

ठक्कुरसी ने वेलि के अन्त में अपने और अपने पिता के नाम का भी उल्लेख किया है तथा अपने आपको 'गुणधाम' विशेषण से सम्बोधित किया है। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि ठक्कुरसी की कीर्ति उस समय आकाश को छू रही थी।[1]

विषय प्रतिपादन

कवि ने एक-एक इन्द्रिय का स्वरूप उदाहरण देकर समझाया है। सबसे पहले वह स्पर्शन इन्द्रिय के लिए कहता है कि वन में स्वतन्त्र रहते हुए वृक्षों के पत्ते एवं फल खाते हुए स्पर्शन इन्द्रिय के वश में होकर ही हाथी जैसा जीव मनुष्य के वश में हो जाता है और फिर अंकुशों की मार खाता रहता है। कामातुर होकर हाथी कागज की हथिनी के पीछे सब कुछ भूल जाता है।

वन तरुवर फल खातु, फिरि पय पीवतौ सुछंद।
परसण इंद्री प्रेरियो, बहु दुख सहै गयन्द।
बहु दुख सहो गयंदो, तसु होइ गई मति मंदो।
कागज के कुंजर काजे, पड़ि खाडन सक्यो न भाजे।

कीचड़ में फंसने के पश्चात् मदोन्मत हाथी की जो दशा होती है उस पर कवि मानों आंसू बहाते हुए कहता है—

तहि सहीय घणी तिस भूखो, कवि कौन कहत स दूखो।
रखवाला वलगउ जाण्यो, वेसासि राय घरि आण्यो।
बंध्यो पगि संकुलि घाले, तिउ कियउन सक्कइ चाले।
परसण प्रेरे दुख पायो, निति अंकुस घावां घायो॥

कवि ने स्पर्शन इन्द्रिय के वशीभूत होने के कारण जिन-जिन महापुरुषों ने अपने जीवन को नष्ट कर दिया है उनके भी कुछ उदाहरण देकर इस इन्द्री की भयंकरता को समझाया है। मैथुन के वशीभूत होने पर ही कीचक को जीवन से हाथ धोना पड़ा। रावण की सारी प्रतिष्ठा एवं राजगत्व धूल धूसरित हो गया। इसलिए जिस प्राणी ने स्पर्शन इन्द्रीय पर विजय प्राप्त की है उसी ने जीवन का असली फल चखा है।

परसण रस कीचक पूरयो, जहि भीम सिला तलि चूरयो।
परसण रस रावण नामैं, मारियउ लंकेसुर रामैं।

---

१. कवि घेल्ह सुतनु गुणधामु, जगि प्रगट ठकुरसी नामु।

परसण रस संकट राच्यौ, तिय आगै नट ज्यौ नाच्यौ।
इहि परसण रस जे धूता, वे नर सुर घणा विगूता। १॥

दूसरी इन्द्रिय रसना है। मानव सुस्वादु बन जाता है और अपना हिताहित भुला बैठता है। अपनी मृत्यु का कारण वह स्वयं बन जाता है। जल में स्वच्छन्द विचरने वाली मछली भी रसनेन्द्रिय के कारण ही जाल में फंस कर अपने प्राण गंवा बैठती है—

केलि करंतो जनम जलि, गाल्यौ लोभ दिखालि।
मीन मुनिष संसारि सरि, काढयौ धीवर कालि।
सो काढयो धीवरि काले, तिणि गाल्यो लोभ दिखाले।
मछु नीर गहीर पइट्ठो, दिठि जाइ नहीं जहि दीठो।

कवि ने मानव रूपी मछली के रूपक द्वारा रसनेन्द्रिय के दुष्प्रभाव की विशद व्याख्या की है। उसके शब्दों में जन्म को जल, मनुष्य को मछली, संसार को सरिता और काल को धीवर के रूप में देखने में कितनी यथार्थता है। इसके पश्चात् कवि ने रसनेन्द्रिय के प्रभाव की जो सत्य तस्वीर प्रस्तुत की है वह कितनी सुन्दर है—

इह रसणा रस कउ माल्यौ, थलि आइ मुवै दुख साल्यो।
इह रसना रस कै तांई, नर मुसै बाप गुरु भाई।
घर फोडै पाडै वाटां, निति करै कपट घण घाटां।
मुख झूठ सांच सहिहि बोलै, घरि छोड दिसावर डोलै।

कवि के कथन में अनुभूति है और जीवन की जागती तस्वीर। रात दिन सुनते, देखते, पढ़ते है "इह रसना रस के तांई, नर मुसै बाप गुरु भाई।" इस रसना इन्द्रिय के चक्कर में पड़कर इस मानव को झूठ कपट करना पड़ता है। अपने लहलहाते घर को उजाड़ना पड़ता है। झूठ का सहारा लेना पडता है तथा घरबार को छोड़ देश देशान्तर भटकना पड़ता है। यही नहीं छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, सब की मर्यादाओं को वह समाप्त कर देता है। यह सब रसना इन्द्रिय का चक्कर है। कवि के शब्दों में कितनी सच्ची अनुभूति है। अन्त में कवि ने यही अभिलाषा प्रकट की है कि यदि मानव जीवन को सफल बनाना है तो फिर रसना इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है—

रसना रस विरणै अकारौ, वसि होइ न औगण गारौ।
जिहि इहुर विषै वसि कीयौ, तिहि मुनिष जनम फल लीयौ।

हिन्दी के अन्य कवियों ने रसना इन्द्रिय का कार्य केवल हरि भजन माना है। सूरदास ने 'सोई रसना सो हरि गुण गावै' लिख कर रसना इन्द्रिय के प्रमुख कर्त्तव्य की ओर संकेत किया है। कबीर ने अपनी पीडा यों व्यक्त की है --जी भड़िया छाला परया राम पुकारि पुकारि।

तीसरी इन्द्रिय है घ्राण। इस घ्राण इन्द्रिय के वश में होकर भी प्राणी कभी-कभी अपने प्राण गवां बैठता है। घ्राण इन्द्रिय की शक्ति बड़ी प्रबल है। चिउटी को शक्कर का ज्ञान हो जाता है तथा भौंरे कमल को खोज निकालते है हम स्वयं भी अच्छी गन्ध मिलने पर प्रसन्न चित्त होकर आनन्द का अनुभव करने लगते हैं तथा दूषित गंध मिलने पर नाक पर रुमाल लगा लेते हैं, नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं तथा वहां से भागने का प्रयास करते हैं। कवि ने भ्रमर का बहुत सुन्दर उदाहरण दिया है। जिस तरह गंध लोलुपी भ्रमर कमल पराग का रस पान करता रहता है और वह कलि में से निकलना भी भूल जाता है। बन्द कमल में भी वह रंगीन स्वप्न लेने लगता है—"रात भर खूब रस पीऊंगा, और प्रातःकाल होते ही स्वच्छ सरोवर में कमल की कलियां विकसित होंगी मैं उसमें से निकल जाऊंगा।" एक ओर वह भ्रमर सुनहरे स्वप्न ले रहा है तो दूसरी ओर एक हाथी जल पीने सरोवर में आता है और जल पीकर उस कमल को उखाड़ लेता है और पूरे कमल को ही खा जाता है। बेचारा भौंरा अपने प्राणों से हाथ धो बैठता है।

कमल पइठौ भ्रमर दिनि, घ्राण गंधि रस रूद्ध।
रैणि पडी सो संकुच्यौ, नीसरि सक्या न मूढ।।

अलि घाण गंधि रस रूधो, सो नीसर सक्यौ न मूढौ।
मनि चिंतै रयणि सवायो, रस लेस्यों अजि अघायो।
जब उगैलो रवि विमलो, सरवर विकसैलो कमलो।
नीसरि स्यौं तब इह छोडै, रस लेस्यौं आइ बहुडै।
चितवतौ ही गज आयौ, दिनकर उगवा न पायौ।
अलि पैसि सरवर पीयो, नीसरत कमल खुडि लीयो।
गहि सुंडि पाव तलि चंप्यौ, अलि मारयौ थर हर कंप्यौ।
इहु गंध विर्षं छै भारी, मनि देखहु क्यौ न विचारि।
इइ गंध विषै वसि हुवौ, अलि अहलु अखूटौ मूवो।
अलि मरण करण दिठि दीजे, तउ गंध लोभ नहि कीजै।।३।।

अन्त में कवि ने मानव को भ्रमर की मृत्यु से शिक्षा लेने को कहा है कि जो प्राणी इस संसार की गन्ध लेने में ही अपने आपको उसमें समर्पित कर देता है

उसकी भी भ्रमर के समान दशा होती है। आंखों का काम देखना है। इन नेत्रों द्वारा रूप सौंदर्य को देखा जाता है और यह मानव अपनी आंखों से रूप सौंदर्य को देखने का इतना आदि हो जाता है कि वह उसी देखने में अपना प्राण खो बैठता है। यह मानव रूप पर कितना मरता है, आंखों की चोरी करता है और दूसरों की स्त्री की ओर झांकता रहता है। कवि ने अहिल्या और तिलोत्तमा का उदाहरण देकर अपने कथन की पुष्टि की है। यही नहीं "लोयण संपट भूंठा, बाज्या नहि होइ अपूठा" कह कर चक्षु इन्द्रिय पर करारी चोट की है। यही नहीं आगे कहा है कि मना करने पर भी वह नहीं मानता है। लेकिन पांचों इन्द्रियों का स्वामी तो मन है जब तक मन वश में नहीं होता तब तक बेचारी ये इन्द्रियां भी क्या करें।[1] इसलिए इसी के आगे कवि ने कहा है कि—

लोयणे दोस को नाहीं, मन मेरे देखन जांही।

श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है शब्द, उसकी मधुरता, कोमलता और प्रियता पर प्राण निछावर करना जीव का स्वभाव है। हरिण वधिक का गीत सुनकर प्राण बालक तीर से व्यथित हो प्राण को छोड़ देता है। सर्प जैसा विषैला जन्तु संगीत की मीठी ध्वनि सुनकर बिल से निकल कर मनुष्य के अधीन हो जाता है। इसलिए कवि ने मानव को सचेत किया है कि वह हिरण की तरह मधुर नाद के वशवर्ती होकर अपने प्राणों का परित्याग न करे।

इस तरह ठक्कुरसी ने पञ्चेन्द्रिय वेलि में पांचों इन्द्रियों के विषयासक्त पांच प्रतीकों द्वारा मानव को सचेत रहने को कहा है। जो मानव इन पांचों इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है वह जल्दी ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर बैठता है।

अलि गज मीन पतंग मृग एके कहि दुख दीध।
जाइति भी भी दुख सहै, जिहि बसि पंच न किद्ध।

ठक्कुरसी कवि को अपनी कृति पर स्वाभिमान है इसलिए वह लिखता है—

करि वेलि सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष समझाया।
मन मूरिख संक उपाई, तिहि तणइ चित्ति न सुहाई।।

इस वेलि का दूसरा नाम गुण वेलि भी है।[2]

---

१. नेहु अवग्गलु तेल तनु बाती वचन सुरंग।
रूप जोति परतिय दिवै, पडहिलि पुरुष पतंग।।

२. देखिए राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग–२।

४. चिन्तामणि जयमाल

प्रस्तुत जयमाल ११ पद्यों की लघु कृति है जिसमें पार्श्वनाथ का स्तवन एवं उनकी भक्ति के प्रभाव से घटित घटनाओं का उल्लेख किया गया है। जिनेन्द्र स्वामी की भक्ति से मानव अथाह समुद्र को तैर कर पार कर सकता है, सूली फूलों की माला बन सकती है और न जाने क्या क्या विपत्तियों से वह बच सकता है। जयमाल की भाषा अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी है। कवि ने अन्त में अपना नामोल्लेख निम्न प्रकार किया है—

> इह वर जयमाल गुणह विसाला, येहु सतनु ठाकुर कहए।
> जो णरु सिरिण सिरक्कइ दिणि दिणि अनखइ सो सुहमण वंछिउ लहए।

प्रस्तुत जयमाल की प्रति जयपुर के गोधों के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के ८१ वें गुटके में पृष्ठ २० से २२ तक संग्रहीत है।

५. कृपण छन्द

कविवर ठक्कुरसी का कृपण छन्द लौकिक जीवन के आधार पर निबद्ध कृति है। छीहल कवि ने पंच सहेली गीत लिखकर जहाँ एक ओर पति वियोग एवं पति मिलन में नवयुवतियों की मनोदशा का चित्रण किया था वहीं कवि ठक्कुरसी ने कृपण छन्द लिखकर उस व्यक्ति का चित्रण किया है जो उसके संचय में ही विश्वास करता है और उसका उपयोग जीवन के अन्तिम क्षण तक नहीं करता।

कृपण छन्द का नाम कहीं कृपण चरित्र भी मिलता है। यह कवि की संवत् १५८० के पोष मास में निबद्ध रचना है। रचना एकदम सरस, रुचिकर एवं प्रसाद गुण से भरपूर है। इसमें ३५ पद्य हैं। जो षट्पद छन्द में निबद्ध है। इस कृति की एक पाण्डुलिपि जयपुर और एक भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर में संग्रहीत है। अजमेर वाली पाण्डुलिपि में तो कृति का ही नाम कृपण षट्पद दिया हुआ है। कृति की संक्षिप्त कथा निम्न प्रकार है—

एक प्रसिद्ध कृपण व्यक्ति उसी नगर में अर्थात् चम्पावती में ही रहता था और वहीं कविवर ठक्कुरसी भी रहते थे। वह जितना अधिक कृपण था उसकी धर्मपत्नी उतनी ही अधिक उदार एवं विदुषी थी।

> किवण एक परसिद्ध नयरि निवसंति निलक्षण।
> कही करम संजोग तासु घरि नारि विचक्षण।

सारे नगर के निवासी इस जोडी को देखकर आश्चर्य में भर जाते थे क्योंकि स्त्री जितनी दानी, धर्मात्मा एवं विनयी थी उसका पति उतना ही कंजूस था। न स्वयं खर्च करता था और न अपनी पत्नी को खर्च करने देता था। इसी को लेकर दोनों में कलह होता रहता था। वह कृपण न गोठ करता, न मन्दिर जाता, यदि कोई उससे उधार मांगने आता तो वह गाली से बात करता, यही नहीं अपनी बहन, भुआ एवं भाणजियों को भी अपने घर पर नहीं बुलाता था। यदि कोई घर में बिना बुलाये ही आ जाता तो मुंह छिपा कर बैठ जाता था।

घर में आंगण पर ही सो जाता। खटिया तो उसके घर पर थी ही नहीं तथा जो थी उसे भी बेच दी। घर पर छान बांध ली। जब आंधी चलती तो उसकी बड़ी दुर्दशा होती। वह सबसे पहिले उठता और दस कोस तक नंगे पांव ही घूम आता। न स्वयं खाता और न अपने परिवार वालों को खाने देता। दिन भर झूठ बोलता रहता और झूंठ लिखता, पढ़ता और झूठी कमाई करता। अपनी इस आदत के कारण वह नगर में प्रसिद्ध था। नगर का राजा भी उसकी आदतों को जानता था।

वह पान कभी नहीं खाता और न ही किसी को खिलाता था। न कभी सरस भोजन करता। न कभी नवीन कपड़े पहन कर शरीर को संवारता था। वह कभी सिर में तेल भी नहीं डालता और न मल-मल कर नहाता था। खेल तमाशे में तो कभी जाता ही नहीं था।

कदे न खाइ तंबोलु, सरसु भोजन नहीं भक्खे।
कदे न कपड़ा नवा पहिरि, काया सुख रक्खे।
कदे न सिर में तेल घालि, मल मल कर न्हावै।
कदे न चन्दन चरचै, अंग अबीरु लगावै।
पेषणो कदे देखे नहीं, श्रवणु न सुहाई गीत-रसु ।।६।।

उसकी पत्नी जब नगर की दूसरी स्त्रियों को अच्छा खाते-पीते, अच्छे वस्त्र पहिनते तथा पूजा-पाठ करते देखती तो वह अपने पति से भी वैसा ही करने को कहती। इस पर दोनों में कलह हो जाती। इस पर वह अपने भाग्य को कोसती और पूर्व जन्म में किये हुए पापों को याद करती जिसके कारण उसे ऐसा कृपण पति मिला। वह याद करती कि क्या उसने कुदेव की पूजा की, अथवा गुरु एवं साधुओं की निन्दा की, क्या झूंठ बोली या रात्रि में भोजन किया अथवा दया धर्म का पालन नहीं किया जो ऐसे कृपण पति से पाला पड़ा। जो न स्वयं खरचे और न उसे ही खरचने दे।

ज्यों देखी देहुरै त्याह की वर नारी ।
तलि पहुरचा पटकुला सव्व लोवन सिंगारी ।
एकि करावें पूज एकि ऊभी गुण गावैं ।
एक देहि तिय दाणु एक शुभ भावन भावैं ।
तिहि देखि भणौं हीयो हुयौं कवणु पापु दीयो दई ।
जहि पाप किए ही पापीणी कृपणु कंत धरि घणि हुई ।।६।।

एक दिन कृपण की पत्नी ने सुना कि गिरनार की यात्रा करने संघ जा रहा है तो उसने रात्रि में हाथ जोड़कर हँसते हुए पति से यात्रा संघ का उल्लेख किया और कहा कि लोग उसी गिरनार की यात्रा करने जा रहे हैं जहाँ नेमिनाथ ने राजुल को छोड़ दिया था और तपस्या की थी। वहाँ पर्वत चढ़ेंगे, पूजा-पाठ करेंगे तथा पशु एवं नरक गति के बंध से मुक्त होंगे। इसलिए हम दोनों को भी चलना चाहिए। इतना सुनते ही कृपण के ललाट पर सलवटें पड़ गयीं और वह बोला कि क्या तू बावली हो गई है जो धन खरचने की तेरी बुद्धि हुई है। मैंने अपना धन न चोरी से कमाया है और न मुझे पड़ा हुआ मिला है। दिन रात भूखा प्यासा मर कर उसे प्राप्त किया है। इसलिए भविष्य में उसे खरचने की कभी बात मत करना।

नारि वचन सुणि कृपणि, सीसि सलवटि घणु घल्ली ।
कि तू हुई धण बावली, कि धण थारी मति चल्ली ।
मै धणु लद्ध न पडयो, मै र धणु लियो न चोरी ।
मै धणु राजु कभाइ, आपु आणियो ना जोरी ।
दिन राति नींद विरु भूख सहि, मैंर उपायो दुख घणौ ।
खरचि ना तणौ वाहुडि, वचनु धण तू आगैं मत भणौ ।।१४।।

कृपण की पत्नी भी बड़ी विदुषी थी इसलिए उसने कहा कि नाथ, लक्ष्मी तो बिजली के समान चंचल है। जिसके पास अटूट धन एवं नवनिधि थी वह भी साथ नहीं गयी। जिन्होंने केवल उसका संचय ही किया वे तो हार गये और जिन्होंने उसको खर्च किया उनका जीवन सफल हो गया। इसलिए यह यात्रा का अवसर नहीं चूकना चाहिए और कठोर मन करके यात्रा करनी चाहिए। क्योंकि न जाने किन शुभ परिणामों से अनन्त धन मिल जावे। इसके बाद पति पत्नी में खूब वाद-विवाद छिड़ जाता है। पत्नी कहती है कि सूम का कोई नाम ही नहीं लेता जब कि राजा कर्ण, भोज एवं विक्रमादित्य के सभी नाम लेते हैं। वह फिर कहने लगी कि वह नर धन्य है जिसने अपने धन का सदुपयोग किया है। पाप की होड़ न करके पुण्य कार्यों की तो अवश्य होड़ करनी चाहिए। पुण्य कार्य में धन लगाना अच्छी

जाता है। जिसने केवल धन का संचय ही किया और उसे स्व पर उपकार में नहीं लगाया वह तो अचेतन के समान है तथा सर्प के डसे हुए के समान है।

पत्नी की बात सुनकर कृपण गुस्से में भर गया और उठ कर बाहर चला गया। बाहर जाने पर उसे उसका एक कृपण ही साथी मिल गया। साथी ने जब उसकी उदासी का कारण पूछा और कहने लगा कि क्या तुम्हारा धन राजा ने छीन लिया या घर में कोई चोर आ गया अथवा घर में कोई पाहुना आ गया या पत्नी ने सरस भोजन बनाया है। किस कारण से तुम्हारा मुख उतरा दिखता है।

तबहि कृपणु करि रोस, हंसि घर वाहिरि चलीयो।
तास एकु सामहो मंतु पूरवलो मिलियौ।
कृपणु कहै रे कृपण आजि तू दूमणा दिठो।
कि तु रावलि गह्यो केम घरि चोर पइट्ठो।
आईयउ कि को घरि पाहुणौ कीयो नर भोजन सरसि।
किणि काजि मीत रे आजिउ तु, मुख मिलाण दीठो।

कृपण ने कहा कि मित्र मुझे घर में पत्नी सताती है। यात्रा जाने के लिए धन खरचने के लिए कहती है जो मुझे अच्छी नहीं लगती। इसी कारण वह दुर्बल हो गया है और रात दिन भूख भी नहीं लगती। मेरा तो मरण आ गया। तुम्हारे सामने सब कुछ भेद की बात रख दी।

उस दूसरे कृपण मित्र ने कहा कि हे कृपण तू मन में दुख न कर। पापिनी को पीहर भेज दे जिससे तुझे कुछ सुख मिले।

कृपणु कहै रे मंत मुझ घरि नारी सतावै।
जाति चालि धन खरीचु कहै जो मोहि न भावै।
तिहु कारणि दुब्बलौ रयणि दिण भवरण ण लगाइ।
मंतु मरण आइयो गुझ अख्यो तू आगै।
ता कृपणु कहै रै कृपण सुणी मीत मरण न माहि दुखु।
पीहरि पठाइ वे पापिणी ज्यौं को दिणु तूं होइ सुख ॥२०॥

इसके पश्चात् उस कृपण ने एक आदमी को बुलाया तथा एक झूठा पत्र लिख दिया कि तेरे जेठे भाई के पुत्र हुआ है अतः उसे बुलाया है। पत्नी पति के प्रपंच को जानते हुए भी पीहर चली गयी।

कुछ महीनों पश्चात् यात्रा संघ वापिस लौट आया। इस खुशी में जगह-जगह ज्यौनारें दी गयी, महोत्सव किये गये। जगह-जगह पूजा पाठ होने लगे। विविध

दान दिये गये । बाजे बजे तथा लोगों ने खूब पैसा कमाया । कृपण ने यह सब सुना तो उसे बहुत दुःख हुआ ।

कुछ समय पश्चात् वह बीमार पड़ गया । उसका अन्त समय समझ कर उसके परिवार वालों ने उसे दान पुण्य करने के लिए बहुत समझाया लेकिन उसके कुछ भी समझ में नहीं आया । उसने कहा कि चाहे वह मरे या जीये अधीनार कभी नहीं देगा । उसका धन कौन ले सकता है । उसने बड़े यत्न से उसे कमाया है । अब वह मृत्यु के सम्मुख है इसलिए हे लक्ष्मी तू उसके साथ चल । लक्ष्मी ने इसका उत्तर निम्न प्रकार दिया—

लच्छि कहै रे कृपण झूठ हौं कदं न बोलो ।
अु को चलण दुइ देह गलत मारगी तसु चालों ।
प्रथम चलण मुझ एहु देव देहुरै ठविज्जे ।
दूजे जात पतिट्ठ दाणु चउसंघहि दिज्जै ।
ये चलण दुवं तैं भंजिया ताहि बिहूणी क्यों चलौ ।
भूख मारि जाय तू हौं रही बहुडि न सगि थारे चलौ ॥२८॥

लक्ष्मी ने कहा कि उसकी दो बातें हैं । एक तो वह देव मन्दिरों में रहती है । दूसरे यात्रा, प्रतिष्ठा, दान और चतुर्विध संघ के पोषणादि कार्य हैं उनमें तूने एक भी नहीं किया । अतः वह कृपण के साथ नहीं जा सकती ।

कुछ समय पश्चात् कृपण मर गया और मर कर नरक में गया । वहां उसे अनेक प्रकार के दुःख सहन करने पड़े । इसलिए कवि ने निम्न निष्कर्ष के साथ कृपण छन्द की समाप्ति की है—

इसो जाणि सहु कोइ, मरइण पूरिब धनु संच्यो ।
दान पुण्य उपगार दित धनु किं यै न खचौ ।
दान पुजै बहु रासो असो पौष पार्व जगि जाणौ ।
जिसउ कृपणु इकु दानु तिसउ गुणु कसु बखाण्यौ ।
कवि कहै ठकुरसी घेल्ह तणु, मैं परमत्थु बिचार्‌यौ ।
धरणियो त्यांह उपज्यौ जनमु ज्या पाच्यौ तिह हारियो ॥३५॥

प्रस्तुत पाण्डुलिपि में ३५ छन्द हैं ।

६. पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी

कवि की सर्वतोल्लेख यह प्रथम कृति है जिसकी रचना संवत १५७८ माघ शुक्ला २ के शुभ दिन चम्पावती में हुई थी।[1] उस समय देहली पर बादशाह इब्राहीम लोदी का शासन था तथा चम्पावती महाराजा रामचन्द्र के अधीन थी। सत्तावीसी एक स्तवनात्मक कृति है जिसमें चाकसू (चम्पावती) के पार्श्वनाथ के मन्दिर में विराजमान पार्श्वनाथ की ही स्तुति की गयी है। इसमें २७ पद्य हैं। रचना साधारण होते हुए भी सुन्दर एवं प्रवाह युक्त है और सोलहवीं शती के अन्तिम चरण में हिन्दी भाषा के विकास को बतलाने वाली है। सत्तावीसी स्तवन परक कृति होने पर भी इतिहास के पुट को लिये हुए है। प्रस्तुत कृति में इब्राहीम लोदी के रणथम्भोर आक्रमण का उल्लेख है तथा यह कहा गया है कि बादशाह ने अपने प्रबल सैन्य के साथ रणथम्भोर किले पर जब आक्रमण कर दिया तो उसकी सेना आस पास के क्षेत्र में भी उपद्रव मचाने लगी और वह चम्पावती तक आ पहुँची। लोग गांवों को छोड़कर भागने लगे।[2]

चम्पावती के निवासी भी भय से कांपने लगे तथा मना करने भी चारों ओर भागने लगे। लेकिन कुछ लोग नगर में ही रह गये और भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति करने लगे। ऐसे नागरिकों में पं० मल्लिदास, कविवर ठक्कुरसी आदि प्रमुख थे।[3] सभी नागरिक पार्श्वनाथ की स्तुति, पूजा-पाठ करने लगे तथा विपत्ति से बचाने के लिए प्रार्थना करने लगे। भगवान पार्श्वनाथ की कृपा से शीघ्र ही भयंकर विपत्ति टल गयी। लोगों को अभय मिला। नगर में शान्ति हो गयी। चारों ओर पार्श्वनाथ

---

१. घेल्ह नंदणु ठकुरसी नामु, जिण पाय पंकय भसलु।
तैण पास थुय किय सबी जवि, पंनरासय अट्ठत्तरइ।
माह मासि सिय पखु पुर अवि, पढहि गुणहि जे नारि नर।

२. जबहि लिद्धउ राणि संग्रामि, रणथंभुवि दुरग गढु।
जब इब्राहिमु साहि कोधिउ, बलु मौली भी कलिउ।
बोलु कोलु सबु तैण लोपिउ, जिम लग उब्भलि हाइसिउ।
मेछ मूढ़ भय खज्जि, खिणु चंपावती देस सहि गया बहइ दिसि भज्जि।

३. तैण तुहु सिउं कहहि जगनाथ, तिहुणि सिद्धि सुंदरि रयण।
इहि निमित्त कउ किसउ कारणु, भूत भविषित जाण तुहु।
तुहु समथु जगि सरण तारणु, उच्चाचंता उथबहु।
जाइ भव देसइ गांइ, जइनि देखहि पास प्रभु होइ रहहु चिरुट्ठाइं ॥२३॥

की जय बोली जाने लगी। जो लोग नगर छोड़कर चले गये थे वे अधिक दुःखी हुए और जो नगर में ही रहे वे शान्तिपूर्वक रहे।

एम जंपिय करिवि थुय पूज, मल्लिदास पंडिय पमुहु।
सइं हुया सामी उचायउ, तुच्छ मूरतिउ पनि लिलु।
हूवो जागि मरगिरि सवाउठ इणि लिखि दरसिउ मल्लिहु।
पुरि विहरी भराति जयवंतउ जगि पास तुहु, जैव करी सुख संगति ॥२४॥
तासु पर ते जिके णर भव्वनी भग्गा दिहु रह्या।
हूवा सुखी ते घरा वासै, जे भगा भंति करि।
दुख पाया अरु रड्या सांसै, अवरइ परस्या वहु इसा।

प्रभु पुरिवा समथु, भजउन जिसु पतिसाइ मनु, मो तरु निगुणु निरथु ॥२५॥

पार्श्वनाथ 'सकुन सत्तावीसी' पं० मल्लिदास के आग्रह से रची गयी थी।[1] मल्लिदास ने ठक्कुरसी से पार्श्वनाथ के मन्दिर में ही इस प्रकार के स्तवन लिखने की प्रार्थना की थी। कवि ने अपनी सर्वप्रथम अल्पज्ञता प्रकट की क्योंकि कहां भगवान पार्श्वनाथ के अनन्त गुण और कहां कवि का अल्पज्ञान। फिर भी कवि अपने मित्र के आग्रह को नहीं टाल सके और उन्होंने सत्तावीसी की रचना कर डाली। और अन्त में भी मल्लिदास से सत्तावीसी पढ़ने के लिए आग्रह किया है।

प्रस्तुत सत्तावीसी की पाण्डुलिपि दि० जैन मन्दिर पं० लूणकरण जी पांड्या के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संग्रहीत है। लेकिन गुटके में एक पत्र कम होने से ५ से १४ वें पद्य तक नहीं है। सत्तावीसी की एक प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में भी संग्रहीत है।

७. जैन चउवीसी

जैन चउवीसी का उल्लेख पं० परमानन्द जी शास्त्री ने अपने लेख में किया है। यह स्तुति परक कृति है जिसमें २४ तीर्थंकरों का स्तवन है। राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में जैन चउवीसी की कोई पाण्डुलिपि नहीं मिलती।

---

१. एक दिवसह पास जिणि गेहु मल्लिदास पंडिय कहुत।
ठकुरसीह सुणि कवि गुणभल्ल गाहा गीय कवित कहु।
लइ कियमय निसुणी समभाल।
इय श्रीपास जिणंद गुण करहि न किंतु हु भव्व।
जहि कीया थे पाविए मन वंछित सुख सव्व ॥२॥

८. मेघमाला कहा

मेघमाला कहा की एक मात्र पाण्डुलिपि भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर के एक गुटके में संग्रहीत है। इसकी उपलब्धि का श्रेय पं० परमानन्द जी शास्त्री देहली को है।

मेघमाला व्रत करने का उस समय चम्पावती में बहुत प्रचार था। ठक्कुरसी ने अपने मित्र मल्लिदास हाथुव साह नामक श्रेष्ठि के आग्रह एवं भ० प्रभाचन्द्र के उपदेश से इस कहा की अपभ्रंश में रचना की थी। उस समय चम्पावती नगरी खण्डेलवाल दि० जैन समाज का केन्द्र थी तथा अजमेरा, पहाड़िया, बाकलीवाल आदि गोत्रों के श्रावकों का प्रमुख रूप से निवास था। सभी श्रावकों में जैनाचार के प्रति आस्था थी। कवि ने उस समय के कितने ही श्रावकों के नाम गिनाये हैं जिनमें जीणा, तील्हा, पारस, नेमिदास, नाथूसि, मुल्लण आदि के नाम उल्लेखनीय है। कवि तोषा पंडित का और नाम गिनाया है।

मेघमाला व्रत भाद्रपद मास की प्रथम प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है। इस दिन उपवास एवं दिन भर पूजन करनी चाहिए। यह व्रत पांच वर्ष तक किया जाता है। इसके पश्चात् व्रत का उद्यापन करना चाहिए। यदि उद्यापन न कर सके तो इतने ही वर्ष व्रत का और पालन करना चाहिए।

मेघमाला कहा की समाप्ति सावन शुक्ला ६ मंगलवार संवत १५८० के शुभ दिन हुई थी। पूरी कहा में ११५ कडवक तथा २११ पद्य हैं। रचना अपभ्रंश भाषा में निबद्ध है।

मेघमाला कहा का आदि एवं अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग—

णय चरिम जिणिंदु वि दय कंदु वि सुव सिद्धत्थ वि सिद्धयरो।
कह कहमि रसाला वयघणमाला णर णिसुणहु करिकण्णाथिरो ।।
विण्णेक ढुंढाहड देस मज्झि, णयरी चंपावइ अरिय सज्झि।
तहि अत्थि पास जिणवरणिकेउ, जो भव कण्णिहि तारणहुसेउ।
तसु मज्झि पहासखि वर मुणीसु, सह संठिउ णं गोयमु मुणीसु।
तहु पुरउ णिविट्ठिय लोय सव्व, णिसुणंत धम्मु भणि गलिय-गव्व।
तहं मल्लिदास वणि तणु सहेण, सेवइ सुकुलु विणयं सहेण।
भो चेल्हणंद ! सुणि ठकुरसीह, कह कुणहु मज्झि तुहु लहण लीह।

तहु मेहमालवय कह पयासि, इण कियइ केण फलु लद्धु मासि।
इह कह निय चिन किण महसकित तुह करि पद्धडिया बंध मित्त।
ता विहसि वि जंपइ घेल्हणंदु, जो धम्म कहा कहणि अमंदु।
भो मित्त! पइमि बुज्झिउ हियत्थु, कह कहमि केम बुज्झउ ण सत्थु।
वायरणु न मइं गुणियउं गुणालु, कोवइम दीठउ रसु रसालु।
जो हुयइ जह तण तणउ दोसु, सो सवणि सुणियउ तिय सकोसु।
कह कहणि बुहयण हसहि मज्झु, किहकरि रंजावमि चित्त तुज्झ॥

अन्तिम भाग —

सुप्पमंयकी चिहु लेवि सुत्तयं, करी कहा एह महा पवित्तयं।
उणागलं जंपय मत्त जंपिया, खमेउ तं देवी सारही मया॥
ता माल्हा कुल-कमलु दिवायरु, अजमेराह वंसि मय सायरु।
विणयं सज्जण जणमण रंजणु, दाणि दुहियणाह दल-भंजणु॥
रूवें मयरद्ध य सम सरिसु वि, परयण पुरह मज्झि मइ पुरि सु वि।
जिण गुण णिग्गंथह पयभत्त वि, तोसण पंडिय कवियण चित्तु वि।
बुच्छिय वयण सयल परिपालणु, बंधव तिय सहयर सुयलालणु।
एलीतिय मण रुहइल सोहणु, मल्लिदास यातहु मणु मोहणु।
तिणि सेवइ सुन्दरि यह कह सुणि, सरिसु वउलीमउ सु दिढु मणि।
पुणु तोल्हा तणेण परमत्थें, कह सुणि वउली योसिर हत्थें?
पुणुवि पहाडियाह वरवंसवि, सद्धीसयल णयरि सुपसंसवि।
भीणा नंदणेण जिणभत्तें, ताल्ह वउली यो विहसंतें।
पुणु पारस तणेण दुहचोरें, गहिउ सुवउ जइ सहजस धीरें।
पुणु वाकुलीयवाल सुविसालुवि, वालू वउली यो धणमालुवि।
पुणु कह सुणिवि ठकुरसी-णंदणि, णेमिदास भावण भाईय मणि।
पुणु णाथूसी वग्गरि भुल्लणि, लीयउ वउ जीउ रिय मय डुल्लणि।
पुणु कह सुणिवि मणोहर णारिहि, मवरहि भवणा यर णर-णारहि।
मेघमालावउ संगउ महियउ, इच्छिउ फलु लहि सहि कवि करियउ।
चंपावतीय णयरि णिवसंते, रामचन्दयहु रज्जु करंते।
हाथुवसाहु महसि महंतें, पहाचन्द गुरु उवएसंते।
पणवहु सइजि असीवे अग्गल सावण मासि जट सिय मंगल।
पयउ पहाडिए वंससिरोमणि, घेल्हा गरु तसु तिय वर घर मिणि।
तह तणइ कवि ठाकुरि सुंदरि, यह कहि किय संभव जिन मंदिरि।

घत्ता—जो पढइ पढावइ रिणयमरिण भावइ लेहाइ विसइं करि लिहिये ।
तसु वय की यहु फलु होइ विरिणम्मलु राम सुगरिण गोयमु कहिये ।
वस्तुबंध–जेण सुंदरि विरणवइ वयरोण कराविय एह कह ।
मेहुमालवय विहि रयण्णिम पुरगु पुथि यह लिहावि करि ।
पयउ कज्जि पंडियह दिण्णिय मल्लारणंदु सु महियलह सेवउ सेवउ गुरणह गहीरु ।
नंदउ तब लगु जउलइ, कहइ मंमनदि नीरु ॥११५॥

९. शील गीत

यह एक छोटा-सा गीत है जिसमें ब्रह्मचर्य की महिमा बतलायी गयी है। प्रारम्भ में कुछ उदाहरण दिये गये हैं जिनमें विश्वामित्र एवं पाराशर ऋषियों के नाम विशेष रूप से गिनाये गये हैं जो ब्रह्मचर्य के परिपालन में खरे नहीं उतर सके। अन्त में इन्द्रियों पर विजय पाने पर जोर दिया गया है। गीत का दूसरा एवं अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

सिंघु बसइ [illegible] मंस आहारि [illegible] ।
बार एक बरस मैं करइ सिंघरणी सरि सुरति ।
पेखि परे वो पापु जासु मन मुहइ न बासुर ।
खाइ खंड पाषाण कामु सेवइ निसि बासर ।
भोयरिण वसेवु नहु ठकुरसी इहु विकार सब मन तरणौ ।
सील रहहि ते स्यंघ नर नहि यति पारापति गिरणौ ॥२॥

१०. पार्श्वनाथ स्तवन

प्रस्तुत स्तवन पं० मल्लिदास के आग्रह पर निबद्ध किया गया था। इसमें चंपावती (चाकसू) के पार्श्वनाथ प्रभु की स्तुति की गयी है। पूरा स्तवन १५ पद्यों में पूर्ण होता है। स्तवन प्रभावक एवं सुरुचिपूर्ण है। इसका अन्तिम छन्द निम्न प्रकार है—

पास तरणौ सुपसाइ, पाइ परणमंति पाइ धरि ।
पास तरणौ सुपसाइ थाइ, चक्कवइ रिद्धि घरि ।
पास तरणौं सुपसाइ सग्ग सिव सुख लहिज्जै ।
पास तासु परणमंति अंगि आलस कुन किजै ।
ठकुरसी कहै मल्लिदास सुरिण इमि इहु पायो भेदु इव ।
जंगि जं जं संदह संपजैं, तं तं पास पसाउ सव ॥१२॥

११. सप्त व्यसन षट्पद

कविवर ठक्कुरसी की जिन ६ कृतियों की प्रथम बार उपलब्धि हुई है उनमें "सप्त व्यसन षट्पद" प्रमुख कृति है। जिस प्रकार कवि ने पञ्चेन्द्रिय बेलि में पांच इन्द्रियों की प्रबलता, तथा उनके दमन पर जोर दिया गया है उसी प्रकार सप्त व्यसनों में पड़कर यह मानव किस प्रकार अपना अहित स्वयं ही कर बैठता है। व्यसन सात प्रकार के हैं—जुआं खेलना, मांस खाना, मदिरा पीना, वेश्यागमन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और परस्त्री सेवन करना। ये सातों ही व्यसन हेय हैं, त्याज्य हैं तथा मानव जीवन का विनाश करने वाले हैं।

पार्श्व वन्दना के साथ षट्पद को प्रारम्भ किया है। कवि ने कहा है कि पार्श्व प्रभु के गुणों का तो स्वयं इन्द्र भी वर्णन करने में अब समर्थ नहीं है तो वह अल्प बुद्धि उनके गुणों का कैसे वर्णन कर सकता है। कवि ने बड़ी ओजपूर्ण भाषा में अपनी लघुता प्रकट की है—

पुहमि पट्टि मसि मेरु होहि भायरण खर सागर।
अवस अनोपम लेखि साख सुरतर गुण आगर।
आपु इंदु करि लिहै, कहै फणिराउ सहसमुख।
लिहइ देवि सरसति लिहत पुणु रहइ नही भुप।
लेखणि मसि मही न उभरइ, थक्कइ सरसइ इंद पुणि।
आयो नवोछु कहि ठकुरसी तवइ जिणेसर पास गुणि ॥१॥

जुआ खेलना प्रथम व्यसन है। जुआ खेलने में किञ्चित् भी लाभ नहीं है। संसार जानता है कि पांचों पाण्डवों एवं नल राजा को जुआ खेलने के क्या फल भुगतने पड़े थे। उन्हें राज्य सम्पदा छोड़ने के साथ-साथ युद्ध का भी सामना करना पड़ा था। द्यूत क्रीड़ा करने से अनेक दुःख सहन करने पड़ते हैं। इसलिए जो मनुष्य द्यूत क्रीड़ा के अवगुण जानते हुए भी इसे खेलता है वह तो बिना सींग के पशु है।

जूव जुवारयो घणो लाभु गुण किंपइ न दीसइ।
मतिहीणा मानह खेलि मति चिति जगीसइ।
जगु जाणइ दुखु सह्यो पंच पंडव नरवइ नलि।
राज रिधि परहरी रणु सेविउ जूवा फलि।
इह विसन संगि कहि ठकुरसी, कवणु न कवणु विगुत्तु वसु।
इव जाणि जके जूवा रमैं ते नर गिणिवि ण सींगु पसु ॥१॥

दूसरा व्यसन है मांस खाना। जीभ के स्वाद के लिए जीवों की हत्या करना एवं करवाना दोनों ही महा पाप के कारण हैं। मांस में अनन्तानन्त जीवों की प्रतिक्षण उत्पत्ति होती रहती है इसलिए मांस खाना सर्वथा वर्जनीय है।

मद्य पान तीसरा व्यसन है। मद्य पान से मनुष्य के गुण स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। शराब के नशे में वह अपनी मां को भी स्त्री समझ लेता है। मद्य पान से वह दुःखों को भी सुख मान बैठता है। यादवों की द्वारिका मद्य पान से ही जल गयी थी। यह व्यसन कलह का मूल है तथा धर्म और धन दोनों को ही हानि पहुंचाने वाला है एवं बुद्धि का विनाशक है। वर्तमान में मद्य पान के विरुद्ध जिस वातावरण की कल्पना की जा रही है, जैन धर्म प्रारम्भ से ही मद्य पान का विरोधी रहा है।

मज्ज पिये गुण गलहि जीव जोगें उपज्यौ भणि।
मज्जु पिये सम सरिस माइ महिला मण्णहि मणि।
मज्जु पिये बहु दुखु सुखु सुणहा मैथुन इव।
मज्ज पिये जा जादव नरिंद सकुटंब विणय खिव।
धण धम्म हाणि नर यहु गमण कलहु मूल अवजस उतपति।
हारंसि जनमु हेलइ मुगध मज्ज पियें जे विकलमति ।।३।।

वेश्या गमन चतुर्थ व्यसन है जो प्रत्येक मानव के लिए वर्जनीय है। यह व्यसन धन, संपत्ति, प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य सबको नष्ट करने वाला है। सेठ चारुदत्त की बर्बादी वेश्यागमन के कारण ही हुई थी। कालिदास जैसे महाकवि को वेश्या-गमन के कारण मृत्यु का शिकार होना पड़ा था। इसलिए वेश्यागमन पूर्णतः वर्जनीय है।

इसी तरह शिकार खेलना, चोरी करना एवं पर-स्त्री गमन करना वर्जनीय है तथा इन तीनों को व्यसनों में गिनाया है। ये तीनों ही व्यसन मनुष्य के विनाश के कारण हैं। शिकार खेलना महा पाप है। जिस कार्य में दूसरे की जान जाती हो वह कितना बड़ा पाप है इसे सभी जानते हैं। किसी के मनोविनोद के लिए अथवा जीभ की लालसा को शान्त करने के लिए दूसरे जीव का घात करना कितना निन्दनीय है? इन तीनों ही व्यसनों से कुल की कीर्ति नष्ट हो जाती है और केवल अपयश ही हाथ लगता है। रावण जैसे महाबली को सीता को चुराकर ले जाने के कारण कितना अपयश हाथ लगा जिसकी कोई समानता नहीं है। इसलिए ये तीनों व्यसन ही निन्दनीय है वर्जनीय हैं एव अनेकों कष्टों का कारण है।

कवि ने अन्तिम पद्य में सभी सातों व्यसनों को त्याग करने का उपदेश देते हुए उनके अवगुणों को उदाहरण देकर बतलाया है ।

जूवं विसनि वन वासि भमिय पंडव नरवइ नलु ।
मंसि गयो बगराउ सुरा खोयो जादम कुलु ।
वेसा वणियर चारिदत्तु पारधि सवं उनिउ ।
चोरी गउ सिवभूति विपु परती लंकाहिउ ।
इक्के विसनि कहि ठकुरसी, नरइ जांहु नर बुह सहइ ।
अहु अंगि अधिक अच्छहि विसन, ताहु तणी गति को कहइ ॥८॥

रचना की एकमात्र पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर पांडे लूणकरण जी, जयपुर के गुटके में संग्रहीत है ।

१२. व्यसन प्रबन्ध

कवि की यह दूसरी कृति है जिसमें सात व्यसनों की चर्चा की गयी है । उनके अवगुन बताये गये हैं और उन्हें छोड़ने का आग्रह किया गया है । प्रस्तुत प्रबन्ध मुनि धर्मचन्द्र के उपदेश से लिखी गयी थी । मुनि धर्मचन्द्र भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य थे और बाद में मंडलाचार्य बन गये थे । इन्होंने राजस्थान में प्रतिष्ठा महोत्सवों के आयोजन में विशेष रुचि ली थी ।

मुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यो, कवि ठकुरि विस्न प्रबंध कह्यो ।
पर हुरई जको ए जाणि गुणं, सो लहइ सरब सुख वंछित घणं ॥८॥
सुणि सीख सयाणो मूढ मनं, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ॥

प्रबन्ध में केवल आठ पद्य हैं तथा उनमें संक्षिप्त रूप से एक-एक व्यसन के अवगुणों का वर्णन किया गया है ।

सप्त व्यसनों के सम्बन्ध में दो-दो कृतियां निबद्ध करने का अर्थ यह भी निकाला जा सकता है कि कवि के युग में समाज में अथवा नगर में सात व्यसनों में से कुछ व्यसनो का अधिक प्रचार हो । और उनको दूर करने के लिए कवि को पुनः प्रबन्ध लिखने की आवश्यकता पड़ी हो ।

मद्य पान के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि मद्य पीने से आठ प्रकार के अनर्थ होते हैं । शराब पीने के पश्चात् वह माता एवं पत्नी का भेद भूल जाता है । मद्य पान से पता नहीं कौन-सा सुख मिलता है । मद्य पान से ही सारा यादव वंश समाप्त हुआ था ।

जहि पीये आठ अनर्थ करै, जननी महिला न विचारु फुरै।
तहि मज्ज पिये भगु कवणु सुखो, जहि आदम वसइ दिणु दुखो ॥३॥

१३. पार्श्वनाथ जयमाला

यह जयमाला भी स्तवन के रूप में है। चम्पावती में पार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर था और उसमें जो पार्श्वनाथ की प्रतिमा है उसी के स्तवन में प्रस्तुत जयमाला लिखी गयी है। जयमाला में ग्यारह पद्य हैं। अन्तिम पद्य में कवि ने अपना और अपने पिता का नामोल्लेख किया है। जयमाला का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

इह वर जइमाला, पास जिणु गुण विसाला।
पढहि जिणर णारी, तिण्णि संझा विचारी।
कहइ करि अनंदो, ठकुरसी घेल्ह नन्दो।
लहहिति सुख सारं, वंछियं बहु पयारं ॥

१४. ऋषभदेव स्तवन

यह भी लघु स्तवन है जिसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की स्तुति की गयी है। स्तवन में केवल दो अन्तरे हैं। दूसरा अन्तरा निम्न प्रकार है—

इष्वाक वंस श्री रिसह जिणु, नाभि तणु भव भव हरणु।
सब महल भवय कहि ठकुरसी, तुहु समथ तारण तरणु ॥

१५. कवित्त

कविवर ठक्कुरसी ने सभी प्रकार के काव्य लिखे हैं और वे सभी विषयों से ओतप्रोत हैं। प्रस्तुत कवित्त भी विविध विषय परक है और सम्भवतः कवि के अन्तिम जीवन की रचना है। कवित्त का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

जइरु बहिरउ सुण्यौ नहु गीतु, जइ न दीठु ससि अंधलइ।
जइ न तरणि रसु संढि जाण्यौ, जइ न भवरु चंपइ रम्यो।
जइ न चपकु कर हीणि ताण्यौं, जइ किणि नि गुणिनि जलणौ।
कव्वि न कीयो मणगु, कहि ठाकुर तउ गुणी गुण नाउ जासी सुणु ॥६॥

इस प्रकार अभी तक ठक्कुरसी की १५ कृतियों की खोज की जा सकी है लेकिन नागौर, अजमेर, एवं अन्य स्थानों के गुटकों की विस्तृत छानबीन एवं खोज होने पर कवि की और भी रचनाओं की उपलब्धि की सम्भावना है। ठक्कुरसी प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा सम्पन्न कवि थे इसलिए सम्भव है कोई महाकाव्य भी हाथ लग जावे।

कविवर ठक्कुरसी १६ वीं शताब्दि के ढूंढाड प्रदेश के प्रमुख कवि थे। उनकी रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होगा कि कवि ने या तो भक्ति परक रचनायें लिखी हैं या फिर समाज में से बुराइयों को मिटाने के लिए काव्य लिखे हैं। कवि का कृपण छन्द उन लोगों पर करारी चोट है जो केवल सम्पत्ति का संचय करना ही जानते हैं। उसका उपयोग करना अथवा त्याग करना नहीं जानते। कृपण छन्द जैसी रचना सारे हिन्दी साहित्य में बहुत कम मिलती है। इसी तरह पञ्चेन्द्रिय बेलि एवं 'सप्त व्यसन षट्पद' भी शिक्षाप्रद रचनायें हैं जिनको पढ़ने के पश्चात् कोई भी पाठक आत्म चिन्तन करने की ओर बढ़ता है। ठक्कुरसी का समय मुसलिम शासकों की धर्मान्धता का समय था लेकिन कवि ने समाज का अपनी रचनाओं के माध्यम से जिस प्रकार पथ प्रदर्शन किया वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

ठक्कुरसी की रचनायें भाव, भाषा एवं शैली तीनों ही दृष्टियों से उत्तम रचनायें हैं उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में उचित स्थान मिलना चाहिये।

□ □ □

सीमंधर स्तवन

श्री सीमंधर जिन पय वंदौ, भवि नेत्र चकोरभिनंदो।
पुंडरीकणी पूर्व विदेहो, अतिशयवंत सहा प्रभु रे हो।
रे हैं ज परमातमय जुत प्रभु, समवसुति महिमंडणो।
तिहुलोक विजयी मोह रिपु, बलु काम बल सहु भंजणो।
परमेठि परमारथ प्रकाशक, पाप नाश दिगंबरो।
भव जलधि पोतक पास मोचक, नमहु जिन सीमंधरो॥१॥

सहु युग्मंधर जिनराजे, साकेता मंडण छाजै।
तिहुलोक जनाधिप वंदौ, मोहारि विजय अभिनंदौ।
अभिनंदियौ जगवेक स्वामी, मोक्ष गामी वीर जो।
पंचसै धनुष प्रमाण देहो, मान माय विहंडणो।
तत्वादि वेदी कोध भेदी, भव्य पुण्य परंपरो।
दिन नाथ कोटि प्रभाधि शोभी, जयउ जिन युग्मंधरो॥२॥

पछिम दिशि बाहु मुनीशो, विजयार्ध पुरी शिरि सीसो।
निमितामर नर फणि लोको, विनि वारि तज न भय शोको।
जन शोक वारण सौख्य कारण, जनम मरण जरा हरो।
परमारथ रत्नत्रय विराजित, शुभ चेयण गुणधरो।
चर अचर लोक अतीत नागत, वर्त्तमान सु गोचरो।
उत्पादन ध्रौव्य येक ग्याता, जयहु बाहु जिनेस्वरो॥३॥

॥ लीखंत ठाकुरसी ॥

नेमिराजमति वेलि

सरसय सामिणि पय जुयल, नमो जोडि कर दोइ ।
नेमिकुमार राजमती जतो कहुंउ, सुणहु सब कोइ ।।१।।

आइ मास बसंत रुति, जन मन भयो अनंदु ।
सब्वइ वन कीला चल्या, मिलि द्वारिका नरिंद ।
मिलि द्वारिका नरिंदो, वसुदेवो बलिभद्र गोविंदो ।
समदविजे दसं दसारा, सिवदेव्यो नेमिकुमारा ।
सतिभामा रुपिणि राणी, जंबवंती सरिसउ माही ।
ले सोलह सहस अगिवाणी, चारत्रो चाली पटराणी ।

चाल्या दल बल रूप निधानो, पजदवण जुभानु सुभानो ।
परधान परोहित मंत्री, मिलि चल्या सयल भड खित्री ।
हय गय रथ जाण जंपाणा, मिलि चाल्या जादम राणा ।
सुखि कहै किता इक जोडे, मिलि चलिया छप्पन कोडे ।
हल रज पसरी चौपासा, नहु सूझै सूर प्रगासा ।
गति सुण छोडि सहु देसो, वन मिलि मति मारै केसो ।
सिरि छत्र चमर दुइ पासा, सोहइ सिरि पढी पभासा ।
बाजा बाजे बहु भंते, बंदियण विरुद पभणंते ।
मनि आनंदु अधिकु बहंता, हरि विदु वनिहि संपत्ता ।।२।।

दोहडा

गीत नाद रस पेखणा, परिमल सुख संजोग ।
तरु छाया वल्लीभवण, फिरि फिरि भुंज्या भोग ।।३।।

जहि जहि केलि करंतु, वनिहीडी नेमिकुवारु ।
तहि तिय चाही श्यामहि, लागी फिरंति लार ।।४।।

लागी फिरहिति लारा, भरि जोबन रूप अपारा ।
कालीय भिणु दीठो चाहैं, तलि बधु खियोरि न साहैं ।
कवि रूप रवणारसि चाली, चखि एक आजि उठ चाली ।
कवि कहै कुंवर मा जाहे, तुम्ह रूपु निखो थिर थाहे ।

किंकि दिठि देखण की भाऊ, सिसु तजि जे चलियु बिलाऊ ।
कवि कहइ सुणिय घणु घणु, जसु परणइं एहु मवणु ।
इणि परिलिय अणेक पयारा, बहु करिहिंति काम बिकारा ।
जिणु तव इन दिठि बै बोलैं, नाऊं मेरु पवन मैं डोलैं ।
मच रेयणु नर नारे, रंगि रमाहिलि बनह मझारे ।
वनि रमत हुवो श्रमु काया, जलि न्हाणि सरोवर श्राया ।
जल माहि केलि कीइं जैसी, कवि सकइ कवणु कहि तैसी ।

दोहडा

जल विनोद करि नीसरया, मन हरखी नरनारि ।
पहिरि वस्त्र आरभरण अंगि, आवहि नगर मझारि ।।५।।

सिवदे रूपिणिस्यौ कह्यौ कहा रह्यौ मुह मोडि ।
नेमि कुवर कपहरणी, दैने बहु निचोडि ।।६।।

देनै बहु निचोडे, तिन उत्तर दियौ बहोडे ।
जो सारगु धणकु चढावै, लै संखु पंचायणु बावै ।
चढि नाग सेज जो सोवै, रूपिणि तसु वस्त्र निचोवै ।
सुणि सतिभामा कर जोडे, ले दोनौ वस्तु निचोडे ।
तव सिवदे तणइं कुमारे, मनि निमप चड्यो अहंकारे ।
वरजंता सहि रखवाला, प्रभु पैठौ आइधु साला ।
मनि गिणइं न क्यों रंगि रतौ, चढि नाग सेज सिरि सूतौ ।
चरणांगुलि धणकु चढायौ, नासिका संखु धरि वायौ ।
सुणि सवदु संखु जण कंप्यौ, इहु कहा हुवउ इम जंप्यौ ।
सुणि संख सबद हरि डोल्यौ, बलिभद्र इम बोल्यौ ।
अहो भाई विणु ठौकाजो, अदि तदि यहु लेसी राजो ।
को मोटो मंत्रु उपाये, तपु ले घरि तजि वन जाये ।
तब कुछद मनि सलिंगी, आयौ उग्रसेणि धिय मंगी ।।

दोहडा

सुरनर जादव मिलि चल्या व्हाण नेमिकुमारि ।
पसु दीया गुवाडा भर्या, बंध्या ससुर दुवारि ।।७।।

हरण रोझ सूकर ससा पुकारहि मुह वाहि ।
नेम कुमर रथु राखि करि, बूझ्यौ सारथ मांहि ।।८।।

रे सारथि ए काजे, पसु बंधि धर्या किरिण काजे।
तिरिण जंप्यौ कृष्न अनाथी पसु जाति अके मनिभाया।
पोर्षाबा भर्गति बराती, पसु अंध वासहु परभाती।
तब नेमिकुमरु रथु छोडी, पसु मुकलाया बध तोडी।
भयभीत जीव ले भागा, त्रिभुवन गुरु चीतरण लागा।
इहु जीव विषइ कउ घाल्यौ, हुउं जिहि जहि जोरणी घाल्यो।
तिहि तिहि सिय पासि नचायौ..........................
इव सो तपु तपउं विचारे, ज्यों फिर न पडौ संसारे।
इम चीति कं चल्यौ कुमारो, आयो राजण परिवारो।
अहो कवर कवरिण तुं बांधौ, तपु लेवा जोग उमाह्यौ।
तपु तपिउ न बालैं जांई, करि ब्याहु करहि समभाइ।
जब प्रौढउ होहि कुमारि, तब लीजहु तपु भवतारि।
हसि नेमि कुंवरु तब ओलैं, मुभ जनम मरणु मन डोलैं।
जइ अइ पहुचइ कालो, तब गिणइ ण बूढो बालो।
जहि जहि जोणी ही जायौ, तिहि तउ कुटंबु उपायौ।
इहु मोहु कवरण परिकीजैं, तिणि काजि माइ तपु लीजैं।
माइ बापु दुवै समभावैं, परियरण जण सयल समावैं।
विलवंतु साथु सबु छोडे, गो नेहु निमष मै तोडे।
आभरण तै वस्त्र उतारे, चढि लीयो तपु गिरनारे॥

दोहडा

सुणिय बात राजमति कवरि परिहरियो सिंगारु।
पिउ पिउ करती तिह चली, जहि बनि नेम कुवारु॥९॥

माइ बाप बंधव सखी, समझावहि कहि माउ।
अवरु वरहि वरु भावतो, गयो नेमि तौ जाउ॥१०॥

गयउनु हैं पिउ जाणी, उन कहहि सुवरु किरि आणी।
जंपइ रजमतीय अरणोरा, जिण विरणु वर बंधव मेरा॥११॥

कइ वरउ नेमिवरु भारी, सखि कै तपु लेउं कुमारी।
चढि गैवरि को खरि बैसे, तजि सरगि नरगि को पैसे॥१२॥

तजि तीणि भवन को राई, किम अवरनु वरौ वरु भाई।
समभाइ राखि सबु साथो, तिहां चलीय जिहा पिउ नाथो॥१३॥

तिय भाव अनेक दिखाया, तिणि तवइ न चित्त डुलाया ।
भूली राजमती मनि चिंतै, नाउं घुणु लागै वज्र थंभै ॥१४॥

विलखी पखि हियैं निवासै, तपु तपिउ तिहां पिउं पासै ।
तपु तपिउ करी खिपि काया, रजमतीय अमर फल पाया ॥१५॥

राखियो बांधि मन चोरो, तप तपिउ नेमि अति घोरो ।
तजि मोहु मानु मदु रासा, अति सहिया विषम परीसा ॥१६॥

तिहसंठ कम्मं बलु धायो, अरु केवल णाणु उपायो ।
मलघीत गई सब दूरे, हुव समोसरणु रिधि पूरे ॥१७॥

फिरि देसु सयलु समझाया, नर तिरिय धरम पथ लाया ।
बूंझता हरिबल तोसो, भाख्यौ द्वारिका हि विणासो ॥१८॥

जहि जहि मनिऊ भंति घनेरी, बूंझता हरि तिहि केरी ।
अवसाणि आइ गिरणारे, गये मुकतिहु दो भवपारे ॥१९॥

जर जनमु मरणु करि दूरे, हुव सिद्ध गुणहं परि पूरे ।
कवि घेल्हु सुतन ठाकुरसी, किये नेमि सुजसि मति सरसी ।
नर नारि जको नित गावै, जो चिंतै सो फलु पावै ॥२०॥

॥ इति श्री नेमि राजमति बेलि जति ठाकुरसी कृतं समाप्त ॥

पञ्चेन्द्रिय वेलि

स्पर्शन इन्द्रिय

दोहा—

वन तरुवर फल खातु फिरि, पय पीवतौ सुछंद ।
परसण इन्द्री प्रेरियौ, बहु दुख सहे गयंद ॥

छंद—

बहु दुख सहौ गयंदो, तसु होइ गई मति मंदो ।
कागज के कुंजर काजे, पडि खाडन सक्यो न भाजे ।
तहि सहिय घणी तिस भूखो, कवि कौन कहस स दुखो ।
रखवाला बलगउ जाण्यौ, वैसासिराय घरि आण्यौ ।
बंध्यौ पगि संकलि घाले, तिउ कियउन सक्कइ चाले ।
परसण प्रेरै दुख पायौ, निति अंकुस घावां घायौ ।
परसण रस कीचकु पूर्यौ, गहि भीम सिला तल चूर्यौ ।
परसण रस रावण नामैं, मारियउ लंकेसुर रामैं ।
परसण रस संकर राच्यौ, तिय आगै नट ज्यौ नाच्यौ ।
इहि परसण रस जे धूता, ते सुर नर घणा विगूता ॥१॥

रसना इन्द्रिय

दोहा—

केलि करंतौ जनम जलि, गाल्यौ लोभ दिखालि ।
मीन मुनिष संसारि सरि, काढ्यौ धीवर[1] कालि ॥

छंद—

सो काढ्यौ धीवरि काले, तिणि गाल्यौ लोभ दिखाले ।
मछु नीर गहीर पइठो, दिढि जाइ नही जहि दीठो ।
इह रसणा रस कउ घाल्यौ, थलि आइ मुवै दुख साल्यौ ।
इह रसना रस कै तांई, नर मुसै बाप गुरु भाई ।

---

१ धींवरि

घर फोड़ै पाड़ै बाटा, नित करै कपट घण घाटा।
मुखि झूठ सांच नहि बोलै, घर छोडि दिसांतर डोलै।
कुल कुंभ नीच नहि लेखै, सूरख जहि तहि मिलि भेखै।
इह रसना रस कै लीए, नर कुण कुण कर्म न कीए।
रसना रस विषै भकारी, वसि होइ न मीनण मारी।
जिहि चहुर विषै वसि कीयौ, तिहि मुनिय जनम फल लीयौ ॥२॥

घ्राण इन्द्रिय

दोहा —

कमल पइठौ भ्रमर दिनि, घ्राण गंधि रस रूढ़।
रैणि पड़ी सो संकुच्यौ, नीसरि सक्यो न मूढ़ ॥

छंद—

अति घ्राण गंधि रस रूढो, सो नीसरि सक्यो न मूढो।
मनि चिंतै रयणि सबायो, रस लेस्यौं कजि पभायो।
जब उगैलो रवि विमलो, सरवर विकसै लो कमलो।
नीसरिस्यौं तव इह छोडे, रस लेस्यौं आइ बहुडे।
चितवतै ही गज आयो, दिनकर उगवा न पायो।
जलि पैसि सरवर पीयो, नीसरत कमल खुडि लीयो।
गहि सुंडि पाव तलि चंप्यौ, अलि माय्यौ घर हर कंप्यौ।
इहु गंध विषै छै भारी, मनि देखहु क्यौ न विचारी।
इह गंध विषै वसि हुवौ, अलि बहुलु अखूटो मूवो।
अलि मरण करण दिठि दीजे, तउ गंध लोभ नहि कीजे ॥३॥

चक्षु इन्द्रिय

दोहा—

नेहु अवगलु तेल तसु बाती वचन सुरंग।
रूप जोति परतिय दिवै, पड़हिति पुरुष पतंग ॥

छंद—

पड़हिति पुरुष पतंगो, दुख दीवै दह इति अंगो।
पडि ब्रोइ तहां जीव पावै, दिठि धंधिन सूरख रावै।
दिठि देखि करै नर चोरी, दिठि देखित कै पर गोरी।
दिठि देखि करै नर पापो, दिठि दीहां बंधइ संतापो।

दिठि देखि महल्या इंदो, तनु बिकल भई मति मंदो ।
दिठि देखि तिलोत्तम भूल्यो, तप तपिउ विधाता डोल्यो ।
ए लोयण लंपट झूठा, वरज्या नहि होइ अपूठा ।
ज्यौ वरजै ज्यौ रस चाया, रंगु देखै आपणु भाया ।
लोयणह दोस को नाहि, मन प्रेरै देखण जाही ।
जे नयण दुवै वसि राखै, सो हरखि परति सुख चाखै ।।४।।

श्रवणेन्द्रिय

दोहा—

वेग पवन मन सारिखो, सदा रहे भय भीतु ।
बधीक बाण मार्यौ हिरण, कानि सुणंतौ गीतु ।।

छंद—

सौ गीत सुणंतौ कानै, मृग खडौ रह्यौ हैराने ।
धणु खैंचि बधीक सरि हणियौ, रसि बोधौ घाउ न गिणियौ ।
इह नाद सुणंतौ सांपो, बिल छोडि नीसर्यौ आपो ।
पापी घडियालि खिलायौ, फिर फिर दिनि दुख्य दिखायौ ।
कौंदुरि नाद नर लागै, जोगी हुइ भिख्या मांगै ।
बाहुडहि न ते समझाया, फिर जांहि घणा घरि आया ।
इहु नादु तणौ रस ऐसो, जगि महा विषम विसु जैसो ।
इह नादि जिके नर मिलिया, ते नर शिवबेगि[1] न मिलिया ।
इहु नाद तणै रसि रातो, मृग खिस्यो नही जीव जातो ।
मृग भाव उपाव विचारो, तो सुणबाउ नादु निवारे ।।५।।

दोहा—

अलि गजु मीनु पतंग, मृग एकै कहि दुख दीध ।
जाइति भौ भौ दुख सहै, जिहि वसि पंच न किद्ध ।।

छंद—

जिह वसि पंच न किरिया, खल इन्द्री अवगुण भरिया ।
तिहि जप तप संजम खोयौ, सतु सुकृत सलिल समोयौ ।

---

१. सिव वेगिन

सब हूरतु परतु सत हारे, जिहि इंद्री पंच पसारे।
जिहि इंद्री पंच पसारया, तिहि मुनिष जनम जगि हारया।
नित पंच बसै इक अंगे, लिर भौर और ही रंगे।
चषु चाहे रूप जु दीठो, रसना मख भखे सु मीठो।
निति न्हालै घाण सुगंधो, फरसइ कोमल अंगो।
निति श्रवण गीत रस हेरैं, मन पापी पंचै प्रेरे।
मन प्रेरयौ करै कलेशो, इंद्रियान दीजै दोसो।
कवि घेल्ह सुतनु गुणधामु, जगि प्रगट ठकुरसी नामु।
करि वेलि सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष समुझाया।
मन मूरिख संक उपाइ, तिहि तणइ चिति न सुहाई।
नहि जंपी घणी पसारी, इह एक वचन छै सारी।
संवत पंद्रहसैरे पिच्यासे, तेरसि सुदि कातिग मासे।
जिहि मनु ईंद्री वसि कीया, तिहि हूरत परत जग जीया ।।६।।

।। इति पञ्चेन्द्रिय बेलि समाप्त ।।

चिन्तामणि जयमाल

पणविवि जिण पासहु पूरण आसहु दूरभिय संसार मलु ।
चिन्तामणि जंतहु मणि सुमरन्तहु, सफहुजेम संजयइ फलु ।।१।।

महारत्त गुंजा समादुण्णिणेत्तं, सुणे सदुत्तं कासु संकण्ण चितं ।
हुरो होइसो काणणे जंबुमत्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।२।।

दिठं मूसलाया रदंतं पयडं, मऊणिमरंतो किए उच्च सुडं ।
न सभोइसो सिन्धुरो मूल मत्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।३।।

विसे वासि अदुण्णि जीहो ससंतो, न भण्णेय मूली कियो मंत मंतो ।
ण लोभ्याइ जून्यो फणी सप्पमित्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।४।।

समीरे सहाए मिली धूम झालं, सदापेखि मंगं फुलिग विसालं ।
णडुलकेइ या अग्गिणं णीर सित्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।५।।

ण तीसार चित्तं भमंगोहारीयं, नणलं वलं मण्डलं सण्णिवायं ।
ण दुट्ठं जरा दुट्ठ खेखास पित्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।६।।

कुदेवा गहा डायणी भूमिपालं, दिनाइ विसं कम्मणं बम्भ बालं ।
कुसवणं कुसप्न न लग्ग तिणित्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।७।।

करी संकले देहु रक्खो विनाणे, पयासीसु विहुणतं दिढुं कुट्ठाणे ।
मिऊ दूरि लट्ठो णियंताइ णेतं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।८।।

समुद्देर नद्दे अवाहे अगम्मे, पबुयो को वितच्छो किए पुव्व कम्मे ।
तहा होइसो जाइगो पाइ जितं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।९।।

वरो बीढ्या खेड सूली दुहाला, गले घल्लिऊ सप्पु होइ फुल्ल माला ।
वालग्गंति वायं रणे दिण्ण सत्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।१०।।

तिया रूप सीलग्गणा पुत्त भत्ता, सणेही कुण्डबी गुणी हुंति मित्ता ।
घुणो हुंति गेहे प्रमाणं सुवित्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।११।।

इय वर जयमाला गुणह विसाला येल्ह सतनु ठाकुर कहए ।
जो साह सिसि सिक्खइ दिणि रिसि अक्खइ सो सुहमण वंछिउ लहए ।।१२।।

।। इति चितामणि जयमाल समाप्ता ।।

कृपण छन्द

क्रिपणु एकु परसिद्ध नयर निसवंति विलक्खणु ।
कही करम संजोग तासु घरि नारि विचक्खण ।
देखि देखि दुहुं की जोडि सबु जगु रहिउ तमासेइ ।
यहु र पुरिष की याहु दई किम देइम भासे ।
बा[illegible] र हुइ नीति चणौ मांडी [illegible] जार पुरुष कुल कीज नाति ।
वा देन खाण खरच किवै, दुवै करहि दिनि कलहु भसि ॥१॥

गुरस्यो गोठि न करै, देउ देहुरौ न देखै ।
मांगिन भूलि न देई, गालि सुणि रहै अलेखै ।
सगी भतीजी भुवा बहिण भाणिज्या न ज्यावइ ।
रहै रूसणौ मांडि आपु ल्यौतो जिव आवै ।
पाहुणो सगो आयो सुणो रहइ छिपिउ मुख म रालि करि ।
जिव जाइ तिवहु परि नीसरै, यो धणु संच्यो क्रिपण नर ॥२॥

सुहु परयणु संचरै, सोवै तलि तिणा बिछावै ।
सब धीयाटवि काहि भोलि घरि तबै न ल्यावइ ।
ऊपरि झूडा छनि बर दश तणि जु बाधी ।
टूटि टूटि तिणि पडइ वालि बाचै अब आंधी ।
सहि ढही भीति सेरी पडी देखि देखि देइ गालि नर ।
मारिजै वर मीती वडै, तबै न छावै कृपण नर ॥३॥

सगला पहिला उठी माथि ते देइक भाइ ।
पगि नागो सिरि भार गाव दश फिरै दिनाई ।
घरि भूखो परिवार बार तसु टग टग चाहै ।
जब आवै पापीयो नाजु तब आयु विसाहि ।
लेइ सवा सोधि ओगस्यो जहि मरघा हुइ त्रिपति ।
ईम रहइ राति कूचकै क्रिपणु सहु को जाणै नर नृपति ॥४॥

झूठ कथन नित खाइ लेखै लेखौ नित झूठौ ।
झठ सदा सहु करै झूठ नहु होइ अपूठौ ।

झूठी बोलै साखि झूठे झगडे नित उपावै ।
जहि तहि बात विसासि धूति धनु घर महि ल्यावै ।
लोभ को लियो पेते न चिति जो कहिजे सोइ खवै ।
धन काजि झूठ बोलै कृपणु मनुष जनम लाधो गवै ।।५।।

कदेन खाइ तंबोलु सरसु भोजन नहीं भक्खै ।
कदेन कापड नवा पहिरि काया सुख रक्खै ।
कदेन सिर में तेल मल सूरख न्हावै ।
कदेन चन्दन चरचै अंग अतीव लगावै ।
पेषणो कदे देखै नही श्रवणु न सुहाइ गीत रसु ।
घर घरणी कहै इम कंतस्यौ दई काइ दीन्हौ न पसु ।।६।।

सिरि बांधै चीथरी रहइ तलि किए न मोटो ।
अंग उघाडी दुवै भगो पहरो गलि छोटो ।
पडहि जून सेवार कदे कापडा न धोवै ।
हाथ पाग सैर को मेलु मलि मूलिन न खोवै ।
पहरि वाथा घोयर चरण तणी नीसत नहि उहु ।
रलायो सर्धरि सवरि तहि नणी गुण पडी कृपण घरण दूबली ।।७।।

ज्यो देखै पहूरंत खंत खरचंत प्रवर नर ।
बैठा सभा मझारि जाणि हासंति कुसम सर ।
देखि देख तहु भोगु कृपण तिय कहै विचारी ।
ज्याहु तणी एकंत पुणि पूरी तेजारीमइ ।
पुब्व पाप कृत आपणौ कंतु कुमाणु सभरि लधो ।
इंकु कृपणु अरु करपु कुबोलणो लाज मरो लक्खण रह्यो ।।८।।

ज्यो देखे देहुरै त्याह की वर नारी ।
तलि पहरया पटकूला सब्ब सोवन सिंगारी ।
एकि करावैं पूज एकि ऊभी गुण गावैं ।
एक देहि तिय दाणु एक शुभ भावन भावैं ।
तिहु देखि भरणै हीयो हणै कवणु पापु दीयो दई ।
जहि पाप किणहो पापीणी कृपणुकंत घरि घरण हुई ।।६।।

कैं कुदेव पूया कैरू जिण चलण नवाया ।
कैं मैं पेष्या कुगुर साधु गुरु सावति निंद्यौ ।

कै मैं बोलो झूठ अवर दिठु दया न पाली।
कै मैं भोजनु कियौ पति पत संधाए।
स्वामी पुव्व आयु आयो उदै, कृपणु कंत पायो पड्यो।
तो दिन पायु रिचण सुहै, अणाही मिसि पावै लड्यो ।।१०।।

इणीइ रीतिरहि कृपणि थुति भणु घणी उपायो।
ले सुणि पासैं बार गाडि पुर बाहरि आयो।
क्यों कलतरि आपिया ताहू जे भेदे न अक्खैं।
क्योंरि करै भवसाल क्योर नख मुनिगुन लखै।
परिवार पूत बंधव जणहू नीय कुनहु पतियइ कसु।
यों सूमि सदा धन एकठो करि करि राख्यौ आप वसु ।।११।।

दुख भरती वेहुरै तासु तिय जाइ सवारी।
एकहि विधि [illegible] संगु [illegible] [illegible]।
रयण समैं करि जोडि कहिउ पिय सरिसु हसंती।
सुणहि स्वामि महु एक तणी बीणती।
नर नारि सबै कोऊ भरघा लीया परोहण घर जु घरि।
वंदिस्यौ जाइ श्री नेमि अरु दहि सेत्रोतंजसिरि ।।१२।।

तूती करि पिय मतौ चडहि दुवे गिरनारीय।
वंदहु नेमि जिणंदु जेणि तिय तजिय कुमारीय।
दीप धूप फल लेइ चरू अक्खत केसर।
कुड गयंदी न्हाइ पाइ पूजा परमेसर।
अरु चडहु दुवैं सेतंजसिरि जनम जनम को नाइ मलु।
उपजावजौ पसु नर नरकि लहि अमर पदु परम फलु ।।१३।।

नारि वचन सुणि कृपणि सीसि सलवटि धणपल्ली।
कि तू हुई धण बावली कि धण थारी मति चल्ली।
मैं धणु लद्ध न पड्यो मेर धणु लियौ न चोरी।
मैं धणु राजु कमाइ आयु आणियौ ना जोरी।
दिनि राति नींद तिस भूख सहि मैं उपायो दुखि घणो।
स्वरचि वा तणो बाहुडि वयनु धण मू आगे मत भणो ।।१४।।

कहै नारि सुणी कंत चपल किउंसु लच्यो लछी भयो।
नहु नव निद्धि मूकि तसु गैलण लच्छी।

अवर किता नर कहुउ ज्याह संचीह त्याह हारयौ ।
इम जाणि कंत मन सद्दहौं जिन सूकहि करि कठिणु मनु ।
ज्यौ व नमितु तणइ धरिइ इंछयो होइ मनंत धणु ।।१५।।

कहै कृपणु सुणि मूष भेदु जगु लहइ न आधौ ।
धन बिनु कोइ न सगौ पूत परियण तिय बंधव ।
धन विणु पंडितु मीधु विधाधित मंडलि पीणौ ।
धण विणुवि तिय हरिचंद राइ वेचा पुरि राणौ ।
....।।१६।।

नारि कहै सुण कंत जकै दाता रहवा घर ।
करण भोज बिक्कम अजो कीई.............................।
नर सुम सदा अपवित्त सुम साम्हरी असीणौ ।
सूमन ले कोउ नाउ तालसिरि दे सब कोणौ ।
दातारि कृपणि यह अन्तरौ लीजं ज्यौ क्यों लेहि फलु ।
नातरि धन गुण वजन जन भौन भरि अंजलि करि देहि जलु ।।१७।।

कहइ कृपणु करि रोसु काइ धण धीर ठावि संचहि ।
मू भर जाता रहै हठु आपणौ न छडै ।
करहि पराई होड जाइ घरि लछि अकेलै ।
भूठि भेदु ना लहहि आप घर दिसै न देखै ।
नित उठि बात जपिहि सयाणी ज्यांह चलै मफु कंपणी ।
ते गलौ हाथ जिह खरचि जे लछि पाई आपणी ।।१८।।

कहै नारि सुणि कंत धनि सो जणती जायौ ।
जहि नर करि अपणै वित्त विलुसियो उपायो ।
होड न कीज्यै पापु पुण्य की होड करन्ता ।
होइसु जसु संसारि परति संचलो भरन्ता ।
घरि हुई लछि पुणि पहिल कै पीछण खर्चं आपणो ।
ते नर अचेत भेल्या नहीं दसिया संपै सापिणी ।।१९।।

तबहि कृपणु करि रोस वसि घर बाहिरि चलीयो ।
ताम एकु सामहो मंतु वरि चेलौ मिलियौ ।

क्रपणु कहै रे क्रपणु आजि तू दूमणु दिट्ठो ।
कि तु रावलि गह्यो केम घर चोर पइट्ठो ।
आइयउ कि को घरि पाहुणौ कीयो नर भोजन सरसि ।
किणि काजि मीतरे आजि तुव मुख विलीणु दीठो विरसि ॥२०॥

क्रपणु कहै रे मंत मुझ घरि नारि सतावै ।
जाति चालि धणु खरचि कहै सो मोहिण भावै ।
तिह कारणि दुब्बलौ रयण दिण भूखणु लगाइ ।
मंतु मरण आइयो अछ मन्यौ तू आगै ।
ता क्रपणु कहै रे क्रपण सुणि मीत मरण न माहि दुखु ।
पीहरि पठाइ वे मांगसी जइ औ दिणु दू होइ सुहु ॥२१॥

कृपणं वचन सुणि कृपणु हरिषु हीयो अति कीयो ।
पुरिष ले एकु सखि लेखु झूठो लिखि दीयो ।
तिय आगै बाचौ छै तुझ जो जेठो भाइ ।
बहि घरि जायो पूय तु घरि घणु कोकी आइ ।
तुटिसी प्रीति जै ना चलि सिसु नंबो सुणु वापडी ।
जाणंती पिउ परपंच घणा चली नवि जासापहि ॥२२॥

तितै संगु हामह्यौ साथि लीयो भड भारी ।
हय गय रहु पालिका चढिवि चल्ली नरनारी ।
जंत जंत गिरनैर पहु राजलु वर वंद्यो ।
साइ पजुण चढेवि पुण्य कृत पाप निकंद्यो ।
अरु दिट्ठ जीइ सेतसिरु गनइ रच्यौ कवणु वणु ।
मनुष जनम को फल लीयौ फिरि फिरि वंदा जिन भवण ॥२३॥

ठाइ ठाई ज्योणार कीय व्यापार महोच्छा ।
ठाइ ठाइ संग पूज दिठ चित्त किया गावेच्छा ।
ठाइ ठाइ मंगिणाहं दाणु सुजसु उपायो ।
बाजत ढोल निशाण संग कुसलहं घरि आयो ।
इकु पुण्य उपायौ पुरिस्यौ ल्याया लोग असंख धनु ।
या बात सुणी ज्यौ किपणु त्यौ ते तसु पछिताइ मनु ॥२४॥

कहै कृपणु नित रुरि लइसहौं चाली हलो ।
पडिएतौ जिउआर आ दुख रचतो न टोली ।
इरिण परिस्यां तो अछि रहिउ सगली मति बोली ।
उठि भएौं हीयो हुऐौ सिर पीटै ले दुवै कर ।
बलि पएसा कृपणु नैऊबुनी सूल सकोदर सासु जद ।।२५।।

तव मरतो जाणि करि सयल परियण मिलि आयौ ।
बंध न पुत्त कलत्त मात कहि कहि समझावहि ।
क्यो आगै हुई गुली खरचि लै सुकृत सवलो ।
ते बल्हो परो बताव पाइजो जीवै पालौ ।
कुल कहि रह्या सबै बोलतही कृपण कोपु लगाउ करण ।
घर सारि आइ अमरी कहै भांति कंत तूकउ मरणु ।।२६।।

कहै कृपणु करि रोसु काइ मिलि मूनोवाही ।
थोर न बूझै सार थोरे धनु लीयो चाहै ।
जीवंतां अरु मुवहु कोण धणु मुझ ले सवकइ ।
कै लै चालो साथि कैर धसु घरती थकै ।
लयौ काढि आइ अबरह जनमि तुहि न बताउ घरिउ धणु ।
सुणि बात उठि बंधव गया लिदै पहुतै पटण दिसु ।।२७।।

तबहु मरंतो कहै लछि माणइ डाणंती ।
भाई परियणु पुत्त मैरू राखो सु पांती ।
बादनू प्रति ससहो देखि दुष्ट घणा उपाई ।
मांम ताम गिरणी काजि सु कालि दिवाई ।
एहु चोर ठगारी ग्रागि थी मे राखी करि जतनु तुझु ।
सिगुण सिलजुनि लछि इव‥‥ ‥‥ ।।२८।।

लच्छि कहै रे कृपण मूढ हो कदे न बोलो ।
जु को चलण दुइ देइ गैल त्यासी तसु चालो ।
प्रथम चलण मुझ एहु देव-देहुरे ठविज्जे ।
दूजे जात पतिठु दाणु चउसंघहि दिज्जै ।
ये चलण दुवै तै भंजिया ताहि विहूणी क्यों चलौ ।
मूखमारि जाय तू हो रही बहुडी न संगि थारे चलो ।।२९।।

यों ही करता कृपण·····················थाकी ।
बोल न बोल्यो गयो सैंण किंकरण समझि ले सबकी ।
नाज···························समल घणु धरती छूंद्यो ।
गयो नरगि·········· कुघट कृपणु तहा पंच परि दुख सह्यो ।
गाम में जेता नारी पुरिष भला है मुवो सगलाहं कह्यो ।।३०।।

मूवो कृपणु कुमीच लोग सगलाह मनि भायो ।
रह्यो राति घर माहि कोइ बालिवा न आयो ।
सब राति हि जणह्न सीस पुर बाहिरि राल्यो ।
पूरा हुवा एणी काठ रहित तैंठें सब बाल्यो ।
घर नारि पूत बंधव खिल्या मनि हरिष्याह जुवो जुवो ।
पहरिस्या खाइस्या खरचस्याह भलौ हुवो जे इहु मुवो ।।३१।।

कृपणु गयो मरि नरगि तिहां दुख सह्यो अलेखै ।
रोवै करै कलाप कणें कहै इम अवखे ।
मत जारी मूं जोग गेगत द्रव निरमै पाऊं ।
जिती करो धरि लच्छि तिती पुणि मारगि लाऊं ।
हंसि जंपहि असुर कुमार तसु मुनिष जनमु बूझै कहां ।
तुं मनसि जनमि पडिसै नरगि दुखु डाहणु लामैं जहां ।।३२।।

तैं मनु कूडि कपटि·· ········परिपंच उपायो ।
न तैं जो तप बिहु देव देहुरैं लगायो ।
न तैं करी गुर भगति न ते परिवार संतोष्यो ।
न तैं मुशा भाणिजी न तैं पिरीजणु पेष्यो ।
न तैं कियो उपगारु अछि जो तू नै आडो फिरै ।
वो गयो पाप फलु आपणो मत विलाप कारण करै ।।३३।।

एक तलैं तेल में एक अंगि सूली बामैं ।
एक घाणी मैं पेलि एक काटा सिरी स्वाणैं ।
इक काटै कर चरण एक गहि पांव पछाडै ।
एक नदी मैं छोड़ बहुडि साडै खणि गाडै ।
इकि छेद सरीर *तिलु तिलु करिवि दु ए रावो किलि ।*
आइणि सागर बंध दुख भोगवै मरइण पूरि आयु बिणु ।।३४।।

इमौ जाणि सहु कोइ मरइ ण पूरिय धनु संचयौ।
दान पुण्य उपगार दिस धनु किवंन खंचौ।
दान पुनं यह रासो असो पोष पार्श्व जानि जाणि।
जिसउ करणु इकु दानु तिसउ गुण कामु बखाण्यौ।
कवि कहै ठकुरसी लभणु मै परमत्थु बिचार्‌यौ।
परभियो त्यांह उपज्यौ जनमु आ माच्यो तिह हारियो ।।३५।।

।। इति कृपण छन्द समाप्त ।।

शील गीत

पारासरु अस विस्वमत्त रिषि रहत दुवइ वनि ।
कंद मूल वणि खंत हुंत मति खीण महा तनि ।
ते तरुणी मुह पेखि मयण वसि हुवा विकलमति ।
पछइ जि सरस अहार लिति तह तणी कवण गति ।
परिखो जु एकु मनहि जि के मनु इंवी वसि रहइ सहु ।
विंध्याचल गिरि सायर तरइ तउं मइ मनिउं सच्चु सहु ।।१।।

सिंघु वसइं वन मज्झि मंस आहारि वसी मति ।
वार एक वरस मैं करइ सिंघणी सरि सुरती ।
पेखि परेवो पापु आसु मन मुडइ न आसुर ।
खाइ खंड पाषाण कामु सेवइ निसि वासर ।
भोयणु वसेखु नहु ठकुरसी इहु विकार सबु मन तणौ ।
सील रहहि ते स्यवं नर नहि पारामति गिणौ ।।२।।

।। इति सील गीत समाप्त ।।

पार्श्वनाथ स्तवन

नृप असमेणह पुत्तो गुण जुत्तो असुर कमठ मउ मलणो ।
वम्मादेवरि रहणो, वयणो अविरुद्ध भयजस्य ॥१॥

फणि मंडियउ सीसो, ईसो तिल्लोक सोक दुख मुलणी ।
तन तेय जेण निजित, कोटी सूर किरण मइ दीप्ति ॥२॥

जसु सुरपति दासो, चित संसार वासो ।
हयल समै भासो, सत्त तच्चापयासो ।
किय मयण विणासो, दुट्ठ कमट्ठ नासो ।
जयउ सुपहुपासी पत्त सासैं निवासी ॥३॥
गुणाण सब्बाण अरं निवासं, न ध्यावहि जे नर पाय पासं ।
कहंत ये पुज्जे ताह पासं, करंति जे मिछ पहं विसासं ॥४॥

जि कि करहि मूढ विसासू ।
सुणै जाइ भोपाभास ।
खणावैति खान जीवा करे हि विणासु ।
जिकि कु गुर कुतिथ वास ।
सेवै जाइ जेम दास ।
चंडी मुंडी खेतपाल ध्यावे हि हुयास ।
जि कि पत्तर मनावै मास ।
अह गति बूझै कास ।
अवरह मिथ्यात पथ करहि सहास ।
ताकी कहा ये पूजैइ आस ।
न ध्यावै जे प्रभ पासं ।
चंपावती थानि सब गुणह निवास ॥५॥

सुलसिधामं प्रभ पास नामं ।
न सित जे वंछित सुख रामं ।
तिदुखवंता ससि सूर गाम ।
वसुंदरं गेह नरं निकाम ॥६॥

जिकि दीसैंहि नर निकाम ।
उपाइ न सगै [illegible] ।
पड्या पर घर माहिँ मेरे सिंध धाम ।
धरि नारीय नेहु विराम ।
अधिक करय साम ।
नंदण निगुण भरिहुहि निरनाम ।
जाकी कहीय न रहै माम ।
फिरै पीली माम गाम ।
रोक जिसा रोग पुन्या दीसै देहु शाम ।
तिहु कीयउ सही कुकामु ।
सकिउ न लेइ नामु ।
चम्पावती पास भय सब सुख धामु ।
जगत्त अधार मणोपहारी ।
जि ध्यावहि पासु सुचारु धारी ।
ति पावहि मानव सुख सारी ।
अनंत लच्छी गुणवंत नारि ॥८॥

जाकै दीसै गुणवंत नारि ।
रूपवंत सीलधारी ।
नंदण नृपुणनी कामिसव मुरारी ।
जाकै हय गय भइवारि ।
धन धन्न पूरी खारि ।
कीरति सुजसु जाकै जाच्यो खण्ड धारि ।
जाकै कहीपन आवै हारि ।
पावै सुख भव पारि ।
दहन दुखी होइ जाको रोग भारि ।
तिणि ध्यायो सही संसारि ।
मनहु जाणै विचारि ।
चंपावती पासु जगु जाकै अधारि ॥९॥

पंसाउ पास प्रभ जे लहंति ।
कुसैणु कुग्रहु तसु कि करंति ।
हुवंति जीवा सलु ने नेहवंत ।
जलं थलं अग्नि सहाइ संत ॥१०॥

जाकैं अग्नि सीलैं सहाइ।
नीर निधि थलु थाइ।
थके आयो स्याल सम सिघ हुअ जाइ।
जाकं मानु देहि रूठा राइ।
अंगुण ति लेहि छाइ।
विषम सुविसु अंगि अभी हुइ थाइ।
जाकी जगतु भली कहाइ।
लागैं हि न थाल्या थाइ।
कुग्रह कुसंण वसु कछु न बसाइ।
ताकै भेदु पाया इव जाइ।
सुखी प्रति दीसे न्याइ।
चंपावती पास प्रभ तणै पसाइ ।।११।।

पास तणै सुपसाइ पाइ पणभंति आइ अरि।
पास तणै सुपसाद थाइ चवकवइ रिद्धि अरि।
पास तणै सुपसाइ सग्ग सिव सुखु लहिजैं।
पास तासु पणमंति भंगि आलस कुन कीजै।
ठकुरसी कहै मलिदास सुणि।
हमि इकु पायो भेदु इव।
जगि जं जं सु'वस संपजै।
सं तं पास पसाउ सव ।।१२।।

।। इति पार्श्वनाथ स्तवन समाप्त ।।

सप्त व्यसन षट्पद

पुहमि पट्टि मसि मेरु, होहि भायण सर सागर।
मघल अनोपम लेखि, साख सुरतर गुण आगर।
आपु इंदु करि लिहै, कहै फणि राउ सहस मुख।
लिहइ देवि सरसति लिहत पुणु रहइ नहीं सुष।
लेखणि मसि मही न उब्बरइ, थक्कइ सरिसइ इंव फुणि।
आयो नवोडु कहि ठकुरसी, सवइ जिणेसरि पास गुणि ॥१॥

जुआ खेलना—

जूव जुवाख्या धणी लाभु, गुणु किवइं न दीसइ।
मतिहीन मानई खेलि, मत चिंति अणीसइ।
जगु जाणइ दुखु सह्यौ, पंच पंडव नरवइ जलि।
राजरिषि परहरी, रण्णु सेविउ जुवा फलि।
इह विसन संगि कहि ठकुरसी, कवणु न कवणु विगुत्त वसु।
इत जाणि जके जूआ रमैं, ते नर गिणिवि सींगु पसु ॥२॥

मांस खाना—

मुरिख मंस म भखहु, तासु कारणु किन गोवहु।
जहि स्वाद कारणै, काइ लघइ भउ खोवहु।
फल आसत्त रस लुद्ध कुडु कीयो न मुणित मणि।
मान्या उदर विदारि विप वा तापी उल्लणि।
श्रै गुण अनंत आमिष वसहि कवि ठाकुर केता कहै।
वगराउ भजउ जंगलि मक्खणि नरइ नीच घणु दुखु सहैं ॥३॥

मदिरा पान करना—

मज्जु पिये गुण गलहि जीव जोगै ज्वाख्यो भणि।
मज्जु पिये सम सरिस माइ महिला मण्णहि भणि।
मज्जु पिये बहु दुख सुखु सुणहा मंधुन द्व।
मज्ज पिये आदव नरिंद संकटु कवि गय खिव।

धण धम्म हाणि नरयह गमणु कलहु मूलु अवजस उपति ।
हारंति जनम हेलह मुगध, मज्जु पिये जे विकलमति ॥४॥

वेश्यागमन—

वेस्या बणियर चारुदत्त परमाणु परिखिउ ।
सुनया कोडि छत्तीस खद्ध तिन घडी न रखिउ ।
अवर किता नर कहउं ज्याहु दिठुउ दुखु दारणु ।
गाह हुरिवि कवि कालिदास मारिउ निकारणु ।
तसु संग किये प्रतिषद बहि कुल कीरति छारहु मिले ।
धनु जीवनु कीरति जाइ चलि ज्यों कायर दीठा किले ॥५॥

शिकार खेलना—

पारधि पंचमु विसनु नरइ पंचमि पहुचावइ ।
जाणंतऊ नरु नीचु पेखि पसु मनहु सिहावइ ।
तिण चरतिरा पराधइ सौ न नमनह विचारहि ।
तुरिय चढिवि वनिजाहि जीव जोवन मदि मारहि ।
तजो श्रखनु करि संग्रहहि पारधि पापु विसाहि बहु ।
ते सहहि दुखु कहि ठकुरसी ज्यों चक्कवइ सुतंमु पहु ॥६॥

चोरी करना—

चोरी करि सिवभूति विप्रु संसारि विगुतउ ।
तिणि डण्ड तिनि सहिय पुणुवि मरि नरयहु पतउ ।
अवर किता नर सहहि दुखु दारणु चोरी संगि ।
इम जाणिवि परहरहु जिन रुलावहु अवगुणु अंगि ।
जपु तपु सनानु संजमु सुकतु कुल कीरति तीरथ धरमु ।
तउ सहल सबे कहि ठकुरसी जइ न फुरइ चोरी करमु ॥७॥

परस्त्री सेवन—

परतीय परत विणासु सरल दुख दावइ इहु भवि ।
जाणंतउ जा बंधु लोउ परहरइ तवइ नवि ।
प्रगट सुणो ससारि कथा कीचक अरु दहमुख ।
भीम दोपइ कारणइ जेम मुंजिय बहु दुख ।

दह भइ प्रकिसि पुरयो भवणु परति वासु पायो नरइ ।
सलहिये सुनरु कहि ठकुरसी जो परतीय रह रहइ ।।८।

सप्त व्यसन—

जुवा बिसन वनवासि भमिय पंडव नरवइ नलु ।
मंसि गयो वगराउ सुराखो यो जादम कुलु ।
वेसा वणिमर चारिदत्तु पारधि सवंमुनिउ ।
चोरी गउ सिवभूति बिपु परती लंकाहिउ ।
इकेक विसनि कहिं ठकुरसी नरह नीचु नरु दुहु सहइ ।
जहिं संगि अधिक मछाहि बिसन ताह दसी को कहइ ।।९।।

।। इति सप्त विसन छपद ठकुरसी कृत समाप्तं ।।

व्यसन प्रबन्ध

जुवा केरा फल प्रगट धरं, खिण होहि भिखारी धनी नरं।
जिन खेलह मूरिख हारिण धणी, किन सुणीय कथा पंडवह तणी।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ॥१॥

रसणा रसु स्वादु न राखि सकं, पलु प्रासै मूढ़ु न परतु तकं।
बगरीब तणी परि नरय गते, सहि से दुखु तब चेतिसी चिते।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ॥२॥

जहि पीये भाठ अनर्थ करै, जननी महिला न विचार करै।
तहि मजिन पिये भणु कवणु सुखो, जहि जादव वंसह दिणु दुखो।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ॥३॥

जिहि वेसा सिरजी नरय घरं, धण जोवन कीरति हाणि करं।
जहि संग कियो वणि चारुदत्तो, रालियउगरो हद सेज सुते।
सुणि सखि सयाणी मूढ मनं तजि, विस्न बुरा देहि दुख घणं ॥४॥

जोवनि मदि मूरिख जाहि वनं, पसु पारिधि मारहि मूढ मनं।
चकवइ सुवंभहु तणीय परे, दुर्गति दुख देखहि मूढ मरे ॥ सुणि० ॥५॥

खर रोहण सूली वध धणं, तहि चोरी किये कवण गुणं।
प्रभ परयणु पुरजणु होइ रिपो, किन प्रगट सुण्यो सिवभूति विपो ॥ सुणि० ॥६॥

इह परतिय परत विणासु करै, इह रत सयल गुणि दूरि हरै।
परहरइ जको सुणि रावण कथा, सो लहइ सरब सुख विणु अनिथा ॥सुणि० ॥७॥

सुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यो, कवि ठाकुर विस्न प्रबंध कह्यो।
परहरइ जको ए जाणि गुणं, सो लहइ सरब सुख बंछित घणं।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ॥८॥

॥ इति व्यसन प्रबन्ध समाप्तः ॥

पार्श्वनाथ जयमाला

दारुण नयणारुणु तमविहुरे, जिह् गय पड भय भगइ।
तह जिण गुण मणि सुमरंतियहिं, पियरुण थाहि उवसंगइ।
महा दिक दंत लपाणि पयंड, चहु दिसि चालीय सूंडा डंडु।
नलग्गइ हथियरु तणु जासु, धरंतह चित्त चिंतामणि पासु ॥१॥
डरावणु देहु सु सद्द करालु, दुरा रुणा णेत्त जिसहि बिभालु।
सुस्याल समो हरि होइन कासु, धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ॥२॥
जसु ठियज्भाल समीर सहाय, चहुं दिसि लग्ग न भगउ जाय।
न डुक्कइ नीडउ सो जिहु वासु, धरंतह चित्ति चितामणि पासु ॥३॥
करेण छियो जसु जाइन अंगु, भरिउ विसि लच्छरि किण्हु भुवंगु।
न लग्गइ चूरि उसो जिदु रासु, धरंतह चित्ति चितामणि पासु ॥४॥
तरंग सुमुठिय नीरि अमाह, भरिउ जल जंति न लभइ थाह।
सुहोइ समुद्दु जिसउ थल वासु, धरंतह चित्ति चितामणि पासु ॥५॥
जिसण्णिय लेस मसिय सिरवाहि, भगंदर सूल जलोदर बाहि।
तिणासहि कोढ पमुहु खय खास, धरंतह चित्ति चितामणि पासु ॥६॥
कुसीण जिकु ग्रह क्रूर कुदेव, कुमित्त कुसज्जन कुप्रभ सेव।
करंति न ते भय दुख पमासु, धरंतह चित्ति चितामणि पासु ॥७॥
कहीं चिरु कम्मि किये अरि बंधि, भरिउ तनु संकलि घल्लि निरंधि।
तहूं त गयो अरि करिवि निरासु, धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ॥८॥
महा ठग चोर जि डाइणि दुट्ठ, दिनाइय कम्मण मंत असुठ।
नलगहि लील गमे विन पासु, धरंतह चित्ति चितामणि पासु ॥९॥
तिया सुव बंधव सज्जन इट्ठ, उपज्जीहि चित्त रमै जिह दिट्ठ।
भणां छिव सव्वइ पूरहि आसु, धरंतह चित्ति चित्तामणि पासु ॥१०॥

घत्ता

इय वर जइमाला पास जिण गुण बिसाला।
पढहि जि सार णरी, तिण्णि संभा विचारि।
कहहि करि अनंदो, ठकुरसी घेल्ह नंदो।
लहहि ति सुखसारं, वच्छियं बहु पयारं ॥११॥

॥ इति पार्श्वनाथ जयमाला समाप्त: ॥

ऋषभदेव स्तवन

पांडव पंच भमंत देश इक्कहि पुरि पक्किय ।
तहि कुंभारि रोवतं पुत्त दुखि देखि न सक्किय ।
तासु मरण श्रोसरइ जाइ आपणु हक्कारिउ ।
रखिउ जणु जगबंतु भीमि रणि राखिउ सुमरिउ ।
तिम कहइ ठकुरसी रिसहु जिणु तुह निवसंतह चित्त धरि ।
अइ जाइन तिय न दोस दुख, तबरि कहउ इव कासु फिरि ।।१।।

तुहु जग गुर जोतषी तुही बड बैदु विचखिणु ।
तुहु गरवो गारुडी सयल विसुहरहि ततखिणु ।
तुहु सिद्धक्षर मंतु तंतु तुही तिभवणपति ।
तुहु संजीवन जड़ी तुही दातारु महुत गति ।
इश्वाक वंस श्री रिसह जिणु, नाभि तणु भम भव हरणु ।
सब अहुल अवरु कहि ठकुरसी, तुहु समरथ तारण तरणु ।।२।।

।। इति ऋषभदेव स्तवन समाप्तः ।।

कवित्त

किसउ पारवै भइ न भउ रिद्धि नि ने ही सुहि किसो ।
किसौ मंति जसु बुद्धि मंदी किसौ तुरंगमु वेग विणु ।
किसौ जति जसु वसिन इंदी किसौ वैदु जो ना लहौ ।
देहु व्याधि कर जोइ निगुणी कियण गुण विथरै किसौ कवीसरु सोइ ॥१॥

ज्यों रू जपणी जरणा गुणवंत थियगरई हीण वरु ।
पेखि पेखि मन मैं विसूरइ ज्यौं सेव कुसेवा किया ।
होइ दुमणु आसा न पूरइ ज्यौ पछितावो जणा ।
अवसरि सुजसु न लिद्ध कहि ठाकुर त्यौ कवियणु नर निगुरा गुणा किद्ध ॥२॥

नर निरं खर निकुलनि लज्जा निनेहीमी चरइ ।
निगुण सगुण अंतरु न जाणै बोल बूझ बहुली कहुणा ।
विनय वचनु बोलि विन आपै कूवर कुसर कठोर मति ।
संचक सदासलोभ कहि ठाकुर तइ गुण कहहि ते कवि लहहि न सोभ ॥३॥

सगुण सुंदर सदा सद्रम साहमी सनहे कर ।
सुजसु संचि जे अजसु मूकै विनइ विचखिण बहु चिता ।
वंस सुध बोलै न चूकै पाप परमुह पर तणउ ।
परइ करहि दुखु भखि तहु जसु कहहि भि ठक्कुरसी तेरु कवीसर धनि ॥४॥

कहा बहिरउ करइ रसुगीउ कहा करै ससि अंधलो ।
कहा करै नरु संढु नारी कहा करै कर हीण नरु ।
गुण सजुत्त को मंडुकारी कहा करै चंपउ भवरू परिमल ।
परिमल अधि विसाल कहा करै त्यौं निगुण नरु कवियण कव्वु रसालु ॥५॥

जइ रूवहि रइ सुण्यौ नहु गीतु, जइ न दिठु ससि अंधलइ ।
जइ न तरुणि रसु संढि जाण्यौ, जइ न भवरू चंपइ रम्यो ।
जइ न धणकु करहीणि ताण्यौ, जइ किणि निगुणि निलखणो ।
कवित न कीयो मम्णु कहि ठाकुर, तउ गुणी मण नाउ जासी सुणु ॥६॥

॥ इति कवित्त समाप्तः ।

पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी

असं धवलवि धवल गलिहार धवलासरा कमलु जसु ।
धवल हंस वाहणि बइठि बीणा पुस्तक कर लियइ ।
करइ वि दुरजइ जोग तूठी तहि परमेसरि पय कमल ।
पणविवि निम्मल चित्ति पयडु करिसु चंगावती पास नाह गुण कित्ति ।।१।।

एक दिवसह पास जिण गेह मल्लिदास पंडिय कहय ।
ठकुरसीह सुणि कवि गुणग्गल गाहा गीय कवित्त कह ।
तइ किय मय निसुणी समग्गल इय श्री पास जिणंद गुण ।
वर वम्मा देवी जणणी सुयण सोलह निसि ण जणणु सवे ।
तुह गुवहो सइ अतुल बलु दयाल या कलकडु असमो जाणि जगनाथु ।
करहिं न किं तुहु भव्व जहिं कीयइ थे पाविए मन वंछित सुख सम्ब ।।२।।

ताम विहसिवि कहइ कवि एम णिसुणि मित्त तसु गुण कहत ।
सरसय इंदु धरिणदु थक्कइ कवि माणस अम्हा सरिसु ।
लहा कवण परि कहिवि सक्कइ, पणि तुह वयणु न अवगउ ।
मू मनि पुव्व जगीस वुधिसार तसु, गुण कहिसु जस फणि मंडिउ सीसु ।।३।।

देस सयलह मज्झि सुपसिध ।
जसु पटतर अलंकृतविहिं ।
ढुंढि ढुढाहडु नामु अखिउ ।
तह चंगावती वरु णयरु ।
जहा न को जणु वसइ दुखिउ ।
जैन महोछा महस घण ।
जहिं दिनि दिनि दीसन्ति ।
तहा वसइ ते धण्णु णर ।
इउ जण थिवस कहंति ।।४।।

तासु णयरी म.................।
................................।

१. पाण्डुलिपि में छन्द ५ से १४ तक नहीं है ।

ते गुणविस जिय परमाद ।
षट्ठु बाहरि षट्ठु भितरिहि ।
तविउ सु तपु मह दुसहु दुद्धरु ।
मय अट्ठु परहरि कियो ।
तेरह विह चारित्त उद्धरु ।
संम्हु चेरु णव विहि चरिउ ।
दह विहु पालिउ धम्मु ।
एम जिणेसर पास प्रभि ।
खयो पुव्व किउ कम्मु ।।१५।।

अरु परीसह सहिय बावीस, अरिहट्ठु कक्कर कणी ।
थुइ णिंदा सम भाइ भावण, गुण थाण गुणि चडिउ ।
नवो कम्मु नहु दिण्णु आवण, घम अणोह पयार तव ।
सवि उत्तिमं नरि नाम, मलुर दग्गु एहिं गंठु गिरि णाकुवि मग्गों ताम ।।१६।।

थिरु विमाणिहिं वैरु संभलिउ ।
इल भाइ चिलगउ करण ।
घोर वीरु उवसग्गु दुद्धउ ।
आन चलिउ ता असुरु ।
जलु पसंसु थिर सत्त वुट्ठउ ।
चिरउ बयारु विसंभरिवि ।
सो रक्खिउ धरणिंद ।
पउ इवसमिउ पाविइउ ।
केवल णाणु जिणिंद ।।१७।।

तवहिं आविय सयल सुर मिलिवि, जय जय पभणंत गिरि ।
नियवि तहु सुरु कमठु णवउ, समोसरण लच्छी सहिउ ।
हुवो दोस तजि गुणि गरिट्ठिउ, चउतीस तिसय मंडियउ ।
वसु पडिहार संजोउ, अट्ठु कम्मह णिदिट्ठु तिनि ज्ञान नयणि तिलोउ ।।१८।।

तवहिं दरसिउ मग्गु कुमग्गु, षट दव्व सलक्खसिउ ।
तव पयय गुण भेउ भखिउ, संसार सायरि विषमि ।
पडत भव्व जनु सयलु रक्खिउ इम बोहंतउ सयल जगु ।
पुणु पत्तउ निव्वाणि, हुवो सिद्ध वसु गुण सहिउ सासय सुख निहाणी ।।१९।।

तासु जिणवर तणउ पडि बिंबु ।
ग्रहघात पाखाणमइ ।
आथिइ शुकल कल कालि जिसुवि ।
तहा तहा अतिसय सहितु ।
परत्या पूरण छहि समथवि ।
पाणि सु मुत्ति चंपावती ।
कृस्न वर्णि अयहट्टु ।
तासु परत्यो हुउ कहउं ।
जो भइ णयरणह दिट्टु ।।२०।।

जवहि लिद्धउ राणि संग्रामि, रणथंभुवि दुग्ग गढु ।
जव इब्राहिम साहि कोपिउ, बलु बोली मोकलिउ ।
बोलु कोलु सबु तेण लोपिउ, जब लग उवभलि हाइमिउ ।
मेछ मुढु भय वज्जि, विणु चंपावती देस सहि गया दहइ दिसि भज्जि ।।२१।।

तिवहि कंपिउ सयल पुर लोउ ।
कोइन कसु वरज्जिउ रहइ ।
भज्जि दहइ दिसि जाण लगउ ।
मिलिवि करी तब बीनती ।
पासणाह सामी सु अगउ ।
सबणा जोतिग केवली ।
चित्तु न मंडइ आस ।
कालि पंचमी पास प्रभ ।
जगि तुव तणउ भिसासु ।।२२।।

तेण तुहु सिउं कहहि जगनाथ ।
निसुणि सिद्धि सुंदरि रवण ।
इहि निमित्त कउ किसउं कारणु ।
भूत भविषित जाण तुहु ।
तुहु समथु जगि तरण तारणु ।
इक्वाकंला उपवहु ।
जहि भव देखहि गाइं ।
जहिन देखहि पास प्रभ ।
होइ रहहु थिर ठाइ ।।२३।।

एम जंपवि करिवि भूय पूज, मल्लिदास पंडिय पमुह ।
सइ हूथा सामी उचायउ, तुझ मूरति उची न सिलु ।
हूयो जागि सुर गिरि सवायउ, इणि विधि परतिउ वारतिहु ।
पूरिवि हूरी मरांसि प्रयवंतउ, जगि पास तुहु जेण करी सुख सांति ।।२४।।

तासु पर तेजि के गर भव्वनी भग्गा दिट्ठु रह्या ।
हुआ सुखी ते घरा वासैं ।
जो भग्ग मंति करि ।
दुखि पाया अरु पड्या सांसैं ।
अवरइ परत्या बहु इसा ।
प्रभु पूरिवा समथु ।
अजउन जिसु पतियाइ मनु ।
सो नर निगुण निरथु ।।२५।।

इय जि सेवहि कुगुरु कुदेव, कु तिथ जि गमु करहि ।
इवहि जि क पाखंडु मंडहि, धगड धम्मु पावहि न ते ।
मुनिष जम्मु लद्धउ ति संडहि, सेवहि जिन चपावती ।
परत्या पूरण पासु, हरत परत जिउ हुइ सकलु वंछित पूरइ आस ।।२६।।

घेल्ह सांभणु ठक्कुरसी नाम ।
जिण पाय पंकय भसलु तेण ।
पास थुय किय सची ववि ।
पंदरासय अट्ठतरइ ।
माह मासि सिय परब बुद्धजवि ।
पढहि गुणहि जे नारि नर ।
तहि मन पूरइ आस ।
इय जाणें विणु नित्त तुहु ।
पढि पंडित मल्लिदास ।।२७।।

।। इति श्री पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी समाप्ता ।।

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल
एवं
भ० त्रिभुवनकीर्त्ति पर मंगल आशीर्वाद

परम पूज्य एलाचार्य १०८ श्री विद्यानन्द जी महाराज :

समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने की श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर की योजना बहुत ही समयानुकूल है। इस योजना से बहुत से अज्ञात एवं अप्रकाशित जैन कवि प्रकाश में आ सकेंगे। सम्पादन एवं मूल्यांकन की दृष्टि से अकादमी के प्रथम पुष्प 'महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" का बहुत सुन्दर प्रकाशन हुआ है। हमारा इस अकादमी को आशीर्वाद है। समाज द्वारा अकादमी को पूर्ण सहयोग साहित्य प्रेमियों को देना चाहिए, ऐसी हमारी सद्भावना है।

× × ×

आचार्य कल्प परम पूज्य १०८ श्री श्रुत सागर जी महाराज :

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी द्वारा अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करने की योजना महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। हिन्दी भाषा की अज्ञात एवं अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाश में लाने का जो कार्य प्रारम्भ किया है उसमें अकादमी एवं पदाधिकारी गणों को सफलता प्राप्त हो यही मंगल आशीर्वाद है।

□ □ □

अनुक्रमणिका

ग्राम एवं नगर

अजमेर ४३, २४३, २६१

अवन्ती १८५

मैलपुर १८१, २३५

उत्तरप्रदेश ७

उज्जयिनी १८५, २२५

कामां १८

गुजरात ७

गोपाचल १७४

गौड़ १८१, २३५

चम्पावती, चाटसू ११, १२, २३७, २३८, २३९, २५३, २५५, २९२

चित्तौड़ नगर ६

जयपुर ११, १८, ३५, ४३, २४३

जसरानो १८१, २३५

जंबूद्वीप १९७

ढूंढाहड २३८, २३९, २५३, २६२, २९२

थूंभकनगर ३

नग कैलई १८०, १९६, २३५

नैणवा ८

पंजाब प्रदेश ७, ११, १८,

पाटण ३

फफोंदपुर (फफोंद) १९३, २३६

बूंदी १८, ३२, ३५

बीकानेर १०

महाराष्ट्र ७

महुला १५२

रणथंभवि २५३, २६४

राजस्थान ३, ७, १० ११, १२, १८

रायसेहु १९७

सौहाद १८१, २३५

स्कंध नगर ५

हिसार ११, १२, १८, ८६

हस्तिनापुर १२

कवि, विद्वान् एवं श्रावकगरण

अजब बेग भट्ट १

अभयचन्द १८१, २३५

इब्राहीम साहु २५३, २६४

ईश्वर सूरि १, ८

उदयभानु १

उद्योतन सूरि १८२

कबीर १, ३८

काबिल (साहु) ११

कासलीवाल (डा०) १२

कुन्दकुन्दाचार्य ११

केशव (महाराज) १

कृपाराम १

कृष्णनारायण प्रसाद १२९

गारवदास जैन १, २, १७९, १९६, २१६

गोपीनाथ १

गोस्वामी विट्ठलदास १

चतुरूमल १, २, १५८, १५९, १६१, १७५, १७६, १७७

मुनि चन्द्रलाभ १

चारुचन्द्र १०

छीहल १. १२१, १२२, १२३, १२४, १२८, १२९. १३१, १३२, १३३, १३४, १४०, १४१ १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५४, १५५. १५६, १५७
जनकु १८१
ब्रह्म जिनदास २, १८३
जिनहर्ष १३०
भ० ज्ञानभूषण १ २, १८४
ठक्कुरसी १, २, २३७, २३८, २४७, २४८, २५३, २५५, २६१, २६२, २६७, २७१, २७२, २८०, २८१, २८४, २८७, २८८, २८९, २९०, २९२
डूंगरसी १३०
थेघु साह १८१, १९६, २३६
पं० तोसरा २५६
दयासागर १३०
पांडे देवदासु ७०, ९०
देवलदे १८१
मुनि धर्मचन्द्र २८२
मुनि धर्मदास १, ४, ५
वाचक धर्मसमुद्र ६
बेल्ह कवि २३८, २७१, २७२, २९५
नरवाहन १
नाथूराम प्रेमी २३७
निपट निरंजन १
नाथू १९२
नाथूसि २५५, २५६
पदम ४, ५
भ० पद्मनन्दि २९
पं० परमानन्द शास्त्री २३७
पार्श्वचन्द्र सूरि १, ६
पूनो १
भ० प्रभाचन्द्रदेव ११, १२, ३१, २५५
डा० प्रेमसागर जैन २३७
बनारसीदास १३०
बालचन्द्र १, ६
बूचा, बूचराज १, २, १०, ११, १२, १३, १८, २३, २४, २५, ३०, ३१, ३६, ३८, ३९, ४०, ४२, ५३, ७०, ८९, ९०, १०१, १०५, १०७, १०८, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८
भक्तिलाभ १०
भारग साहु २३६
भुवनकीर्ति ११, ३१, १०७
भुल्लन २५५, २५६
भतिशेखर १३०
मंभन १
मलिक मोहम्मद जायसी १
पं० मल्लिदास २५५, २५६, २८९, २९२, २९५
मानसिंह १७४
ब्र० माणक १३०
मिश्रबन्धु विनोद १, ८, १२१, १७९
मेघु १८१
मेलिग १ ३
ब्रह्म यशोधर १, २, ८
महाकवि रइधू १६०
भ० रत्नकीर्ति ११, ३१
उपाध्याय रत्नसमुद्र ६
राजशील उपाध्याय ६

महाराज रामचन्द्र ११, २३९, २५६
रामदास ४, ५
रामचन्द्र शुक्ल १२१, १३०
रामकुमार वर्मा १२१, १२२, १२४
लालदास १
वल्हू १३, २२, २५, ५९, ८६, ९०, १०८, ११२, १२०
वल्हव १३
वल्हपरि॥ ..६
डा० वासुदेवशरण अग्रवाल १५८
भ० विजयकीत्ति ७
वाचक विनयसमुद्र १०
विमलमूर्त्ति १, २
वाचक विवेकसिंह ९
शान्ति सूरि ८
भ० शुभचन्द्र १, २, ७
डा० शिवप्रसादसिंह १२२, १२३, १२४, १२५, १३२, २३७
स्योसिंह १५२
भ० सकलकीत्ति ३१, १८२
सरो १२
सहजसुन्दर १, २, ६
सिवसुख १
सुन्दर सूरि ३
भ० सोमकीत्ति ८, १८२, १८३
हर्ष ६
हितकृष्ण गोस्वामी १
डा० हीरालाल महेश्वरी १२२
हेमरत्न सूरि ३
हेमराज १३०
होरिल साहु ५

कृतियां

अम्बड चौपई १०
अष्टाह्निका गीत ७
आदीश्वर फाग १८४
आत्मप्रतिबोध जयमाल १२३
आत्म रागरास ९
आराम शोभा चौपई १०
उत्तमकुमार चरित्र १०
इलातीपुत्र सज्झाय ९
उदर गीत १२४, १३४
ऋषभदेव स्तवन २६१, २९०
ऋषि दत्तारास ९
ऋषभनाथ गीत २४०
कुलध्वज कुमार ९
कवित्त २४०, २६१, २९२
कुवलयमाला १८२
कृपण छन्द २३७, २३९, २४०, २४८, २७३, २८०
गुण रत्नाकर छन्द ६
गुणाकर चौपई ९
चिन्तामणि जयमाल २४०, २४८, २७२
चेतनपुद्गल धमाल १३, २४, २५, २८, ३१, ३६, ४१, ४२, ७०, ९०
जिणदत्त चरित्र २
जैन चउवीसी २४०, २५४
टंडाणा गीत १३, ३० ४१
तत्वसार दूहा ७
दान छन्द ७
धर्मोपदेश श्रावकाचार ४, ५
नेमि गीत ८, १३, ३१
नेमिनाथ छन्द ७, ८
नेमिपुराण १५९
नेमिनाथ वसन्तु १३, २९, ३२, ३९, ४१
नेमिराजमति वेलि २४०, २४१, २६४, २६७

नेमिश्वर वेलि २४१
नेमिश्वर का उरगानो १५६, १६०, १६१, १६४, १६५, १६६
नेमिश्वर का बारहमासा ८७
पञ्चसहेली गीत १२१, १२३, १२४, १२८, १२६, १३५
पदम चरित्र १०
पद्मावती रास १०
पंथी गीत १२३
पुण्यसार रास ३
प्रद्युम्न चरित्र २
पञ्चेन्द्रिय वेलि २३७, २४०, २४१, २६८, २७१
पंथी गीत १२३, १५३
पार्श्वनाथ गीत १०२
पार्श्वनाथ जयमाला २६१
पार्श्वनाथ स्तवन २४०, २८३
पार्श्वनाथसकुन सत्तावीसी २४०, २५३, २६२, २६५
प्रशस्ति संग्रह १२
बलिभद्र चौपई ८
बावनी १२३, १२४, १३२, १३३, १४१
बारहमासा नेमिश्वर का १, ३, २३, ३२, ३६ ४२, ८७
बुद्धिप्रकाश २३८
भुवनकीत्ति गीत १३, ३०, १०६
मयणजुज्झ ११, १२, १३, १४, १७, १८, १६, २२, ३१, ३६, ४२, ४३, ४५
मल्लिनाथ गीत ८
महावीर छन्द ७
मेघमाला कहा २३८, २४०, २४१, २५५
मृगावती चौपई १०
यशोधर चरित्र १८०, १८२, १८३, १६५
राजस्थान का जैन साहित्य २
राजवार्त्तिक १२
राम सीता चरित्र ६
लघु वेलि १२३, १५५
ललितांग चरित्र ८
विक्रम चरित्र चौपई ६
विजयकीर्ति छन्द ७
विशालकीर्ति गीत २३८, २३६
वीर शासन के प्रभावक आचार्य ८
वैराग्य गीत १२४, १३४, १५६
व्यसन प्रबन्ध २३६, २४०, २८८
शील गीत २४०, २८१
सज्झाय ६
संतोष जयतिलकु ११, १२, १३, १८, ३६, ४१, ४२, ४३, ७०
सम्यक्त्व कौमुदी ११
सप्तव्यसन षटपद २४०, २८५
सुदर्शनरास ३, ६
सुमित्रकुमार रास ६
सीमंधर स्तवन २४०, २४१, २६३
हरिवंश पुराण १५६

जाति एवं गोत्र

अजमेरा २१६, २४०
खण्डेलवाल
पहाड़िया २३८, २४०
बाकलीवाल २४०
साह २४०

□□□